वर्मी कल्चर

एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका

मुकेश गुप्ता

वर्मी कल्चर

एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका

वर्मी कल्चर

एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका

मुकेश गुप्ता
परियोजना निदेशक
मोरारका फाउण्डेशन

ए बी डी पब्लिशर्स
जयपुर—15

वर्मीकल्चर : एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका

ISBN:81-85771-36-7

मूल्य: 300.00 रूपये

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2002 (1000 प्रतियाँ)

द्वितीय संशोधित संस्करण : मार्च, 2002 (2000 प्रतियाँ)

प्रकाशक
ए बी डी पब्लिशर्स
बी–46, नटराज नगर, इमली फाटक
जयपुर– 302 015
दूरभाष : 594705
फेक्स : 0141–597527

वितरक :
आक्सफोर्ड बुक कम्पनी
बी–46, नटराज नगर, इमली फाटक
जयपुर– 302 015
दूरभाष : 594705
फेक्स : 0141–597527
Laser Type Setting: Vinod Kr. Sharma

आभार

'*वर्मीकल्चर – एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका*' के प्रथम संस्करण की जनवरी 2000 में 1000 प्रतियां छापी गई थीं। मैं सबसे पहले अपने उन पाठकों का आभारी हूँ जिन्होनें इस पुस्तक के प्रकाशन के मात्र एक महीने में सभी पुस्तकें खरीद लीं। यह उनके इस विषय में रूझान एवं पुस्तक की उपयोगिता का स्पष्ट प्रमाण हैं।

'*वर्मीकल्चर – एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका*' के प्रकाशन में सहयोग के लिए सर्वप्रथम मैं उन सभी कृषकों का आभारी हूँ जिनके द्वारा वर्ष 1995 से लेकर आज तक वर्मीकल्चर तकनीक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है। साथ ही मैं मोरारका फाउण्डेशन के अपने सभी सहयोगियों का आभारी हूँ जिन्होंने हर कदम पर मेरा साथ दिया और इस तकनीक के विकास एवं प्रचार–प्रसार के लिए रात–दिन एक कर दिये। इस मार्गदर्शिका के द्वितीय संशोधित संस्करण के प्रकाशन के समय, मैं उन सभी राजकीय विभागों का भी आभारी हूँ जिनके द्वारा इस कार्यक्रम का प्रचार–प्रसार करने के लिए वित्तिय सहायता उपलब्ध कराई गई है।

इस पुस्तक के लिए मैं मोरारका फाउण्डेशन परिवार के मुखिया श्री कमल मोरारका जी का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस फाउण्डेशन की स्थापना की, साथ ही मैं मोरारका फाउण्डेशन के कार्यकारी निदेशक श्री राजेन्द्र शर्मा जी का भी आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं सहयोग से यह तकनीकी विकास संभव हो पाया है।

मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनमें मेरी पत्नी अनीता और दोनों बेटियां प्राची एवं ईना शामिल हैं। मेरे परिवार के सभी सदस्यों ने मुझे अपना काम करने के लिए सभी सुविधाऐं उपलब्ध कराईं और उनको समय न दे पाने के लिए कभी कोई शिकायत नहीं की। इस पुस्तक के दूसरे संस्करण के लिए हिन्दी में संशोधन करने में मेरी बेटी प्राची का बहुत सहयोग रहा है।

इस पुस्तक के लेखन से लेकर प्रकाशन तक मेरे सहयोगियों ने अथक परिश्रम किया है और मैं उनका भी आभार व्यक्त करता हूं। अंत में मैं ए.बी.डी. पब्लिशर्स का भी आभारी हूं जिनके द्वारा इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है।

मुकेश गुप्ता

परियोजना निदेशक

मोरारका फाउण्डेशन, जयपुर, फोनः 0141–720202, 720574

भूमिका

कई वर्षों से खेती की समस्याओं को लेकर सारी दुनिया में एक महत्वपूर्ण बहस छिड़ी हुई है। वैज्ञानिकों के एक वर्ग का यह मानना है कि बहुत शीघ्र नवीन एवं उन्नत तकनीकों के विकास से धरती पर मानव की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने लायक भोजन उपजाया जा सकेगा, तो दूसरी तरफ ऐसे लोग भी हैं जिनका कहना है कि परम्परागत खेती के ज्ञान एवं तौर तरीकों के सहारे मानव सभ्यता की जब हजारों वर्षों से सारी जरूरतें पूरी होती रही है तो आज भी हमें उन्हीं तरीकों को अपनाना चाहिये, हालांकि हमें उनमें वैज्ञानिक ज्ञान आधारित कुछ सुधार अवश्य करने पड़ सकते हैं। यह पुस्तक दूसरे प्रकार के व्याख्याकारों की बात को आगे बढ़ाने के क्रम में एक छोटा सा प्रयास है।

यह पुस्तक हिन्दी में लिखी गई है क्योंकि बीसवीं शताब्दी में कृषि के समूचे नये ज्ञान एवं विज्ञान का विकास व़िदेशों में हुआ और उसे अंग्रेजी भाषा में ही हमारे देश में लाया गया। इस देश का कृषक वर्ग स्थानीय भाषा के अलावा कोई अन्य भाषा नहीं समझ पाता है। इसीलिए इस वर्ग की बीसवीं शताब्दी में कोई निर्णायक भागीदारी भी नहीं रही। जो कुछ ज्ञान बाहर से आया उसे लगभग थोपा गया है। हमारा मानना है कि खेती के विकास के सम्बंध में जब तक किसानों की राय को अहमियत नहीं दी जायेगी तब तक हमें कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। यह पुस्तक परम्परागत् खेती में वैज्ञानिक आध ाार पर सुधार करने के एक छोटे से प्रयोग एवं उससे प्राप्त अनुभवों का लेखाबद्ध विवरण ही है। **प्रथम संस्करण के लिखने के समय से लेकर मात्र तीन माह में इतनी तेजी से बदलाव आ रहा है कि हमें इस पुस्तक के दूसरे संस्करण की भी जरूरत होने लगी है। हालांकि इस समय हम रीप्रिन्ट ही कर रहे हैं लेकिन इसमें भी हमने एक नया अध्याय और जोड़ दिया है।**

वर्ष 1995 में मोरारका फाउण्डेशन को राजस्थान सरकार के कृषि विभाग द्वारा एक चुनौती के रूप में परसरामपुरा सर्कल एरिया में कृषि प्रसार सेवा देने के लिए एक करार के तहत जिम्मेदारी दी गई। इस कार्यक्रम के प्रारम्भ में ही मोरारका फाउण्डेशन के वैज्ञानिकों को यह समझ में आ गया कि जितनी भी प्रचलित तकनीकें हैं उनमें से अपनाने लायक लगभग सभी तकनीकें किसानों द्वारा अपनाई जा चुकी हैं फिर भी खेती में लाभ कम होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में संस्था द्वारा स्वयं किसानों के साथ मिलकर कुछ नया करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचा था।

इस प्रकार किसानों के कहने पर नई तकनीकों के प्रचलन से हटकर परम्परागत् खेती में ही सुध ाार के लिए एक नये प्रयोग की शुरूआत हुई। इस प्रयोग में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष खेती की लागत कम करने का रखा गया। खेती की कुल लागत में उर्वरकों पर होने वाला व्यय दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी में भी कटौती करने की घोषणाऐं की जाने लगी हैं। ऐसी स्थिति में रसायनिक उर्वरकों के विकल्प की खोज के प्रयास में वर्मीकल्चर एक आशा की किरण के रूप में सामने आया।

वर्ष 1995–96 में कृषि विभाग के तत्कालीन उपनिदेशक श्री हरी मोहन गुप्ता जी द्वारा *'ऐसिनिया फटिडा'* वैरायटी के दस केचुए उपलब्ध कराये गये थे। पहले रोज से ही इन केचुओं को पालने में हमने किसानों को अपने साथ जोड़ लिया, और मात्र दो वर्षों में 500 से अधिक किसानों द्वारा प्रतिवर्ष 1000 मैट्रिक टन वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन किया जाने लगा। वर्मीकल्चर की इस सम्पूर्ण तकनीक का विकास उन 500 प्रगतिशील किसानों के सहयोग से ही सम्भव हुआ है।

शुरूआत से ही वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन के साथ उसके उपयोग के प्रयोग भी प्रारम्भ हो गये। इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि उत्पादन में बढ़ोतरी ने नये प्रयोगों को जन्म दिया और नये–नये प्रयोगों की सफलता ने वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की उन्नत तकनीक के विकास के लिए सभी लोगों को लगातार प्रयत्नशील बनाये रखा। वर्ष 2000 तक वर्मीकल्चर की एक बहुत सरल विधि का विकास कर लिया गया। इस विधि के द्वारा किसी भी स्थान पर कितनी भी मुश्किल परिस्थितियों में और लगभग 100 तरह के अलग–अलग कच्चे माल के उपयोग से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन किये जाने के ज्ञान एवं अनुभव का संकलन इस पुस्तक में किया गया है।

यह पुस्तक 'वर्मीकल्चर – एक सम्पूर्ण मार्गदर्शिका' स्वयं लेखक, मोरारका फाउण्डेशन के कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं और किसानों के अनुभवों के आधार पर लिखी गई है। इस पुस्तक में लिखी गई बहुत सी बातों के लिए आवश्यक आधार के रूप में प्रयोगशालाओं द्वारा प्रामाणित जांच नहीं की जा सकी है लेकिन जो कुछ बार–बार देखा गया, अनुभव किया गया और परखा गया उसका संकलन अवश्य किया गया है।

मात्र तीन वर्ष में मोरारका फाउण्डेशन एवं उसके सहयोगियों (6000 किसानों एवं 300 उद्यमियों) द्वारा कुल 1,50,000 मैट्रिक टन प्रतिवर्ष की उत्पादन क्षमता का विकास करने से हम आज विश्व में वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की सबसे बड़ी संस्था बन गये हैं।

इस पुस्तक में दी गई वर्मीकल्चर की सरफेस बेड विधि के विकास के लिए मोरारका फाउण्डेशन को नवम्बर 2001 में आयोजित भारतीय अन्तरराष्ट्रीय व्यापार मेले में ''नवीनतम प्रौद्योगिकी में उत्कृष्ठ प्रदर्शन'' के लिये कांस्य पदक भी दिया गया है।

वर्मीकल्चर आज सबकी जुबान पर चढ़ गया है लेकिन इस विषय पर वैज्ञानिक साहित्य की उपलब्धता लगभग नगण्य है। अतः किसी भी जिज्ञासु की इस विषय के बारे में और अधिक जानने की उत्सुकता को पूरा करने का प्रयास पाठकों को पसंद आयेगा, ऐसी आशा है।

कृषि के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों, किसानों, व्याख्याकारों और नीति निर्माताओं के लिए भी यह पुस्तक इस विषय पर एक नई खोज एवं नई बहस का आधार बनेगी, ऐसा विश्वास है।

मुकेश गुप्ता

विषय सूची

मोड्यूल–1 प्राकृतिक संसाधन एवं आधुनिक खेती की स्थिति	**1–14**
युनिट 1.1 प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग	2-4
युनिट 1.2 आधुनिक खेती का विकास	5-9
युनिट 1.3 खेती में रसायनों का प्रभाव	10-11
अभ्यास 1	12-13
मोड्यूल–2 ओर्गेनिक फार्मिंग बनाम जैविक/ प्राकृतिक खेती	**15–24**
युनिट 2.1 खेती-भोजन पदार्थो की क्वालिटी	16-17
युनिट 2.2 ओर्गेनिक फार्मिंग - एक अवसर	18-19
युनिट 2.3 ओर्गेनिक फार्मिंग - एक सफल प्रयोग	20-22
अभ्यास 2	23-24
मोड्यूल – 3 कम्पोस्टिंग-पारम्परिक उर्वरक प्रबंध का साधन	**25–36**
युनिट 3.1 कम्पोस्टिंग	26-28
युनिट 3.2 कम्पोस्टिंग की विधियाँ	29-34
अभ्यास 3	35
मोड्यूल – 4 वर्मी कल्चर – कम्पोस्ट	**37–54**
युनिट 4.1 वर्मीकल्चर	38-40
युनिट 4.2 वर्मीकल्चर के लिए केचुए	41-43
युनिट 4.3 वर्मी कल्चर में ऐसिनिया फटिडा का उपयोग	44-46
युनिट 4.4 घरेलू स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन	47-50
युनिट 4.5 वर्मीकम्पोस्ट की सरफेस बैड विधि	51-52
अभ्यास 4	53
मोड्यूल–5 वर्मी कल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल–ठोस कचरा प्रबंध	**55–72**
युनिट 5.1 ठोस कचरा प्रबंध	56-62
युनिट 5.2 ओर्गेनिक मैटिरियल	63-66
युनिट 5.3 वर्मी कल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल प्रबंध	67-71
अभ्यास 5	72

मोड्यूल – 6 **वर्मी कम्पोस्ट का वाणिज्यिक उत्पादन**	**73–100**
युनिट 6.1 स्थान	74-79
युनिट 6.2 औजार एवं अन्य आवश्यकताएं	80-83
युनिट 6.3 वाणिज्यिक उत्पादन विधि	84-99
अभ्यास 6	100
मोड्यूल – 7 **वर्मी कल्चर-कम्पोस्ट की क्वालिटी**	**101–116**
युनिट 7.1 वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी	102-103
युनिट 7.2 वर्मीकम्पोस्ट के रसायनिक गुण	104-107
युनिट 7.3 वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण	108-115
अभ्यास 7	116
मोड्यूल – 8 **वर्मी कल्चर – कम्पोस्ट का उपयोग**	**117–142**
युनिट 8.1 वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग	118-121
युनिट 8.2 बारानी खेती में वर्मीकम्पोस्ट	122-125
युनिट 8.3 सिंचित खेती में वर्मीकम्पोस्ट	126-128
युनिट 8.4 बागवानी में वर्मीकम्पोस्ट	129-133
युनिट 8.5 वृक्षारोपण में वर्मीकम्पोस्ट	134-137
युनिट 8.6 वर्मीकम्पोस्ट उपयोग के मार्गदर्शक सिद्धांत	138-141
अभ्यास 8	142
मोड्यूल – 9 **वर्मी कल्चर – नई दिशाऐं**	**143–170**
युनिट 9.1 सूखा निवारण-जलग्रहण क्षेत्र विकास	144-150
युनिट 9.2 शहरी ठोस कचरा प्रबंध	151-156
युनिट 9.3 ओर्गेनिक फार्मिंग	157-160
युनिट 9.4 स्वरोजगार	161-171
युनिट 9.1 वर्मीकल्चर-गौशालाओं के लिए वरदान	172-176
वर्मीकल्चर तकनीक पर मीडिया की राय	177-191
शब्दावली	192-195
अनुक्रमणिका	196-197
सन्दर्भ सूची	198

मोड्यूल – 1

प्राकृतिक संसाधन एवं आधुनिक खेती की स्थिति

युनिट 1.1 प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग

युनिट 1.2 आधुनिक खेती का विकास

युनिट 1.3 खेती में रसायनों का प्रभाव

युनिट 1.1 प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग

मनुष्य अपने प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक प्राकृतिक संसाधनों–जमीन, जंगल, खेत, वनस्पति, पानी, पशुधन इत्यादि के दोहन से अपना जीवन यापन कर रहा है। हजारों वर्षों से प्रकृति ने हमें ना सिर्फ जीवित रखा अपितु हमारे विकास के मार्ग में अपना भरपूर योगदान भी दिया है। मानव सभ्यता के विकास में पशुपालन एवं खेती करने की तकनीक एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर रही। चिकित्सा विज्ञान के विकास से मानव की उम्र बढ़ गई। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग किया जाने लगा। हजारों सालों से प्रकृति ने मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक सुदृढ़ एवं टिकाऊ व्यवस्था कर रखी थी। लगातार बढ़ती आबादी ने प्राकृतिक साधनों की सीमा तथा उनकी टिकाऊ क्षमता से कई गुणा अधिक उपयोग करने को मजबूर कर दिया।

आज हम किसी भी गांव या ढ़ाणी की बात करें तो देखेंगे कि गत् 50 वर्षों में ही आबादी 10 से 20 गुणा बढ़ गई है। प्रकृति के अंधाधुंध दोहन ने आज गांव के 20–30 प्रतिशत परिवारों को उस स्तर पर ला दिया है, जिसमें उनके पास या तो जमीन है ही नही और अगर थोड़ी बहुत है तो उसमें कुछ उपजता नहीं है। ऐसे लोगों ने पहले तो सामुदायिक एवं प्राकृतिक संसाधनों (चारागाह एवं जंगल) के सहारे अपना जीवन यापन कर लिया, लेकिन धीरे–धीरे उन संसाधनों पर भी दबाव बहुत बढ़ गया एवं उनकी उपयोग क्षमता भी करीब करीब समाप्त हो गई। चारागाह नष्ट हो गये और जंगल कटने लगे, परिणामस्वरूप भूमिहीन लोग मजदूरी के आसरे अपना गुजारा करने के लिए विवश हो गये।

अब वर्षा भी कम होने लगी है। हमें अच्छी तरह से याद है कि पहले जिन क्षेत्रों में 20–30 अंगुली वर्षा होती थी। वर्षा, खरीफ की फसल के चार महीनों के दौरान कुछ दिनों के अंतर से लगातार होती रहती थी। फसल को समय पर पानी मिलता था एवं जंगलों, पहाड़ों और चारागाहों में पेड़ एवं घास की बढ़वार भी अच्छी हो जाती थी। आज क्या हो रहा है ? पहले से वर्षा भी बहुत कम रह गई है, उसमें से भी अधिकांशतः मात्र कुछ ही बार में होकर रह जाती है। इस की वजह से पहले तो बुवाई में समस्या आती है, फिर समय पर पानी नहीं लगता और फिर पैदावार का तो क्या कहना ? सभी कह रहे हैं कि अकाल अब (राजस्थान में पिछले 56 वर्षों में 50 बार तक) हमारे जीवन की एक स्थाई समस्या बन गया है।

हमारी प्राचीन संस्कृति में कहा गया है कि मिट्टी के कण कण में जीवन है और यह बात आज वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित की जा चुकी है। यही जीवन एक लगातार चलने वाले चक्र द्वारा मिट्टी को उपजाऊ शक्ति देता रहा है। हजारों सालों से भारत के ग्रामीण लोगों का खेती (कृषि) ही मुख्य आधार रहा है। परम्परागत कृषि व्यवस्था ने स्थानीय भौगोलिक वातावरण में प्रकृति से तारतम्य बनाये रखा था। गाय एवं बैल ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी थे। अन्न, फल, जल, दूध, ऊर्जा, स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दैनिक जीवन में स्थापित परम्पराओं के आधार पर उपयोग में लिए जाते थे। भूमि की उर्वरता, फसल की उत्पादकता, शुद्धता और रोग–प्रतिरोध ाक क्षमता बढ़ाने के लिए गोबर – गोमूत्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। पशुओं को चराने के लिए गौचर थे, उनसे भूमिहीन किसानों को मजदूरी, लकड़ी व ईंधन प्राप्त होता था।

पिछले 40–50 वर्षों में बढ़ती आबादी ने मानव जीवन और कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संतुलन बिगाड़ कर रख दिया। पेट भरने के लिए परम्परागत खेती – रसायनिक खेती में तब्दील हो गई। रसायनों ने मिट्टी के जीवों को नष्ट कर दिया, जमीन प्रदूषित हो गई और अन्ततः जमीन की प्राकृतिक एवं जैविक उर्वरता कमजोर होते–होते मृत प्रायः हो गई। हम लोग खुश होते रहे कि उत्पादन रसायनों से बढ़ रहा है लेकिन यह बढ़ रहा था मिट्टी के जीवों के मरने से, जिससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अल्प समय के लिए बढ़ रहे थे।

जनवरी 2001 को नई दिल्ली में आयोजित 21 वीं सदी की पहली विज्ञान कांग्रेस में 5000 वैज्ञानिकों के सम्मेलन को संबोधित करते हुए भारत के प्रधानमंत्री ने कहा कि **"अन्न, पोषण और पर्यावरण इस देश की सबसे बड़ी समस्याएं हैं।"** इस कांग्रेस में सभी वैज्ञानिक इस बात से सहमत थे, कि हमें भारत में वर्तमान एक टन प्रति हेक्टर अन्न उत्पादन को शीघ्र ही 2 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादन के स्तर पर ले जाना होगा, और समस्या यह है कि दिनों–दिन कृषि के लिए उपलब्ध भूमि कम होती जा रही है तथा मिट्टी–पानी की समस्या भी बढ़ती जा रही है। इस अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस में विशेषज्ञों ने नीतिगत स्तर पर कई सुझाव दिये, लेकिन उनको जमीनी धरातल पर किस प्रकार लागू किया जाये इस सम्बंध में बहुत अधिक स्पष्टता नहीं बन पाई। आज मात्र 100 वर्षों में विज्ञान और आधुनिक खेती के नाम पर इतने अधिक परिवर्तन हो गये हैं कि कभी–कभी ऐसा लगता है कि शायद 100 वर्ष पूर्व का मनुष्य खेती करना ही नहीं जानता था। प्रश्न यह है कि क्या खेती के सभी आधुनिक तरीके प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग को बढ़ाने में सहायक रहे हैं।

गत् 5000 वर्षों के इतिहास में भारत सहित कई अन्य सभ्यताओं द्वारा मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए लगातार प्रयास किये जाते रहे हैं। जितना भी इतिहास आज तक हमें ज्ञात है उसमें भोजन एक धार्मिक क्रिया कलाप के रूप में ग्रहण किये जाने की प्रथा प्रचलित रही है। भोजन प्राप्त करने, पकाने एवं ग्रहण करने में शुद्धता एक प्रमुख आधार रहा है, और शायद मानव सभ्यता के विकास में इसका प्रमुख योगदान भी रहा है।

तालिका 1

खाद्यान्नों का उत्पादन एवं मांग (मिलियन टन में)

1 मिलियन = 10.00 लाख

क्रं. सं.	फसल	1970–71	1980–80	1990–91	1997–98	2015	2030
1	गेहूं	23.8	36.3	55.1	65.9	72.41	80.08
2	चावल	42.2	53.6	74.3	82.3	101.44	113.89
3	मक्का	7.5	7.0	9.0	10.9	11.71	12.87
4	अन्य मोटे अनाज	23.1	22.1	23.7	20.3	24.40	26.82
5	कुल अनाज	96.6	119.0	162.1	179.4	209.96	233.68
6	दालें	11.8	10.6	14.3	13.1	22.57	26.31
7	कुल खाद्यान्न	108.4	129.6	176.4	192.4	232.54	259.99

स्त्रोत : कृषि विपणन (सांख्यिकी सारांश) नियाम, जयपुर सर्वे ऑफ इंडिया–कृषि २०००

100 वर्षों में इतना बड़ा परिवर्तन हो गया कि हजारों सालों तक सभ्यता के प्रतीक समझे जाने वाले देश–प्रदेश प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के विकास की दौड़ में इतना पिछड़ गये कि आज वे हर नई खोज के मामले में विकसित देशों पर पूर्ण रूप से आश्रित हैं। विकसित देशों द्वारा हमें कई ऐसी तकनीकें उपलब्ध कराई गई जिनका उपयोग उन्हीं देशों में बहुत थोड़े समय तक किया जाकर बंद कर दिया गया। आधुनिकता के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग इस प्रकार के तकनीकी विकास का ही एक ऐसा उदाहरण है।

आज नई एवं विकसित समझी जाने वाली खेती जिसमें रसायनिक खाद, कीटनाशक दवाऐं, संकर–जैव तकनीक द्वारा परिवर्तित बीज के उपयोग को लेकर व्यापक बहस छिडी हुई है। विकसित देशों के एक बहुत बड़े वर्ग का यह मानना है कि तथाकथित आधुनिक तकनीक द्वारा उत्पन्न भोजन ने ना सिर्फ मानव अपितु सम्पूर्ण जीवन–पर्यावरण श्रृंखला पर विपरीत प्रभाव डाला है।

यूनिट 1.2 आधुनिक खेती का विकास

1960 के दशक में हमारे देश में खाद्यान्न का बहुत बड़ा संकट आया। उस समस्या के समाधान के लिए अपनाई गई हरित क्रांति के दौर में संकर बीज, रसायनिक खाद और सिंचाई की सुविधाओं से अन्न उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा और भारत अन्न उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। पिछले कुछ वर्षों से यह देखने में आया है कि अन्न उत्पादन बढ़ने की गति लगातार कम होती जा रही है। एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत को केवल 20 वर्षों पश्चात अपने सभी देशवासियों को दो वक्त की रोटी के लिए अन्न उत्पादन को दो गुने से अधिक बढ़ाना होगा। **(देखें तालिका 1)**

गत् 50 वर्षों में अन्न उत्पादन में सबसे अधिक बढ़ोतरी सिंचित खेती के क्षेत्रफल में वृद्धि से हुई है। **(देखें तालिका 2)**

तालिका-2

भारत में गत् 50 वर्षों में सिंचित खेती के क्षेत्रफल में आये बदलाव (मिलियन हेक्टर में)

1 मिलियन = 10.00 लाख

क्रं. सं.	भूमि उपयोग	1950–51	1960–61	1970–71	1980–81	1990–91	1999–00	50 वर्षों में बदलाव (%)
1	कुल कृषि योग्य भूमि	131.90	152.80	165.80	172.60	185.70	185.60	40.71%
2	सिंचित क्षेत्र	20.90	24.80	31.20	38.80	47.80	51.10	144.49%
3	असिंचित क्षेत्र	111.00	128.00	134.60	133.80	137.90	134.50	20.72%

सिंचित खेती का विकास पूंजी आधारित रहा है, इसलिए जिन लोगों के पास पूंजी थी उन्होने सिंचाई की सुविधा विकसित कर ली और संगठित प्रयासों द्वारा खेती से सम्बन्धित हर नीतिगत निर्णयों में अपने स्वयं के लाभ को बढ़ाते चले गये। लेकिन सिंचित खेती में भी लगातार बढ़ती हुई लागत चाहे वह बिजली, ईंधन, खाद, दवा, बीज इत्यादि की हो या अच्छी उपज होने पर बाजार में कम दाम मिलने की, इस व्यवसाय में लाभ पर एक बड़ा प्रश्नचिन्ह लग गया है।

50 वर्षों के वैज्ञानिक विकास के बावजूद बारानी खेती में वर्षा पर निर्भरता, कृषि उत्पादन की विकसित तकनीकों का अभाव और लगातार घटती हुई जोत के कारण किसानों द्वारा सामान्य वर्षा की स्थिति में भी इतना अधिक नहीं उपजाया जा सका है कि यह तबका पूंजी निवेश कर सके। कम वर्षा या अकाल की स्थिति में तो कहना ही क्या है। असिंचित खेती के तहत उपजने वाले मोटे अनाज, दालें, तिलहन इत्यादि के लिए राजकीय सहायता का प्रतिशत आज भी बहुत कम है। **(देखें तालिका 3)**

तालिका-3

कृषि में लागत, लाभ एवं अनुमानित सब्सिडी का विवरण (प्रति हैक्टर रूपयों में)

क्रं. सं.	मद	फसलें					
		गेहूं	जौ	सरसों (सिंचित)	सरसों (असिंचित)	चना	मक्का (रबी)
1	मजदूरी	3242	3764	2636	828	2193	1403
2	बैल की मजदूरी	651	873	436	375	415	385
3	मशीन शक्ति	2093	2463	2152	1592	1519	1406
4	बीज	1071	700	101	102	989	454
5	गोबर की खाद	1303	700	569	212	448	1450
6	रासायनिक उर्वरक	1430	896	969	306	557	890
7	सिंचाई	966	986	893	—	331	56
8	दवाईयां	26	—	110	58	21	—
9	कुल लागत	10795	10386	7869	3477	6476	6047
10	कुल आमदनी	28157	20182	14591	10327	15829	18506
11	शुद्ध आमदनी	17361	9795	6722	6849	9353	12458
12	अनुमानित सब्सिडी	2000	1500	1500	200	600	500

स्त्रोत: प्रमुख फसलों की कृषि लागत (1996&97), कृषि सांख्यकी विभाग, एस के एन कॉलेज, जोबनेर,

हरित क्रांति के दौर में खेती इनपुट (आदान) आधारित हो गई। रसायनिक खाद, संकर बीज और सिंचाई सुविधाओं के दोहन के लिए बहुत बड़े पैमाने पर परिश्रम की जरूरतों को पूरा

करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता पड़ने लगी। सबसे पहले नहरी क्षेत्रों में मजदूर बाहर से बुलाये जाने लगे। धीरे–धीरे मंहगाई बढ़ने के साथ किसानों द्वारा उच्च तकनीकी क्षमता की मशीनों को अपनाया जाने लगा। मजदूर केवल परिश्रम के लिए उपयोग में आने लगे, तकनीकी क्षमता का विकास गौण हो गया और जमीन मालिक आलसी हो गये। जब उत्पादन लागत, बिक्रीदर से अधिक हो गई तो सबके सामने संकट खड़ा हो गया। एक अध्ययन के अनुसार सबसे अधिक लागत में बढ़ोतरी वर्ष 1985 के बाद हुई है। **(देखें तालिका 4)**

तालिका-4

भारत में प्रमुख कृषि जिन्सों की दस वर्षों में उत्पादन लागत में बढ़ोतरी

क्रम संख्या	फसल	दस वर्षों में बढ़ोतरी	राज्य	1984–85	1994–95
1	चावल	157.54%	हरियाणा	138.93	413.38
2	ज्वार	200.68%	मध्यप्रदेश	113.38	340.92
3	बाजरा	89.54%	हरियाणा	144.88	274.62
4	मक्का	121.31%	मध्यप्रदेश	159.84	353.75
5	रागी	120.14%	मध्यप्रदेश	142.70	314.15
6	जौ	170.08%	राजस्थान	123.87	334.55
7	चना	141.01%	मध्यप्रदेश	278.07	670.20
8	उड़द	163.79%	मध्यप्रदेश	342.92	904.59
9	अरहर	206.33%	मध्यप्रदेश	249.38	763.93
10	मूंगफली	143.08%	आन्ध्रप्रदेश	448.60	1090.49
11	सोयाबीन	208.99%	मध्यप्रदेश	214.73	663.50
12	कपास	297.74%	पंजाब	357.28	1421.08
13	जूट	12.30%	पश्चिमी बंगाल	417.28	468.61

स्त्रोत : कृषि विपणन (सांख्यिकी सारांश), नियाम, जयपुर

खुले बाजार की अवधारणा को अब करीब–करीब सभी देशों ने स्वीकार कर लिया है। भारत भी इस कतार में शामिल हो गया है। अब कल्पना कीजिए भारत में गेंहू पैदा करने की लागत 5 रूपये प्रति किलो है और अमेरिका या आस्ट्रेलिया जैसे देश में विशाल सब्सिडी के कारण 4 रूपये प्रति किलो है। इसके ऊपर निर्यात सब्सिडी के रूप में ये देश 1–2 रूपये प्रति किलो

की सब्सिडी और दे सकते है, तो उन देशो का गेहू अन्तराष्ट्राय बाजार म शायद 3 रुपय प्रात किलो में ही मिलने लगे। ऐसी स्थिति में जो किसान गेहूं उपजा रहा है वह तो बिना लागत के बारे में विचार करे शायद अपना ही गेहूं खाता रहेगा। लेकिन वह सब लोग जो कि हमारी आबादी का 40 प्रतिशत हिस्सा है, उनके लिए जब विदेशी गेहूं 3–4 रूपये प्रति किलो मिलता हो और यहां का गेहूं 5–6 रूपये किलो मिलता हो तब वे लोग कौनसा गेहूं खरीदना पसन्द करेगे, यह कहना मुश्किल नहीं है। यह नौबत आज ना सिर्फ गेहूं में है बल्कि और भी कई कृषि उत्पादों में होने वाली है। किसी भी विकसित देश की तुलना में भारत में समर्थन मूल्य प्रणाली के तहत लागत में बढ़ोतरी की तुलना में कोई बहुत अधिक वृद्धि नहीं की गई है। **(देखें तालिका 5)**

तालिका-5

विभिन्न कृषि जिन्सों के दस वर्षों में सरकार द्वारा निर्धारित सर्मथन मूल्य (रू./क्विंटल) में वृद्धि

क्रम संख्या	फसल	1984–85	1994–95	दस वर्षों में बढ़ोतरी
1	चावल	137.00	340.00	148.17%
2	मोटा अनाज	130.00	275.00	111.53%
3	गेहूं	157.00	360.00	129.29%
4	जौ	124.00	285.00	129.83%
5	चना	245.00	670.00	173.46%
6	अरहर	275.00	760.00 (93–94)	176.36%
7	मूंग	275.00	760.00	176.36%
8	उड़द	275.0	760.00	176.36%
9	गन्ना	16.00	39.10	144.37%
10	मक्का	130.00	285.00	119.23%

स्त्रोत : कृषि विपणन (सांख्यकि सारांश) नियाम, जयपुर

गत् कुछ वर्षो से फसल चक्र में आये बदलाव के कारण भी लागत में बढ़ोतरी तथा लाभ में कमी आई है। कुछ समय पहले तक बाजार मांग के आधार पर फसल चक्र निर्धारित किया जाता था किन्तु अब हमें प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर फसल चक्र निर्धारित करना होगा। तभी किसानों को अपने परिश्रम का फल मिलेगा। **(देखें तालिका 6)**

तालिका - 6

एम.आर. मोरारका जीडीसी रूरल रिसर्च फाउण्डेशन–नलगढ़
स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से कृषि विस्तार
विस्तार निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

विविध कृषि प्रदर्शनों की सारांश रिपोर्ट, वर्ष 2000–2001
कृषक के अनुसार फसल बुवाई का विवरण

(1 Hectare=10 Bigha)

	गेहूं	चना	जौ	सरसों	गुलाब	धनिया	कुल
1. कुल बुवाई क्षेत्रफल	130.5 बीघा	133 बीघा	67.5 बीघा	68 बीघा	5 बीघा	1 बीघा	405 बीघा
2. प्रति कृषक औसत बुवाई क्षेत्रफल	4.35 बीघा	4.58 बीघा	2.33 बीघा	3.09 बीघा	5 बीघा	1 बीघा	3.39
3. बुवाई करने वाले कृषकों की संख्या	30	29	29	22	1	1	30
4. आमदनी (उत्पाद) रू.	294150/-	316250/-	82360/-	97100/-	200000/-	1500/-	991360/-
5. आमदनी (भूसा) रू.	88087/-	53200/-	40500/-	–	–	–	181787/-
6. कुल आमदनी रू.	382237/-	369450/-	122860/-	97100/-	200000/-	1500/-	1173147/-
7. औसत प्रति बीघा आमदनी रू.	2929/-	2777/-	1820/-	1427/-	40000/-	1500/-	2896/-

सलाह के अनुसान बुवाई गई फसलों का विवरण

	मूंगफली	सुरजमुखी	कपास	प्यांज	सब्जी	अरण्डी	कुल
1. कुल बुवाई क्षेत्रफल	6 बीघा	2 बीघा	7 बीघा	27 बीघा	16 बीघा	5 बीघा	63 बीघा
2. औसत प्रति कृषक बूवाई क्षेत्रफल	3 बीघा	1 बीघा	7 बीघा	2.25 बीघा	1.6 बीघा	5 बीघा	3.30 बीघा
3. बुवाई करने वाले कृषकों की संख्या	2	2	1	12	10	1	28
4. कुल आमदनी (रूपये)	78000	4500	17000	67200	48250	3600	2,18,550 रू
5. औसत प्रति बीघा आमदनी (रूपये)	13000	2250	2428.57	2488.88	3015.62	720	3469 रू.

निश्कर्ष

1. 405 बीघा क्षेत्र में 30 कृषकों ने बाजार मांग के अनुसार फसलें लेते हुए रू. 2896 प्रतिबीघा की आमदनी अर्जित की।
2. 63 बीघा क्षेत्र में संसाधनों के आधार पर फसलें उगाकर 28 कृषकों ने प्रतिबीघा रू. 3469.00 की आय प्राप्त की।

युनिट 1.3 खेती में रसायनों का उपयोग

रसायनिक खाद एक रेडीमेड – डबल रोटी की तरह है। घर में खाना ना बनाना हो तो बाजार से लाकर डबल रोटी खाई जा सकती है। इसमें श्रम जरूर बचता है, लेकिन इसमें पोष्टिकता कतई नहीं होती। यही हाल रसायनों ने खेती में किया है। भारत में रसायनिक खाद के उत्पादन एवं उपयोग में जिस प्रकार वृद्धि हो रही है उसकी तुलना में शुरूआत में तो खेती की उपज भी बढ़ती रही लेकिन अब शायद ऐसा नहीं हो रहा। रसायनिक खाद बनाने वाली कम्पनियों का कारोबार तो बढ़ रहा है और इसी के साथ सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिड़ी भी बढ़ती जा रही है। लेकिन हर किसान की अपनी प्राकृतिक खाद बनाने वाली जमीन जीवाणु रहित हो गई। इसी का परिणाम है, कि आज खेती किसान के लिए लाभदायक नहीं रही और हम लोग रसायन युक्त साग–सब्जी, अन्न–फल आदि खाने को मजबूर हैं। फलतः कई नई बीमारियाँ जन्म ले रही है उनके उपचार हेतु नई दवाईयां और फिर उनकी घातक प्रतिक्रियाऐं हो रहीं हैं। क्या इसी जीवन चक्र को अपनाने की लालसा में हम विकास की अंधी दौड में शामिल हुये थे?

रसायनिक खाद के उपयोग ने पानी की खपत को बढा दिया, फसलों की गुणवत्ता व रोग प्रतिरोधक क्षमता घट गई। नये नये कीटनाशकों ने फसलनाशी जीवों के साथ फसल मित्र जीवों को भी समाप्त कर दिया। धीरे–धीरे प्रकृति मित्र खेती, प्रकृति की शत्रु बन गई। यह तो हमारा सौभाग्य है कि अभी तक भी हमारे देश में इस प्रकार का विनाश बहुत अधिक नहीं हो पाया है। गरीब देश होने का शायद यही एक सबसे बड़ा फायदा हुआ है।

रसायनिक खेती ने हमारे देश में विशेषतया सिंचित खेती में पर्यावरण के प्रदुषण की समस्या को भी जन्म दिया है। कई वैज्ञानिकों के विस्तृत अध्ययन के बाद यह सामने आया है कि खेती में दी जाने वाली रसायनिक खाद का मात्र 15–20 प्रतिशत हिस्सा ही फसलों द्वारा उपयोग में लिया जाता है शेष रसायन भूमि में पानी के साथ बहकर नीचे चले जाते हैं और नीचे जाकर भूमिगत जल को भी प्रदुषित कर देते हैं। परिणामस्वरूप पानी में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है और वह पानी पीने लायक भी नहीं रहता।

जिस प्रकार रेडीमेड–फास्ट फूॅड की 20 रूपये की कीमत में से उसकी पैकिंग के 8 रूपये और उसके विज्ञापन के करीब 7 रूपये लगते है ठीक उसी प्रकार 100 रूपये के रसायनिक उर्वरक में से हम मात्र 15–20 रूपये की ही वसूली कर रहे हैं। खेती में रसायनों के उपयोग के लिए गुजरात का उदाहरण इस विषय को समझने में बहुत सहायक है।

मई 2001, के फर्टिलाइजर न्यूज नामक मैगजीन में आई.सी.ए.आर. के एक प्रमुख कृषि वैज्ञानिक श्री के. पी. पटेल ने गुजरात में रसायनिक खाद के उपयोग एवं धरती में पोषक तत्वों की कमी पर एक विस्तृत विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण के कुछ प्रमुख निष्कर्श इस प्रकार रहे–

• गुजरात राज्य में प्रतिवर्ष 112 लाख हैक्टर भूमि में से 37 प्रतिशत में अनाज (औसत उत्पादन 11.43 क्विं./है.), 26 प्रतिशत में तिलहन (औसत उत्पादन 13.13 क्विं./है.), 14 प्रतिशत में कपास (औसत उत्पादन 3.5 क्विं./है.) तथा 21 प्रतिशत में अन्य फसलें ली जाती हैं।

• वर्ष 1998–99 में औसत 93 किलो प्रति हैक्टर रसायनिक उर्वरक की खपत की तुलना में वर्ष 1999–2000 में रसायनिक उर्वरक की खपत औसत 90.6 किलो प्रति हैक्टर रही।

• गुजरात प्रदेश में प्रति हैक्टर फसलों द्वारा बनास काँठा जिले में 61.60 किलो से लेकर सूरत जिले में 318 किलो तक उर्वरक सोख लिया जाता है। पूरे प्रदेश का औसत 97.70 किलो प्रति हैक्टर है। इसके तहत नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा सल्फर की गणना की गई है।

• गुजरात प्रदेश में माइक्रो न्यूट्रीयेन्ट के रूप में (आयरन, मैंगनीज, बोरोन, जिंक, कॉपर, मैग्नेशियम, मोल्बिड़ेनम) की खपत सबसे कम सुरेन्द्रनगर में 255 ग्राम प्रति हैक्टर से लेकर खेड़ा जिले में 1092 ग्राम प्रति हैक्टर की है। यह माइक्रो न्यूट्रीयेन्ट की फसलों द्वारा सोखी गई मात्रा है।

• रसायनिक उर्वरकों की औसत उपयोग क्षमता (उपलब्ध किये जाने वाली मात्रा की तुलना में पौधों द्वारा सोखने वाली मात्रा का प्रतिशत) नाइट्रोजन के लिए 40 प्रतिशत, फास्फोरस के लिए 15 प्रतिशत तथा पोटाश के लिए 70 प्रतिशत मानी जाती है।

• रसायनिक उर्वरकों की औसत उपयोग क्षमता के अनुसार गुजरात में 93. किलो प्रति हैक्टर की दर से उर्वरक डाले जा रहे हैं, (जबकि वास्तव में पौधों को उपलब्ध मात्रा करीब 30–40 किलो ही रह जाती है) इसके विपरीत फसलों द्वारा उपयोग किये गये उर्वरक की मात्रा 97.70 किलो प्रति हैक्टर है।

अतः यह निश्कर्ष निकाला जा सकता है कि करीब दो तिहाई पोषक तत्व जमीन में पहले से उपलब्ध कोष में से काम में लिए जा रहे हैं और यदि यही गति रही तो कुछ ही वर्षों में हमारी धरती पूर्णतया बंजर हो सकती है।

अभ्यास 1

1. क्या आप स्वयं रसायनिक खाद का इस्तेमाल कर रहे हैं? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो कितने वर्षों से कर रहे हैं? क्या आप रसायनिक खाद के इस्तेमाल के अपने अनुभवों के बारे में कुछ लिख सकेंगे? ....

....

....

....

....

....

....

2. क्या आप कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल करते हैं? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो कितने वर्षों से कर रहे हैं? क्या आप कीटनाशकों के इस्तेमाल के अपने अनुभवों के बारे में कुछ लिख सकेंगे?

....

....

....

....

....

....

....

3. क्या आप खेती में किसी प्रकार की समस्या का अनुभव कर रहे हैं? हाँ/नहीं यदि हाँ तो बताऐं निम्न में से कौन सी समस्या से आप अधिक परेशान हैं।

● उत्पादन में कमी ●,भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी ● रसायनिक खाद की लागत की समस्या ● देशी खाद की उपलब्धी की समस्या ●मजदूरों की समस्या ● सिंचाई के पानी की कमी की समस्या ● तकनीकी ज्ञान न मिलने की समस्या ● उपज का उचित भाव न मिलने की समस्या ● खेती के लिए आवश्यक आदानों के न मिलने की समस्या ● खेती की उपज की गुणवत्ता की समस्या ● नई फसलों की जानकारी ना होने की समस्या ●अन्य समस्याऐं

....

....

....

....

4. क्या आप अपने सन्दर्भ में प्राकृतिक संसाधन एवं आधुनिक खेती की स्थिति पर अपने विचार लिख सकते हैं? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो यहाँ खाली जगह पर बिन्दुवार अपने विचार लिखें।

वर्मीकल्चर तकनीक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली श्रीमती दुर्गादेवी भारत सरकार के उच्चाधिकारियों से बातचीत करते हुए

मोड्यूल – 2

ओर्गेनिक फार्मिंग बनाम जैविक/ प्राकृतिक खेती

युनिट 2.1 खेती-भोजन पदार्थो की क्वालिटी

युनिट 2.2 ओर्गेनिक फार्मिंग - एक अवसर

युनिट 2.3 ओर्गेनिक फार्मिंग - एक सफल प्रयोग

यूनिट 2.1 खेती–भोजन पदार्थों की क्वालिटी

गत् कई वर्षों से यह लगातार सुनने में आ रहा है कि आजकल भोजन में कोई स्वाद ही नहीं है। समाचार माध्यमों से यह भी सुनने में आ रहा है कि भोजन पदार्थों में प्रदूषण चिंताजनक स्तर तक बढ़ गया है। बी.एच.सी. तथा डी.डी.टी. के उपयोग पर रोक लगा देने के बावजूद ये घातक रसायन मानव की भोजन श्रृंखला द्वारा माता के दूध तक को भी दूषित करने में पीछे नहीं रहे हैं। करीब–करीब सभी बड़े शहरों के समीप बहुत बड़ी मात्रा में सीवेज का पानी खेती के उपयोग में लिया जा रहा है। चिकित्सकों द्वारा कहा जा रहा है कि गत् 10 वर्षों में पेट की जो बीमारियां बढ़ी हैं वह हमारे भोजन पदार्थों की गुणवत्ता में बदलाव का ही परिणाम है।

आधुनिक विज्ञान के नाम पर प्रकृति के साथ छेडछाड़ ने ना सिर्फ मानव को उपलब्ध भोजन पदार्थों को प्रभावित किया है बल्कि आज तो वंशाणु परिवर्तनों तथा जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा बुनियादी तत्वों को ही बदला जा रहा है। कुल मिलाकर आधुनिक विज्ञान सिर्फ मात्रा में बढ़ोतरी, विपरीत परिस्थितियों में उपज तथा पोषण के नाम पर विटामिन और प्रोटीन की उपलब्धता के विकास को ही सर्वोच्च प्राथमिकता मानने लगा है।

हमारे देश में एक समय यह कहा जाता था कि "जैसा खाये अन्न वैसा होये मन"। शायद यह बात अन्न के स्त्रोत एवं उसकी गुणवत्ता के लिए ही कही जाती रही हो। जयपुर शहर में एक अध्ययन के अन्तर्गत 100 महिलाओं से बाजार में उपलब्ध भोजन पदार्थों की गुणवत्ता के बारे में उनके विचार जाने गये। इस अध्ययन के परिणाम बहुत चौंकाने वाले साबित हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण एवं विचारणीय बिन्दु निम्न प्रकार हैं :–

• आजकल सब्जियां बिल्कुल बेस्वाद हैं, चाहे सीजन की हों या बिना सीजन की।

• पहले बाजार से सब्जी लाने के बाद कई दिनों तक बिना फ्रिज के आसानी से काम में ले ली जाती थी, अब सब्जी फ्रिज में भी बहुत जल्दी खराब होने लगी है।पत्ते वाली सब्जियां तो 24 घंटे भी नहीं रह पाती।

• कई सब्जियों विशेषकर पालक, धनिया, मैथी, पौदिना के स्वाद में कड़वापन आ गया है।

• कई प्रकार की सब्जियां जैसे–टमाटर, बैंगन, गोभी, मटर इत्यादि देखने में तो पहले से बेहतर है लेकिन स्वाद के मामले में बिल्कुल बेकार है।

• पहले के गेहूं की रोटी नरम व आसानी से पचने वाली होती थी, अब सख्त चीठी होती है, कब्ज करती है और पोष्टिक भी नहीं है।

• दालों की कीमत कई गुणा बढ़ गई, लेकिन स्वाद में कम हो गई हैं।

पहले खाना सीधे—सादे तरीके से बनाया करते थे और सभी चाव से खाते थे, अब लम्बी प्रक्रिया और कई प्रकार के मसालों का उपयोग करने के बावजूद स्वाद नहीं आता।

ठीक इसी प्रकार की चर्चा जब हमने कृषि प्रसंस्करण उद्योग के प्रतिनिधियों से की तो उनका कहना था कि "आजकल खेती की उपज ही ऐसी हो गई है कि बिना किसी मिलावट के बनाये भोजन पदार्थों का स्वाद भी मिलावटी जैसा हो गया है।" भोजन पदार्थों के व्यवसाय में लगे हुए कई आड़तियों तथा व्यापारियों का कहना था कि "आज उनके यहां अच्छी गुणवत्ता का माल लेने आने वाले ग्राहकों की संख्या तो लगातार बढ़ रही है लेकिन अच्छा माल खेतों से ही नहीं आता है।" कुछ मसाला उत्पादक क्षेत्रों के बुजुर्ग किसानों से चर्चा करने पर सामने आया कि "अब पहले की तुलना में उत्पादन बढ़ गया, बीज, मसालों की साइज भी बढ़ी है लेकिन स्वाद और खूशबू पता नहीं, कहां चले गये।" इस विषय में किये गये सर्वेक्षण के कुछ परिणाम यहां दिये गये हैं। **(देखें तालिका 7)**

तालिका - 7

जैविक कृषि के बारे में विभिन्न जिलों के किसानों द्वारा व्यक्त की गई राय (प्रतिशत में)

क्रं. संख्या	मापदण्ड	राय	जयपुर	अलवर	झुन्झुनू	कुल	प्रतिशत
1.	रसायनिक खादों के उपयोग से फसल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।	हां	67	42	103	212	91.7
		नहीं	4	0	4	8	3.4
2.	आधुनिक खेती का पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव हुआ है।	हां	55	36	84	175	75.5
		नहीं	7	1	9	17	7.3
3.	वरीयता के आधार पर जैविक उत्पादों की खरीद करेंगे।	हां	45	41	94	180	78.2
		नहीं	4	0	4	8	3.4
4.	जैविक उत्पादों के लिये अधिक कीमत देने को तैयार हैं।	हां	50	33	87	170	73.5
		नहीं	11	4	7	22	9.5

गांवों में हजारों सम्पन्न किसानों से सम्पर्क करने पर हमने देखा कि आज भी यह किसान वर्ग अपने खाने के लिए देशी अनाज पारम्परिक तरीकों से ही उपजा रहा है। आधुनिक खेती का उपयोग वह सिर्फ बाजार में बेचने वाली फसलों के लिए ही कर रहा है। क्या यह बाजार में उपलब्ध भोजन पदार्थों की गुणवत्ता पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह खड़ा नहीं करता?

हमारे देश में गत् 50 वर्षों में खेती के तौर तरीकों में व्यापक बदलाव आये हैं लेकिन आज हमारे देश में भी इस तथाकथित आधुनिक खेती के तौर तरीकों से उपजे भोजन पदार्थो की गुणवत्ता के बारे में प्रश्न चिन्ह लगाया जा रहा है।

यूनिट 2.2 ओर्गेनिक फार्मिंग – एक अवसर

आधुनिक तकनीक के नाम पर हो रहे नुकसान से चिंतित समाज के एक बड़े वर्ग द्वारा अब खेती की प्रचलित विधियों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप कई देशों में अब पूर्णरूपेण प्राकृतिक तरीकों से उपजे भोजन पदार्थों के प्रति एक विशेष आकर्षण पैदा हुआ है। कुछ लोग इस प्राकृतिक खेती को जैविक खेती भी कहते हैं। इस प्रकार की खेती में किसान द्वारा बिना किसी बाहरी तत्व के उपयोग (रसायनिक खाद, कीटनाशक इत्यादि) से भोजन पदार्थ पैदा किये जाने लगे हैं। इस तकनीक के प्रचलन में आने से उत्पादन की मात्रा यदि घटती भी है तो किसानों को उचित लाभ दिलाये जाने के लिए लोग इस प्रकार के भोजन पदार्थों की कुछ अधिक कीमत भी दे रहे हैं।

गत् 50 वर्षों में आधुनिक खेती के नाम पर बहुत बड़े पैमाने पर बड़े किसानों द्वारा ही लाभ उठाया गया है। छोटे किसानों तक आधुनिक खेती (संकर बीज, रसायनिक खाद, कीटनाशक दवाऐं इत्यादि) पहुंच ही नहीं पाईं। आज तक इस विफलता को लेकर हम परेशान रहे हैं लेकिन आज प्राकृतिक/जैविक खेती के प्रति बढ़ते आकर्षण ने इस वर्ग को लाभ ले सकने वालों की पहली पंक्ति में खड़ा कर दिया है। छोटी जोत होने के कारण आधुनिक खेती के किसी भी तौर तरीके को न अपना सकना आज एक नये अवसर के रूप में सामने आया है। जिसका हमने यदि समय रहते फायदा नहीं उठाया तो फिर हमें पिछड़ने से कोई नहीं रोक सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राकृतिक/जैविक खेती की करीब–करीब हर परिभाषा के तहत हर शर्त को हमारे देश के छोटे किसानों की वर्तमान एवं प्रचलित पद्धतियां पूरा करती हैं। बड़े किसानों के लिए विकसित की गई आधुनिक तकनीकों में तो इतने बड़े एवं व्यापक बदलाव की जरूरत है कि प्राकृतिक/जैविक कृषि की परिभाषा के तहत उत्पादन करने लायक स्थिति लाना आसान नहीं है और यदि प्रयास किये भी जायें तो कम से कम 2–5 वर्ष लगना सामान्य सी बात है।

आज तक स्वयं अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जा रही खेती में बहुत थोड़े परिवर्तनों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य प्राकृतिक–जैविक उपज पैदा की जा सकती है। इन परिवर्तनों में प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। और यदि हम इस प्रकार का बदलाव तुरन्त लाने में सफल हो गये तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विपणन द्वारा हम किसानों को मिलने वाले मूल्य में बहुत आसानी से बढ़ोतरी कर सकेंगे और इसका लाभ छोटे किसानों को ही मिलेगा। कुछ प्रमुख उपज जैसे गेहूं एवं चावल को छोड़कर करीब करीब सभी प्रकार के अनाज, दालें और तिलहन अधिकतर परम्परागत खेती से ही उपजाया जा रहा है।

मसालों की उत्पादन स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की है। शुरूआत में हम यदि सिर्फ उन्हीं किसानों को संगठित कर सकें जो कि बिना किसी प्रकार के रसायनिक खाद एवं कीटनाशकों के उपयोग से फसलें पैदा कर रहें हैं तो भी एक बहुत बड़ी मात्रा में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न पदार्थ हमें मिल सकते हैं। एकदम से निर्यात की जा सकने वाली स्थिति में पहुंचना शायद थोड़ा मुश्किल होगा लेकिन हमारे देश में भी आज भोजन पदार्थों की गुणवत्ता के प्रति बहुत बड़ा वर्ग जागरूक है। यह वर्ग इस प्रकार की उपज के लिए अतिरिक्त कीमत चुकाने को भी तैयार है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम संगठित प्रयासों द्वारा प्राकृतिक खेती के तरीकों एवं उपज का मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण करें तथा ब्रान्ड नेम के आधार पर विक्रय करने की सुविधाओं का विकास करें।

बीज के चयन, खाद, कटाई, ग्रेडिंग इत्यादि के कई आसान तरीकों को अपना कर किसान बिना किसी प्रकार की लागत में बढ़ोतरी करके कई गुना अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए मोरारका फाउण्डेशन द्वारा केन्द्र एवं राज्य सरकार के कृषि विभाग तथा कई राष्ट्रीय संस्थाओं जिनमें राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, जयपुर प्रमुख है, द्वारा एक विस्तृत कार्यक्रम खेती में गुणवत्ता बढ़ाने तथा ओर्गेनिक फूड की मार्केटिंग का काम हाथ में लिया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत करीब 1000 किसानों एवं गृहणियों के सर्वे के दौरान कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार रहे :–

- **90 प्रतिशत से अधिक लोगों का मानना था कि रसायनों के उपयोग ने खेती की लागत को कई गुणा बढ़ा दिया और भोजन पदार्थों की गुणवत्ता को कम कर दिया है।**
- **78 प्रतिशत लोग प्राकृतिक खेती के बारे में जानते हैं और उसे ही सफल भविष्य की कुंजी मानते हैं।**
- **75 प्रतिशत ग्रहणियों ने प्राकृतिक रूप से उपजाये हुए भोजन पदार्थों में सबसे पहले अनाज एवं दालों की मांग की है।**
- **100 प्रतिशत उपभोक्ताओं ने प्राकृतिक रूप से उपजे भोजन पदार्थों की अधिक कीमत देने के लिए अपनी स्वीकृति दी है।**
- **85 प्रतिशत किसानों एवं उपभोक्ताओं ने प्राकृतिक रूप से उपजे भोजन पदार्थों के मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण की जरूरत बताई है।**
- **60 प्रतिशत से अधिक ग्रहणियों ने प्रमाणीकरण के लिए किसी सरकारी एजेंसी में अधिक विश्वास व्यक्त किया है।**
- **सभी व्यापारियों का कहना है कि यदि प्रमाणित उपज मिल सके तो किसानों को भी अधिक दाम मिल सकते हैं।**

यूनिट 2.3 ओर्गेनिक फार्मिंग – एक सफल प्रयोग

संतुलित आहार का स्वस्थ जीवन के लिए विशेष महत्व है। भोजन में विटामिन, एमीनो एसिड, खनिज लवण बीमारियों के विरूद्ध रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। भोजन सिर्फ पेट भरने के लिए ही नहीं अपितु संतुलित विकास एवं सुखमय जीवन के लिए किया जाना चाहिए। इस स्थिति में उच्च गुणवत्ता युक्त भोजन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। आधुनिक खेती के नाम पर जिस प्रकार भोजन पदार्थों की गुणवत्ता के प्रति अब तक हमने लापरवाह नजरिया अपनाया उसे सुधारने का वक्त आ गया है। प्राकृतिक खेती (ओर्गेनिक फार्मिंग) इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

आधुनिक खेती के विज्ञान की खोज करने वाले कई विकसित देशों में आज भोजन की गुणवत्ता पर व्यापक बहस छिड़ी हुई है। इसके परिणामस्वरूप कई विकसित देशों की सरकारों ने भोजन पदार्थों की शुद्धता के नये कानून बनाये हैं। प्राकृतिक, जैविक खेती का प्रचलन (जिसे आर्गेनिक फार्मिंग भी कहा जा रहा है) बढ़ने लगा है। कई देशों में बड़े–बड़े डिपार्टमेन्टल स्टोर्स जो पहले रंगरूप के आधार पर अधिक कीमत वसूलते थे अब प्राकृतिक खेती द्वारा उपजी फसलों (चाहे वो देखने में उतनी अच्छी ना हो) की अधिक कीमत पा रहे हैं।

हमारे देश में भी अब समय आ गया है कि हम आर्गेनिक फार्मिंग को सुनियोजित तरीके से अपनाने लगें। इस कार्यक्रम द्वारा हम सभी प्रकार के उपभोक्ताओं को शुद्ध भोजन पदार्थ उपलब्ध कराने के साथ–साथ प्राकृतिक–टिकाऊ खेती का रास्ता भी खोल सकेंगें। शुरूआत में स्थानीय बाजार की मांग को पूरा करने के साथ कुछ ही समय में हम अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी अपने उत्पादों की बिक्री करने में सक्षम होंगे।

कई लोगों का मानना है कि आधुनिक खेती की तुलना में आर्गेनिक फार्मिंग अपनाने से उत्पादन घट जायेगा और खेती की लागत बढ़ जायेगी। हालांकि आज तक इस बात को सही सिद्ध करने के लिए कोई ठोस वैज्ञानिक आधार सामने नहीं आया है। लेकिन माहौल जरूर बना दिया गया है। कई जागरूक किसानों से सम्पर्क करने पर यह पाया गया कि वे लोग आधुनिक खेती के नाम पर हो रहे विभिन्न दुष्परिणामों से भली भांति परिचित हैं, लेकिन प्राकृतिक खेती अपनाने पर होने वाले नुकसान से डरते हैं। यह बात सही नहीं है। मोरारका

फाउण्डेशन ने गत् 5 वर्षों में हजारों किसानों को ओर्गेनिक फार्मिंग अपनाने की सलाह दी। पूर्णतया वैज्ञानिक आधार पर की गई ओर्गेनिक फार्मिंग से ना सिर्फ लागत में कमी आई अपितु आधुनिक खेती की तुलना में उत्पादन भी बढ़ा। इससे किसानों को मिलने वाले लाभ में कई गुणा बढ़ोतरी हो गई। आर्गेनिक फार्मिंग से उपजे अनाज, दालें, तिलहन, फल–सब्जी की गुणवत्ता में इतना अधिक परिवर्तन पाया गया कि इसकी उपज के दाम अधिक मिले और खाने में भी स्वाद आने लगा। आज सैंकड़ों किसानों द्वारा मोरारका फाउण्डेशन के कार्यक्षेत्र (नवलगढ़) में सफलतापूर्वक ओर्गेनिक फार्मिंग की जा रही है। इस कार्यक्रम के तहत गेहूं की खेती से मिलने वाले परिणाम यहां दिये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शनों के परिणामों की सारांश रिर्पोट

नवलगढ़ पंचायत समिति जिला झुन्झुनू में वर्ष 2000–2001 में ओर्गेनिक फार्मिंग के तहत गेहूं की खेती के लिए किये गये प्रदर्शनों के परिणाम

1. गेहूँ के ओर्गेनिक फार्मिंग प्रदर्शन कार्यक्रम में शामिल कृषक परिवारों की संख्या - 50
2. कुल बुवाई क्षेत्रफल - 150.5 बीघा, औसत - 3.01 बीघा प्रति परिवार (1 बीघा = 0.1 हैक्ट.)
3. आदानों की लागत में रासायनिक खाद से बचत - 14035 रूपये (रू. 93.25 प्रति बीघा बचत)
4. आदानों की लागत में सिंचाई के खर्च में बचत - 3250 रूपये (रू. 50 प्रति सिंचाई, रू. 21.59 प्रति बीघा एवं औसतन 1.3 सिंचाई कम लगी)
5. आदानों की लागत में दीमक की दवा के खर्च में बचत - 1500.50 रूपये (रू. 10 प्रति बीघा दवा में बचत)
6. आदानों की लागत में निराई-गुड़ाई की लागत में बचत - 4515 रूपये (रू. 30 प्रति बीघा बचत)
7. आदानों की लागत में कुल बचत - 23300.50 रूपये (रू. 154.82 प्रति बीघा औसत बचत)
8. गेहूं का कुल उत्पादन - 555.75 क्विंटल (औसत 3.69 प्रति बीघा)
9. गेहूं के उत्पादन में कुल अतिरिक्त वृद्धि - 47.7 क्विंटल, औसत 0.32 क्विं प्रति बीघा (इन्हीं किसानों द्वारा अन्य खेतों की तुलना में)
10. भूसा का कुल उत्पादन हुआ - 905.5 क्विंटल, औसत 6.01 क्विं प्रति बीघा
11. भूसा के उत्पादन में कुल अतिरिक्त वृद्धि - 193.5 क्विंटल, औसत 1.28 क्विं प्रति बीघा (इन्हीं किसानों द्वारा अन्य खेतों की तुलना में)
12. भूसा से प्राप्त अतिरिक्त आमदनी - 29025 रूपये, औसत रू. 192.85 प्रति बीघा
13. प्रति क्विंटल औसत अधिक दाम मिला - 100 रूपये

14. कुल अधिक मूल्य मिला - 50805 रूपये
15. कुल अतिरिक्त उंत्पादन हुआ उसका मूल्य - 33390 रूपये
16. गेहूँ की फसल में कुल अतिरिक्त लाभ मिला - 23300.50 (आदानों की लागत) + 29025 (भूसा) + 50805 (अनाज का अधिक भाव) + 33390 (अतिरिक्त अनाज का भाव) = 136520.5 रूपये
17. वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग में ली गई कुल मात्रा - 677.25 क्विंटल, औसत 4.5 क्विं प्रति बीघा
18. वर्मी कम्पोस्ट की कुल कीमत - 27090 रूपये, औसत 180 रूपये प्रति बीघा
19. गोबर की खाद की कुल मात्रा - 2257.5 क्विंटल, औसत 15 क्विं प्रति बीघा
20. गोबर की खाद की कुल कीमत - 22575 रूपये, औसत 150 रूपये प्रति बीघा
21. वर्मी कम्पोस्ट व गोबर की खाद का कुल खर्चा - 27090 + 22575 = 49665 रूपये, औसत 330 रूपये प्रति बीघा

अतिरिक्त शुद्ध बचत = रू. 1,36,520 - 49655 = रू. 86,855 (रू. 577 प्रतिबीघा)

ओर्गेनिक फार्मिंग को बढ़ावा देने के प्रयास में कई प्रकार की समस्याऐं सामने आई है। जिनमें प्रमुख रूप से उत्तम देशी खाद की उपलब्धता की कमी है। इस दिशा में लगातार प्रयासों द्वारा मोरारका फाउण्डेशन ने वर्मी कल्चर तकनीक का विकास किया है। इस खाद के प्रयोग से फसलों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व प्राकृतिक रूप में मिलने लगे हैं। वर्मीकम्पोस्ट से जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ गई और मिट्टी में नमी का संरक्षण होने लगा। इससे उत्पादन में भी वृद्धि हुई है।

दूसरे प्रकार की समस्या खेती के तौर तरीकों के संबध में देखने में आई। इस समस्या को हल करने के लिए एक एकीकृत पद्धति का विकास किया गया। इसके तहत खेत तैयार करने से लेकर फसलों को बेचने तक की व्यवस्था में हर कदम पर छोटे-छोटे परिवर्तनों द्वारा कई अन्य समस्याओं को दूर किया गया।

आज भी हमारे देश में मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण की कोई व्यवस्था नहीं है। इस समस्या को हल करने के लिए संस्था द्वारा अपने स्तर पर मानकीकरण की व्यवस्था की जा रही है। शुरूआत में **ISO 9002** के तहत प्रमाणीकरण कराया जाना प्रस्तावित है। **IFOAM** नामक विश्व स्तरीय संस्था से भी तालमेल के प्रयास किये जा रहे हैं।

इस प्रयोग के सबसे महत्वपूर्ण परिणाम के रूप में अब तक जितने भी किसानों को इस कार्यक्रम से जोड़ा गया है उनका लगातार जुड़े रहना पाया गया।

अभ्यास 2

1. क्या रसायनिक खाद एवं दवाओं के उपयोग से पैदा की गई फसल की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव पडता है? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो क्या प्रभाव पड़ता है। ....

....

....

....

2. क्या रसायनिक खाद एवं दवाओं के उपयोग से पैदा की गई फसल से खाने वालों के स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव पड़ता है। हाँ/नहीं, यदि हाँ तो क्या प्रभाव हो रहा है? ....

....

....

....

3. क्या रसायनिक खाद एवं दवाओं के उपयोग के बिना खेती की जा सकती है? हाँ/नहीं, क्यों? ....

....

....

....

4.क्या आप सोचते हैं कि ओर्गेनिक फार्मिंग से उपज की मात्रा में कमी आती है? हाँ/नहीं क्यों? ....

....

....

....

5. क्या ओर्गेनिक फार्मिंग से उपजी हुई फसलें खाने में (स्वाद, पोष्टिकता इत्यादि) बेहतर होती है? हाँ/नहीं, क्यों? ....

....

....

....

6. क्या ओर्गेनिक फार्मिंग से उपजी हुई फसलों का भाव अधिक होना चाहिए? हाँ/नहीं, क्यों?

....

....

....

7. क्या ओर्गेनिक फार्मिंग से उपजी हुई फसलों की क्वालिटी की गारंटी के लिए उसका प्रमाणीकरण होना चाहिए? हाँ/नहीं, क्यों ....

....

....

8. प्रमाणीकरण का कार्य करने के लिए किस प्रकार की एजेंसी उचित रहेगी, इस एजेंसी की क्या जिम्मेदारियां होनी चाहिऐं? अपने विचार लिखें।..........

....

....

....

9. खेती में रसायन विहीन होने के लिए प्रमाणीकरण का क्या आधार होना चाहिए? अपने विचार लिखें। ....

....

....

....

10. भोजन पदार्थों की गुणवत्ता एवं ओर्गेनिक फार्मिंग के बारे में अन्य महत्वपूर्ण सूचनाऐं।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

मोड्यूल – 3

कम्पोस्टिंग–पारम्परिक उर्वरक प्रबंध का साधन

युनिट 3.1 कम्पोस्टिंग

युनिट 3.2 कम्पोस्टिंग की विधियाँ

यूनिट 3.1 कम्पोस्टिंग

जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ और मनुष्य ने खेती करना प्रारम्भ किया, तभी से कम्पोस्ट के प्रति जागरूकता पैदा हो गई। किसी भी प्रकार के पेड़ पौधों अथवा पशुओं के अपशिष्ट पदार्थों को कम्पोस्ट में बदलने की एक सुचारू व्यवस्था स्वयं प्रकृति ने की हुई है। करीब गत् 100 वर्षों में भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने की इच्छा ने वैज्ञानिकों को कम्पोस्ट बनाने के नए एवं उन्नत तरीके खोजने की ओर अग्रसर किया। शुरू में खेतों पर उपलब्ध अपशिष्ट पदार्थों को ही कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयोग में लिया गया। लेकिन धीरे धीरे कम्पोस्ट की बढ़ती हुई मांग को देखकर शहरी एवं घरेलू कचरे की कम्पोस्ट खाद भी बनाई जाने लगी।

कम्पोस्टींग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जैविक तथा रासायनिक दोनों ही क्रियाएं साथ–साथ चलती हैं। जैविक क्रिया के अन्तर्गत दो प्रकार के जीवाणु, एक वह जो वायु की उपस्थिति में क्रियाशील होते हैं और दूसरे वह जो वायु की अनुपस्थिति में अपनी साधारण क्रिया द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को कम्पोस्ट में बदलते हैं।

कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया में जैव–रासायनिक क्रियाओं के तहत अपशिष्ट पदार्थों का तापमान बढ़ाने तथा घटाने की दोनो ही प्रक्रियाएं होती हैं। कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया के दौरान सिवाय उचित नमी, हवा एवं पदार्थों के मिश्रण के अनुपात को छोड़कर अन्य किसी भी बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती।

गत् कुछ वर्षों के दौरान रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती हुई लागत एवं उनको बनाने में लगने वाली उर्जा को देखते हुए कम्पोस्टिंग की कई नई पद्धतियों का विकास किया गया है। हमारे देश एवं सम्पूर्ण विश्व में कृषि वैज्ञानिकों ने कई वर्षों की शोध एवं प्रयोगों के पश्चात् अब यह मान लिया कि रासायनिक उर्वरकों के साथ अच्छी किस्म की कम्पोस्ट खाद खेत में डालने पर पौधों को उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है।

रसायनिक तौर पर कम्पोस्ट कई प्रकार के पॉलीमराइज्ड पदार्थों का मिश्रण है इसमें विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्व सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। एक अच्छी कम्पोस्ट में अधिक मात्रा में पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में रहते हैं। यों तो प्रकृति ने स्वयं अपशिष्ट पदार्थों को गला सड़ाकर कम्पोस्ट बनाये जाने की व्यवस्था कर रखी है लेकिन कुछ सावधानियां एवं सही तरीकों का उपयोग करने से साधारण कम्पोस्ट को भी उच्च गुणवत्ता की कम्पोस्ट बनाया जा सकता है।

कम्पोस्ट की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कई प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैः—

कार्बन नाइट्रोजन अनुपात :— सूक्ष्म जीवाणुओं को अपनी वृद्धि के लिए कार्बन की आवश्यकता होती है और प्रोटीन संश्लेषण के लिए नाइट्रोजन की जरूरत होती है। ऐसे अपशिष्ट पदार्थ जैसे कि अनाज, फसलों का भूसा, सरसों की तूड़ी, गन्ने का कचरा, कपास की फसल के अवशेष इत्यादि में नाइट्रोजन बहुत कम होता है इसलिए जैव गतिविधियों के तहत प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है और कई महिनों में जाकर पूरी हो पाती है। ठीक इसी प्रकार अत्यधिक नाइट्रोजन वाले पदार्थों को डीकम्पोज करने पर नाइट्रोजन अमोनिया गैस में बदलकर वातावरण में चली जाती है। इसी अमोनिया गैस का एक भाग नाइट्राइट एवं नाइट्रेट के रूप में अघुलनशील अवस्था में आ जाता है। इसलिए वैज्ञानिकों द्वारा कार्बन — नाइट्रोजन के अनुपात को अधिकतम एक गुणा चालीस तक रखने की सिफारिश की गई है।

आमतौर पर इस बात से सभी किसान परिचित हैं कि यदि कम नाइट्रोजन वाले पदार्थ को खुले में यों ही छोड़ दिया जाये तब भी तथा नाइट्रोजन की अधिकता वाले पशुओं के गोबर को खुले में छोड़ने पर जिस प्रकार की खाद बनती है उसकी मात्रा, वजन एवं गुणवत्ता इन तीनों ही दृष्टि से निम्न स्तर की होती है। अतः यह जरूरी है कि किसानों द्वारा अपने पास उपलब्ध अपशिष्ट पदार्थों का उचित मिश्रण कर कम्पोस्ट खाद बनाई जाये। इसके लिए निम्न बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है।

कचरे का प्रकार :— कई बार यह देखने में आता है कि किसानों द्वारा खेत में उपलब्ध फसल अवशेषों को सीधे ही कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए डाल दिया जाता है। जैसा कि सभी जानते हैं कि किसी भी पौधे के तने अथवा जड़ का बाहरी आवरण कठोर होता है इसके कारण उस आवरण को भेदकर नमी एवं जीवाणु दोनों को ही अपनी गतिविधि प्रारम्भ करने में मुश्किल आती है। ऐसी स्थिति में यदि फसल अवशेषों को औसत 5 से.मी. के नाप के टुकड़ों में काट दिया जाये तो उचित नमी की उपस्थिति में जीवाणुओं के लिए प्रवेश करना आसान हो जाता है। इसलिए छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़कर बनाई जाने वाली कम्पोस्ट जल्दी बनती है।

नमी एवं हवा :— वायु की उपस्थिति में गतिशील जीवाणु के लिए 40—60 प्रतिशत आद्रता अत्यन्त जरूरी है। इससे कम नमी होने पर कचरे का तापमान बढ़ने लगता है और जीवाणुओं की गतिशीलता कम हो जाती है। वायु की अनुपस्थिति में गतिशील जीवाणुओं के लिए नमी का महत्व नहीं होता लेकिन इस प्रकार के जीवाणुओं की संख्या कम होती है।

देखा गया है कि साधारण कूड़े के ढ़ेर के रूप में जब कम्पोस्ट खाद बनाई जाती है और उसमें जब नमी की कमी होती है तब कूडे के ढेर के अंदर का तापमान तो अत्यधिक बढ़ जाता है, लेकिन खाद बहुत धीरे बनती है। इसी बात को ध्यान में रखकर 30–40 वर्षों में कम्पोस्ट बनाने की जितनी भी नई विधियां विकसित की गई हैं उसमें नमी एवं वायु संचार का विशेष ध्यान रखा गया है।

कचरे का मिश्रण :– प्रत्येक खेत एवं उसके आसपास विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ होते हैं। विभिन्न अपशिष्ट पदार्थों के गुण–अवगुणों को ध्यान में रखकर उचित मिश्रण बनाने से अच्छी क्वालिटी की कम्पोस्ट बनाई जा सकती है। पदार्थों के मिश्रण बनाते समय सूखे पदार्थों के साथ अधिक नमी वाले पदार्थों के मिलाने से, कम नाइट्रोजन वाले पदार्थों में अधिक नाइट्रोजन वाले पदार्थ मिलाने से, तथा अम्लीय प्रकृति के पदार्थों में खेत की मिट्टी मिलाने पर और क्षारीय पदार्थों में रॉक फास्फेट डालने पर जल्दी एवं उचित गुणवत्ता की कम्पोस्ट बनाई जा सकती है। कई बार अपशिष्ट पदार्थों में जैव गतिविधि प्रारम्भ करने के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं के कल्चर के पैकेट भी डाले जाते हैं।

तापमान :– कचरे के ढ़ेर में 40 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तक उष्मा पैदा करने वाली जैव रासायनिक गतिविधियां चलती रहती हैं। लेकिन इससे अधिक तापमान होते ही इस श्रेणी के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और उष्मा ग्रहण करने वाले जीवाणु गतिशील हो जाते हैं जो कि 60–70 डिग्री तक रहता है। अधिक तापमान का एक अन्य फायदा रोगकारक जीवाणुओं को नष्ट करने का भी रहता है।

कम्पोस्ट खाद बनाने के उचित विज्ञान के उपलब्ध होते हुये भी आज कृषकों का रवैया उदासीन है। रसायनिक खाद के रूप में उपलब्ध पोषक तत्वों की सरल उपलब्धता ने उन्हें इस प्रकार का नजरिया अपनाने को प्रेरित किया है।

कुछ हद तक किसानों को अकेले दोष देना भी ठीक नहीं है। गत 30–35 वर्षों में जिस तरीके से रसायनों के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है उससे इस प्रकार का परिवर्तन होना बहुत आसान रहा है। अब कुछ समय पहले से ही यह कहा जा रहा है कि रसायनिक उर्वरकों के साथ कम्पोस्ट देने पर कुल लाभ बढ़ जाता है।

युनिट 3.2 कम्पोस्टिंग की विधियाँ

कम्पोस्टिंग के विज्ञान की खाज में भारत एवं तथाकथित सभी विकसित देश लगभग समान स्तर पर हैं। विकसित देशों के वैज्ञानिकों द्वारा भी इस क्षेत्र में कुछ बहुत अधिक नहीं किया जा सका है। इसका शायद एक कारण यह भी हो सकता है कि इस क्षेत्र में यानि कम्पोस्टिंग की नई विधियों के विकास से नये व्यापार अथा भारी मुनाफे की संभावनाऐं नहीं बनतीं।

पूर्णतया प्राकृतिक तरीकों से बनने वाली कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया को सुधारने एवं तेज करने के प्रयासों ने कई नये तरीकों को जन्म दिया है। यहां कुछ प्रमुख विधियों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

इन्दौर विधी :— हमारे देश में सबसे पहले श्री होवर्ड द्वारा वर्ष 1920.30 के दौरान कम्पोस्टिंग की वैज्ञानिक विधियों पर काम किया गया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों को परत दर परत लगाकर वायु प्रवाह की स्थिति में अपशिष्ट पदार्थों के डीकम्पोजिशन की परिस्थितियां पैदा करीं। इस विधि को बाद में इन्दौर विधि के नाम से जाना गया। इस विधि में फसल अवशेष को गोबर के साथ ऊंचे स्थानों पर परतों में डालकर सड़ाया जाता है। उचित नमी बनाये रखने के लिए समय समय पर इस मिश्रण पर पानी का छिड़काव किया जाता है। खाद बनने के दौरान कम से कम इस मिश्रण को दो बार पलटा जाता है। ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्रों में मिश्रण को ढ़ेर बनाकर मिट्टी से ढ़ककर सड़ाया जाता है। चूंकि इस विधि में पानी की अधिक जरूरत होती है इसलिए यह विधि अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में ही सफल हो पाई है।
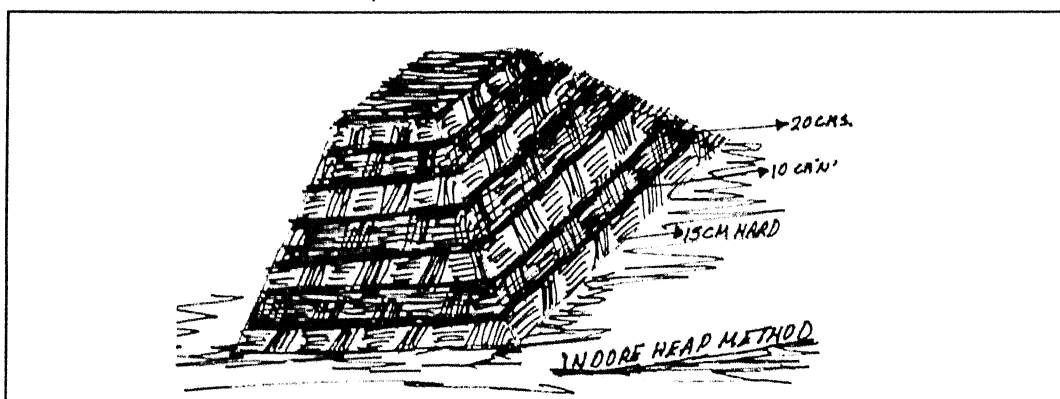
कम्पोस्ट बनाने की इंदौर विधि

बैंगलोर विधि :– वर्ष 1939 में श्री आचार्य नामक वैज्ञानिक ने मानव विष्ठा एवं शहरी कचरे के द्वारा वायुहीन स्थिति में डीकम्पोज करने की विधि का विकास किया। बाद में यह विधि 'बैंगलोर विधि' के नाम से प्रचलित हुई। इस विधि में जमीन से नीचे करीब 1 मीटर गहरी खाई–खड्डा खोदा जाता है। खड्डे की लम्बाई–चौड़ाई जमीन की उपलब्धता एवं कचरे के मिश्रण की मात्रा पर निर्भर करती है। इस विधि में फसलों का कचरा तथा मानव विष्ठा (यदि उपलब्ध ना हो तो गोबर) को परतों में भरा जाता है। भरे हुए खड्डे को जैविक पदार्थ से ढ़ककर सड़ने हेतु छोड़ दिया जाता है। थोड़े दिनों बाद जब मिश्रण नीचे बैठ जाता है तब कुछ परतें और लगा दीं जाती हैं। इस विधि में चूंकि पानी का उपयोग नहीं होता इसलिए यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई। लेकिन कम्पोस्ट बनने में 6 से 8 महीने लगने के कारण बहुत अधिक प्रचलन में नहीं आ सकी।
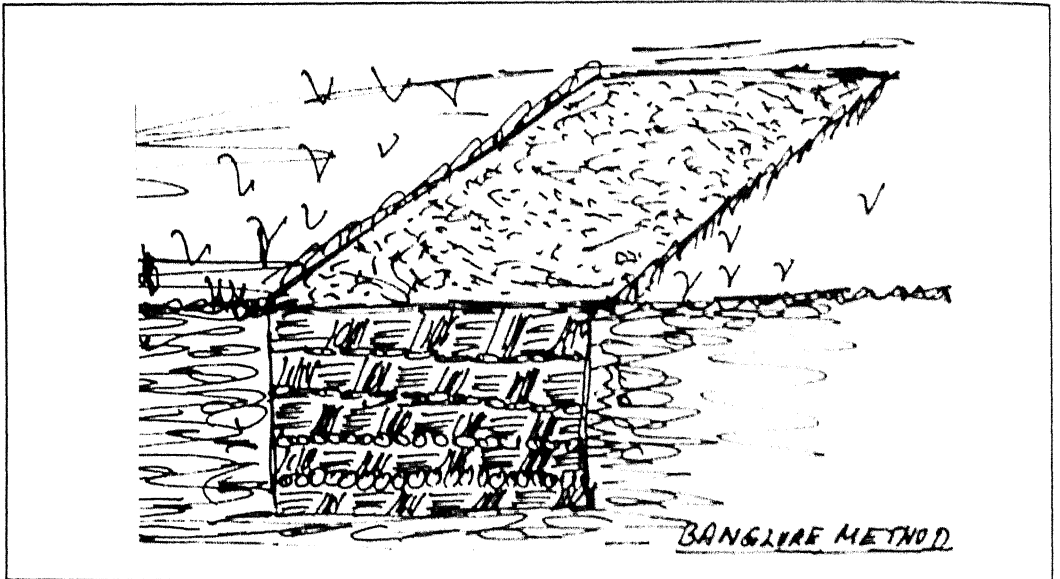
कम्पोस्ट बनाने की बैंगलोर विधि

उच्च ताप विधि :– आजादी के बाद शहरी कचरे के निष्पादन की समस्या को देखते हुए इस विधि का विकास किया गया। नालों में बहकर जाने वाले ठोस पदार्थ, मानव मल, पशुओं का गोबर और अन्य शहरी कचरे में उपलब्ध हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए यह विधि उपयोगी पाई गई। इस विधि में जमीन के ऊपर या गड्ढा कर कचरे को ढेर के रूप में लगाकर 3 से.मी. की मोटाई के मिट्टी के प्लास्टर से ढक दिया जाता है। ढेर में कुछ ही दिनों मे तापमान 60–70 डिग्री तक हो जाता है। करीब दो सप्ताह पश्चात कचरे के ढेर की पलटी लगाते हैं और उसे फिर से मिट्टी के प्लास्टर से सील कर देते है। इस विधि में करीब 2–3 महीनों में ही कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाती है।

बर्कले विधि :– अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय द्वारा बर्कले नामक स्थान पर इस विधि का विकास किये जाने के कारण इसे बर्कले विधि के नाम से जाना जाता है। सैल्यूलोज की अधिकता वाले कचरे के दो भाग के साथ नाइट्रोजन की अधिकता वाले कचरे के एक भाग के साथ मिलाया जाता है। कचरे के ढ़ेर को लगातार नम रखा जाकर प्रत्येक दो दिन बाद ढ़ेरी को पलटी लगाते हैं। इस विधि में काम में लेने लायक खाद 2 से 4 सप्ताह में तैयार हो जाती है।

नैडेप विधि :– ऐसे स्थानों पर जहां नाइट्रोजन की बहुलता वाला कचरा उपलब्ध न हो तब मात्र 100 कि.ग्रा. गाय के गोबर एवं मूत्र के द्वारा करीब 2500 कि. ग्रा. सूखे कचरे एवं मिट्टी के मिश्रण से खाद बनाई जा सकती है। इस विधि में जमीन के ऊपर 5 फुट चौड़ाई तथा 12 फुट लम्बा एवं 3 फुट ऊंचा मैसनरी स्ट्रक्चर (ईंट अथवा पत्थर की चिनाई द्वारा) बनाया जाता है। चारों तरफ दीवार में निश्चित संख्या में आयताकार छिद्र रखे जाते हैं। इस पिट में पहली परत सूखे कचरे की, दूसरी परत मिट्टी की और उन दोनों परतों को 10 कि ग्रा. गोबर एवं गोमूत्र को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़क दिया जाता है। इस प्रकार 8 से 10 परतों में गड्डा पूरा भर जाता है और इसमें लगातार पानी छिड़क कर नमी बनाई जाती है। सूखे कचरे के प्रकार एवं वातावरण के तापमान के अनुसार इस विधि से 90–120 दिनों में खाद बनकर तैयार हो जाती हैं।

गोबर गैस खाद :– ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू ईंधन की जरूरत को पूरा करने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर गोबर गैस संयत्र लगाये गये हैं। इन संयत्रों में गैस बनने के पश्चात् गोबर की स्लरी निकलती है। इस स्लरी को निकलने के साथ ही पानी के धोरों द्वारा पानी के साथ खेत में दिया जा सकता है। अन्य स्थिति में इस स्लरी को जमीन में खोदे गये गड्डों में सुखा लिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर काम में लिया जा सकता है। इस विधि द्वारा तैयार खाद के लगातार उपयोग से खेत में जमीन पर एक कड़ी परत बन जाती है जो बाद में फसल की बढ़वार में रूकावट पैदा करती है।

गोठा विधि :– जिस बाड़े में जानवर रखे जाते हैं उस स्थान पर जमीन पर 4 अंगुल ऊंचाई में मुलायम कूड़ा करकट डालकर उसे मिट्टी से ढ़क दिया जाता है। इस जमीन के ऊपर पशुओं को रखा जाने से जानवरों का मल मूत्र वहीं गिरता रहेगा और कुछ दिनों पश्चात् दूसरी परत लगाई जा सकती है। इस क्रिया में पशु को तकलीफ देने वाले जन्तु न बढ़े इसलिए फर्श पर चूने का छिड़काव कर देते हैं। इस विधि से 2–3 माह पश्चात बनी हुई खाद को फर्श से हटाकर काम में लिया जा सकता है और जरूरत होने पर दुबारा खाद बनाई जा सकती है।
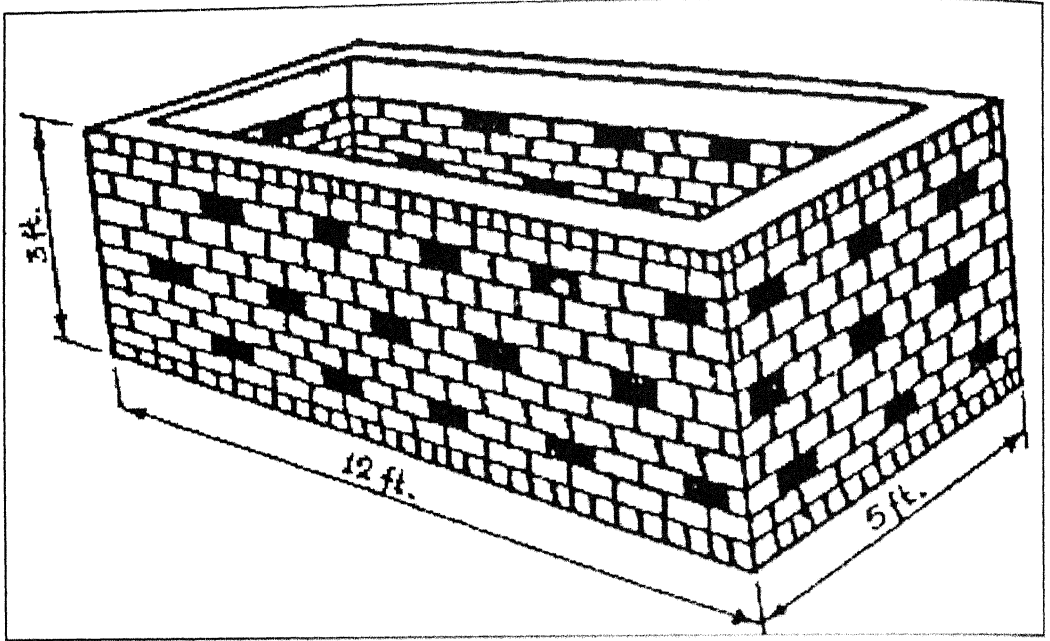
नादेप कम्पोस्ट पिट
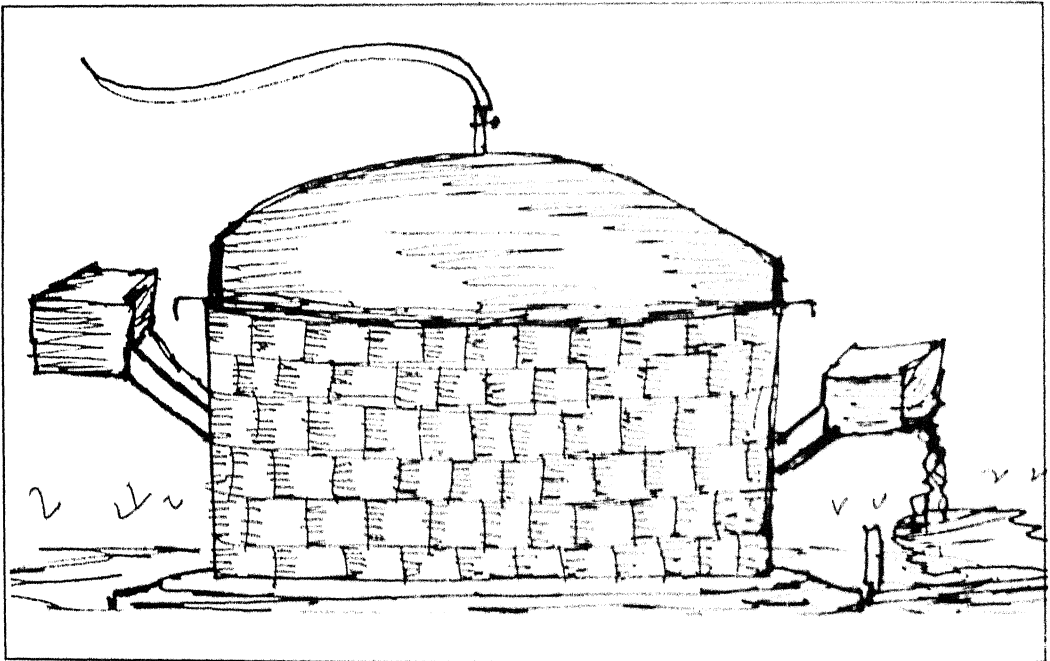
बायो गैस प्लान्ट से स्लरी निकलती हुई

त्वरित खाद :– इस विधि में मिट्टी के पुराने मटकों में समान मात्रा में गोबर एवं गौमूत्र को उसके दो गुना पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। कुल 4 किलो के मिश्रण में 100 ग्राम गुड़ का चूरा डालकर मटके का मूहं बंद कर दिया जाता है। 7 दिन पश्चात् इस घोल को 10 गुणा पानी के साथ मिलाकर उपयोग में लिया जा सकता है।

सींग खाद :– प्रायः गाय के हर एक बच्चे के जन्म पर सींग के ऊपर एक गोल रेखा उभरती है। इस प्रकार की गाय के सींग प्राप्त कर उनमें गाय का गोबर भर शरद ऋतु की पूनम के दिन सींग को गड्डे में गाड़ कर 6 माह पश्चात् अमावस्या के दिन उसे बाहर निकाला जाता है। एक सींग से औसत 35 ग्राम उपलब्ध खाद को 35 लीटर पानी में मिलाकर एक बड़े ड्रम में एक घंटा घड़ी के घूमने की विपरीत दिशा में मथनी से मथा जाता है। ड्रम में नीम की हरी पत्तीयां कूटकर मथते समय डालने से उसमें जन्तुनाशक दवा के गुण आते हैं। यह घोल एक एकड़ गीली जमीन में सुबह या शाम बुवाई के समय छिड़का जा सकता है।

शोर्टकट खाद :– इतनी वैज्ञानिक विधियों के होते हुये भी आम किसान का कम्पोस्ट खाद बनाने का तरीका बिल्कुल अलग है। अब किसान अपने पशु–बाड़े के पास खाद बनाता है। हर रोज निकलने वाले गोबर, घरेलु कचरे और खेत का ऐसा कचरा जिसे पशु नहीं खा सकते हैं उन्हें वह एक ढ़ेर के रूप में डालता जाता है। साल में दो बार नई फसल बोने के पहले इस ढ़ेर के कचरे को लाद कर खेत में डाल दिया जाता है। इस प्रकार बनी हुई खाद किसी भी प्रकार से कम्पोस्ट नहीं कही जा सकती है। हर रोज थोड़ा–थोड़ा कचरा डालने से ढ़ेर में न तो वायुविहीन और न हीं वायु प्रवाह की उचित स्थितियां बन पाती हैं। तापमान के सन्दर्भ में भी यही होता है। इस ढ़ेर में किसी भी प्रकार के पोषक तत्वों के होने की सम्भावना भी बहुत कम होती है। यह तो सिर्फ मिट्टी में ओर्गेनिक मेटर की जरूरत को पूरा करने में ही सक्षम होती है। लेकिन इसी के साथ इस प्रकार की कम्पोस्ट खाद के साथ कई प्रकार के खरपतवार के बीज एवं दीमक भी खेतों में पहुंच जाती है।

रसायनों की उपलब्धता ने किसानों को देशी खाद के प्रति लापरवाह बना दिया। आज अधिकतर किसान देशी खाद के नाम पर शोर्टकट विधि अपनाते हैं। यह हमारे अनुसार मात्र खाना–पूर्ति ही कही जा सकती है।

इस बीच हमने एक अन्य पुस्तक 'ओर्गेनिक फार्मिंग–एक नई शुरूआत' का भी प्रकाशन किया है। यह दोनों पुस्तकें पाठकों को इस विषय की समझ एवं इसके लाभ के बारे में पूरक जानकारी देने में सक्षम हैं।

गोबर को सींग में भरते हुए

भरे हुए सींगों को जमीन में उल्टा गाड़ना
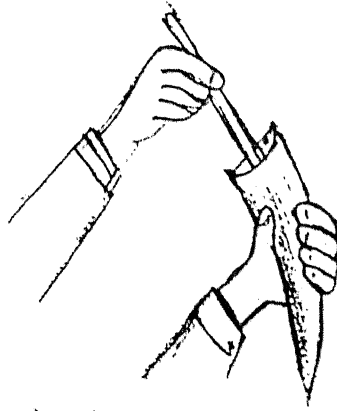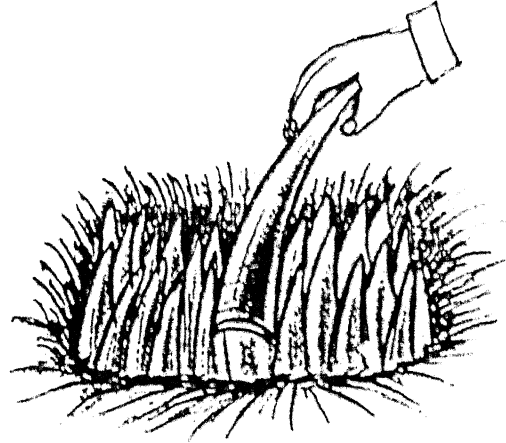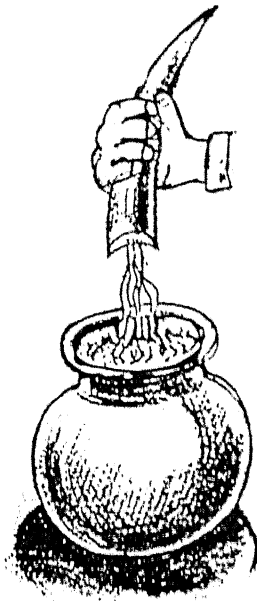
सींग से खाद बन जाने पर मिट्टी के घड़े में एकत्रित करना
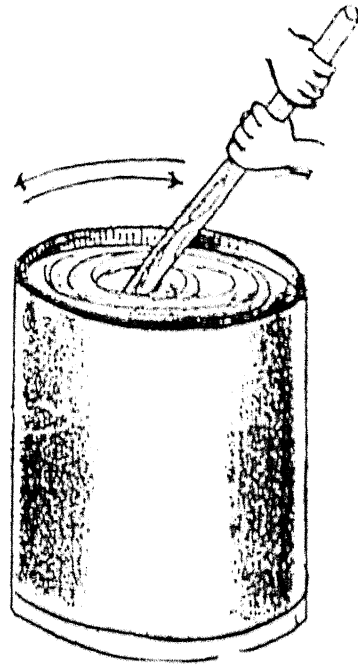
सींग की खाद को पानी में घोलना

सींग खाद बनाने की विधि

अभ्यास 3

1. आप अब तक किस प्रकार के कचरे (पदार्थों) की कम्पोस्ट बनाते रहे हैं एवं उसकी कौनसी विधि अपनाई गई है? विवरण लिखें। ....

....

....

....

....

....

2. आपके विचार से और कौन–कौन से पदार्थों की कम्पोस्ट बनाई जानी चाहिए? सूची बनाऐं।..............................

....

....

....

3.अब तक आपके द्वारा कम्पोस्ट बनाने के लिए अपनाये जा रहे तरीके की क्या विशेषताऐं हैं?

....

....

....

4. आप द्वारा बनाई जा रही कम्पोस्ट खाद की गुणवत्ता के बारे में अपने विचार लिखें।

....

....

....

....

5. क्या आप ऐसी कम्पोस्ट बना सकते हैं, कि फिर आपको कोई भी रसायनिक उर्वरक न देना पड़े? हाँ/नहीं, यह किस प्रकार से सम्भव होगा। ....

....

....

....

....

....

....

....

....
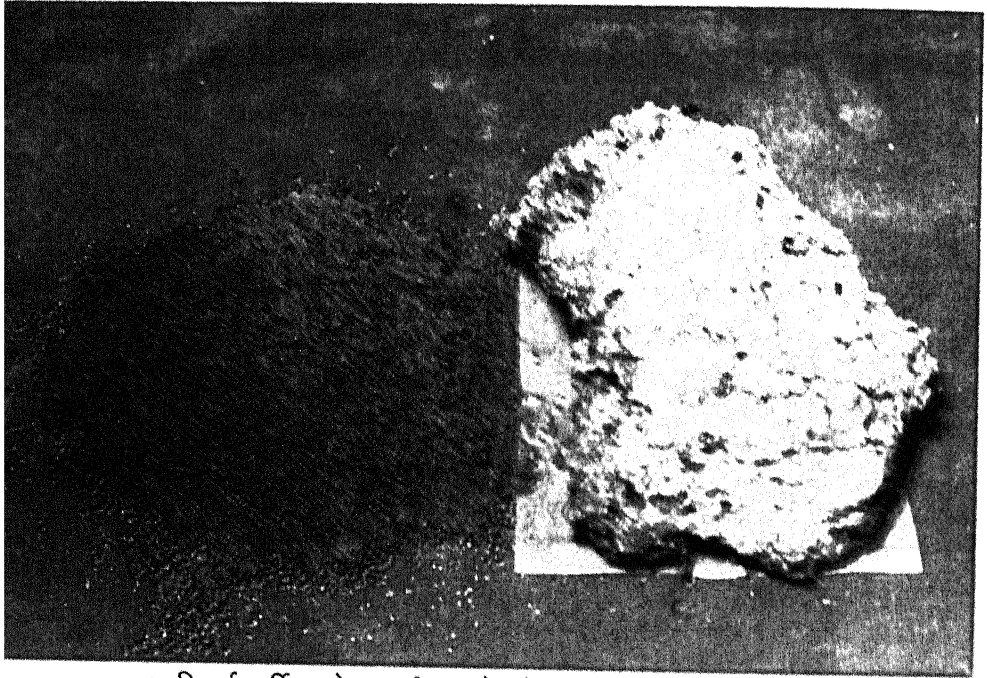
बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट एवं गाय के गोबर का तुलनात्मक चित्र

मोड्यूल – 4
वर्मी कल्चर – कम्पोस्ट

युनिट 4.1 वर्मीकल्चर

युनिट 4.2 वर्मीकल्चर के लिए केचुए

युनिट 4.3 वर्मी कल्चर में ऐसिनिया फटिडा का उपयोग

युनिट 4.4 घरेलू स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन

यूनिट 4.1 वर्मीकल्चर

पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास के साथ असंख्य प्रकार के जीवों की भी उत्पत्ति हुई। इन्हीं में से एक केचुऐ भी हैं। केचुंए पूरी धरती पर समान रूप से पाये जाते हैं। मुख्यतया केचुए जमीनी धरातल या जमीन के नीचे रहते हैं। दोनों ही प्रकार से रहने के दौरान केचुओं द्वारा कचरा एवं मिट्टी को खाकर उसके अपशिष्ट पदार्थ को खाद के रूप में पेड़ पौधों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था प्रकृति ने शायद मानव की बढ़ती हुई जरूरतों को ध्यान में रखकर कर रखी थी।

लाखों–करोड़ों वर्षों से पृथ्वी पर पेड़ पौधों के लिए उचित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध कराने में इन केचुओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। केचुओं की करीब 4200 से अधिक प्रजातियां पूरे विश्व में अब तक पाई गई है। करीब 50 वर्ष पहले तक जब रासायनिक खाद का विकास नहीं हुआ था उस समय तक केचुए द्वारा बनाई हुई खाद पेड़ पौधों को नैसर्गिक रूप में मिलती रही। केचुए द्वारा नैसर्गिक रूप में की जाने वाली क्रिया को मात्र 10 – 20 वर्ष पहले ही कृत्रिम तरीकों द्वारा अपनाया जाने लगा है। इन कृत्रिम तरीकों को वर्मीकल्चर कहा जाता है। केचुए को अंग्रेजी में अर्थवर्म कहा जाता है। अर्थवर्म द्वारा कृत्रिम कल्चर (जैसे एग्रीकल्चर) की प्रक्रिया के कारण इसका नाम वर्मीकल्चर पड़ा है।

कृत्रिम वर्मी कल्चर का इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं है। प्राणी विज्ञान शास्त्र के तहत अर्थवर्म का अध्ययन बहुत पहले से किया जाता रहा है। केचुओं की प्रजातियां, उनकी गतिविधियों एवं उसके फायदों से हम बहुत समय से भली भांती परिचित रहे है। प्राणीविज्ञान के अध्ययन के दौरान केचुओं की शारीरिक संरचना को समझने के लिए उनका विच्छेदन करना स्कूल के स्तर पर ही सिखा दिया जाता है और शायद कुछ समय पहले तक केचुओं का यही एक उपयोग प्रचलित रहा है। एक दूसरा उपयोग केचुओं को मछली के कांटे में फंसाकर मछली पकड़ने में भी किया गया है। इन दोनों ही प्रकार के उपयोगों में केचुओं की सीमित मांग के कारण केचुओं के प्रजनन के प्रति वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ।

गत् 20 वर्षों में रासायनिक खाद के उपयोग से होने वाले दुष्परिणामों से चिंतित वैज्ञानिक जगत ने इस छोटे जीव को अध्ययन के लिए चुना और पाया कि केचुआ ही एक ऐसा जीव है तथा ऐसी खाद बना सकता है जो कि वास्तव में रासायनिक खाद का एक विकल्प बन सकती है। कुछ विकसित देशों में घरेलू कचरे के निष्पादन के लिए भी केचुओं के कृत्रिम पालन की विधियां विकसित की गईं।

इस प्रकार केचुए का उपयोग घरेलू कचरे से खाद बनाने में किया जाने लगा। कहा जाता है कि विश्व के कई देशों में केचुओं का उपयोग भोजन पदार्थ के रूप में भी किया जाता है। कुछ जगहों पर केचुओं को मुर्गी, चिड़िया एवं बतख के भोजन के रूप में उपयोग में लेने की बात भी सामने आई है।

हमारे देश में एवं सम्पूर्ण विश्व में केचुओं का उपयोग खाद बनाने के लिए किये जाने का प्रचलन मात्र 8–10 वर्ष पहले ही शुरू हुआ है। इसलिए इस विधि एवं विज्ञान पर आज भी कोई बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध नहीं है। कुछ समय से केचुओं की विभिन्न प्रजातियों के अध्ययन के पश्चात केचुओं को कृत्रिम तरीकों से पाला जाकर खाद बनाई जाने लगी है। केचुए द्वारा अपने भोजन के रूप में खाये गये ओर्गेनिक मैटर (कार्बनिक पदार्थ) में से अपने लिए जरूरी तत्वों का पोषण करने के पश्चात् करीब 60 से 70 प्रतिशत अपशिष्ट पदार्थ मल के रूप में निकलता है जिसे कास्टिंग कहते हैं। इसलिए इस खाद को वर्मीकास्टिंग अथवा वर्मी कम्पोस्ट भी कहा जाने लगा।

इस विषय में अभी तक कोई बहुत अधिक प्रमाणित खोज नहीं की गई है, इसलिए लोगों में भ्रम की स्थिति बनी हुई है। केचुओं की 4500 प्रजातियों में से कौनसी प्रजाति कृत्रिम वर्मीकल्चर के लिए सबसे अधिक उपयोगी होगी, इस पर बहस छिड़ी हुई है। पूरे विश्व में शायद आज भी वर्मीकल्चर की सबसे उपयुक्त विधि को लेकर सभी वैज्ञानिक एकमत नहीं हो सके हैं। सभी अपने–अपने तरीकों को ही उचित ठहरा रहे हैं।

वैज्ञानिकों के एक वर्ग द्वारा अभी तक वर्मीकल्चर के रूप में केचुओं का उपयोग खेत में ही केचुओं की संख्या बढ़ाकर उनके द्वारा उत्पन्न खाद को पौधों को उपलब्ध कराने की विधि के विकास में रहा है। इस विधि में पूरे खेत में केचुओं के लिए उचित वातावरण बनाये रखना एक जटिल समस्या है। चूंकि केचुए एक नाजुक जीव हैं और किसी भी प्रकार की विपरीत परिस्थिति जैसे नमी, तापमान, जमीन में जहरीले पदार्थ, भोजन पदार्थ की अनुपलब्धता इत्यादि के कारण मर सकते हैं। इसलिए इस विधि का बहुत सीमित उपयोग ही किया जा सका है। कई वर्षों तक वर्मीकल्चर की इस एकमात्र विधि की उपलब्धता एवं चर्चा के कारण कृषि विभाग एवं नीति निर्माताओं द्वारा राजस्थान में वर्मीकल्चर को अनुपयोगी करार दिया गया था।

एक दूसरे वर्ग के वैज्ञानिकों द्वारा वर्मीकल्चर के कृत्रिम तरीकों के विकास में वर्मीकल्चर को बहुत छोटे स्तर पर यानि घरेलू स्तर पर (5–10 किलो कचरे के लिए) की जा सकने वाली विधि के रूप में प्रचलित किया गया। विश्व के लगभग 95–98 प्रतिशत लोगों द्वारा वर्मीकल्चर के नाम पर इस विधि का उपयोग किया जा रहा है। इस विधि के तहत नमी, तापमान, केचुओं को खिलाये जाने वाले कचरे इत्यादि के संदर्भ में छोटे छोटे लकड़ी के डिब्बों एवं बहुत अधिक हुआ तो जमीन की सतह के नीचे एक फुट गहरे पक्के गड्डों में कचरे के साथ निश्चित संख्या में केचुओं को छोड़ दिया जाता है। एक लम्बे समय के अन्तराल के पश्चात खाद बनने पर केचुओं एवं खाद को अलग–अलग कर लिया जाता है। बहुत लघु स्तर पर उपयोगी इस तकनीक के प्रचलन में आने के कारण वर्मीकल्चर रासायनिक खाद का विकल्प बन सके ऐसी स्थिति नहीं बन पाई।

हमारे देश में पुणे में बहावलकर, बैंगलोर में डा. राधा काले एवं राजस्थान में मोरारका फाउण्डेशन द्वारा वर्मीकल्चर का बड़े स्तर पर उत्पादन करने (वाणिज्यिक उत्पादन) की दिशा में ठोस प्रयास किये गये। इन प्रयासों को लेकर भी कई वैज्ञानिकों द्वारा उपयोग में ली जाने वाली केचुओं की प्रजाति को लेकर प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। कई वैज्ञानिक कह रहे हैं कि हमें अपने देश की मूल प्रजातियों का ही उपयोग करना चाहिए। उनका मानना है कि विदेशी प्रजातियों के आने से हमारी मूल प्रजातियों को भोजन मिलने में कठिनाई होगी और धीरे–धीरे वे विलुप्त हो जायेंगी। लेकिन इन बातों का अभी तक कोई वैज्ञानिक आधार नहीं मिल पाया है।

लकड़ी के डिब्बों में वर्मीकल्चर
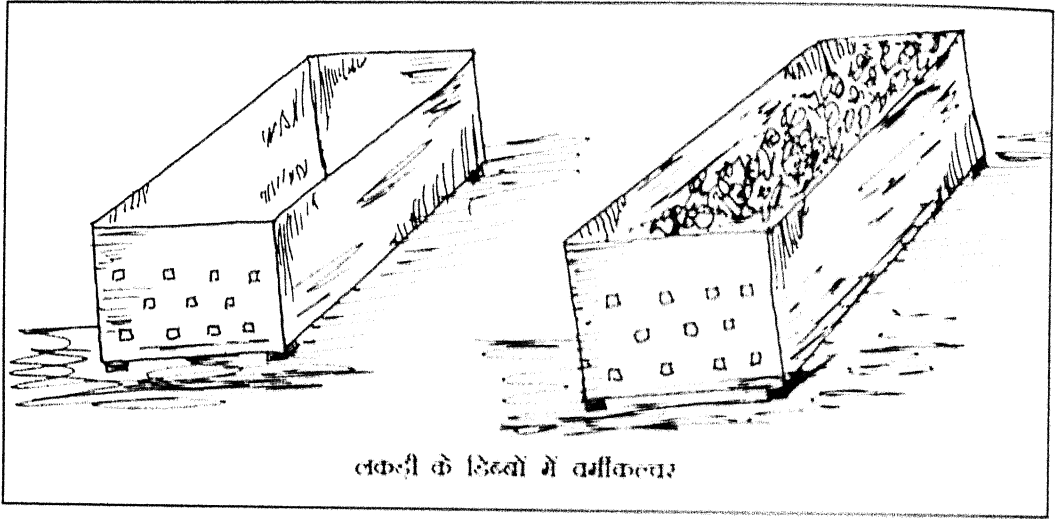
प्राणी शास्त्र के वैज्ञानिकों के गत् 200–300 वर्षों के अध्ययनों में यह देखा गया है कि कृत्रिम तरीके से पाली जा सकने वाली करीब–करीब सभी प्रजातियां समान रूप से पूरे विश्व में पाई जाती रहीं हैं। यह अलग बात है कि इनमें से कुछ प्रजातियां शायद 100–500 या हजारों साल पहले ही विपरीत परिस्थितयों के कारण कुछ स्थानों से विलुप्त हो गई हो और हमें उन्हें कहीं ओर से लाना पड़ रहा हो।

वर्मीकल्चर के नाम पर वैज्ञानिक जगत में हो रही हलचल के परिणामस्वरूप अब कुछ ही वर्षों में मोरारका फाउण्डेशन ने वर्मीकल्चर की कई सफल विधियां विकसित कर ली है। इस सफलता की बदौलत अकेले मोरारका फाउण्डेशन ने मात्र 2 वर्षों में प्रतिवर्ष एक लाख मैट्रिक टन वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की क्षमता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। और यदि आने वाले वर्षों में इसी रफ्तार से काम चलता रहा तो कुछ ही वर्षों में वर्मीकल्चर सही मायने में रासायनिक खाद का विकल्प बन जायेगी।

मोरारका फाउण्डेशन की पूरी रिसर्च प्रक्रिया में करीब 2000 किसानों का योगदान रहा है।

यूनिट 4.2 वर्मीकल्चर के लिए केंचुए

केचुए की उत्पत्ति का इतिहास बहुत पुराना है। कहा जाता है कि पेड़ पौधों के पृथ्वी पर उत्पन्न होने के साथ ही केचुए भी विकसित हो गये। केचुओं का उद्‌भव जमीन में पाये जाने वाले जीवाणुओं जितना ही पुराना है। चुंकि केचुए समुद्र में जिन्दा नहीं रह सकते इसलिए धरती के विभिन्न महाद्वीपों में ही केचुओं की उत्पति हुई एवं विभिन्न प्रजातियों द्वारा उनके एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में जाने के प्रमाण नहीं मिलते। कुल 4200 प्रजातियों में से 280 प्रजातियां जिसे माइक्रोड्रिली भी कहा जाता है (छोटी साइज़ के केचुए) तथा 3200 प्रजातियां जिसे मेगाड्रिली कहा जाता है (बड़ी साइज के केचुए) में से कई प्रजातियां सम्पूर्ण धरती पर समान रूप से पाई जाती हैं।

केचुओं को जमीन के धरातल में विभिन्न स्थानों पर रहने, उनके भोजन पदार्थों एवं उनके द्वारा निकाले गये मल के आधार पर तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

1. इपीजैइक :— इस प्रजाति के केचुए अधिकतर जमीन के ऊपर कचरे के ढ़ेर में पाये जाते हैं। इस प्रजाति के केचुए सिर्फ आर्गेनिक मैटर खाते हैं और जमीन के धरातल पर रहते हैं। ये केचुए छोटी साइज एवं शरीर से समान रंग के होते हैं। ये व्यवधान सहन कर सकते हैं और उचित वातावरण मिलने पर बहुत तेजी से संख्या में बढ़ जाते हैं। ऐसिनिया फटिडा, यूड्रीलस — यूजैनिअक, पैरीओनिक्स — एक्सकेवेट्स तथा लुम्ब्रीकस — लूबैलस इत्यादि इस श्रेणी के केचुओं की बहुतायत में पाई जाने वाली प्रजातियां है।

2. एन्डोजैइक :— इस प्रजाति के केचुए जमीन के नीचे मिट्टी में छोटी — छोटी खड़ी एवं क्षैतिज सुरंगे बनाकर रहते हैं। इस प्रजाति के केचुए ओर्गेनिक मैटर की जगह मिट्टी खाते हैं। ये केचुए सीजनल आधार पर क्रियाशील होते हैं। कृत्रिम वातावरण में अधिक समय तक नहीं रह सकते। भोजन पदार्थ को खाने के पश्चात् बहुत समय तक अपने शरीर में बनाये रखते हैं और उचित परिस्थिति आने पर जमीन से बाहर निकलकर कास्टिंग गिराते हैं। इसलिए इस प्रजाति के केचुओं का उपयोग कृत्रिम तरीकों से वर्मीकल्चर करने में नहीं किया जा सकता। लेकिन खेतों में उचित वातावरण द्वारा उनकी संख्या बढ़ा देने से ये जमीन को पोली कर देते हैं और उसमें विभिन्न प्रकार के लाभदायक सूक्ष्मजीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी करते हैं। आमतौर पर वर्षा ऋतु में दिखाई देने वाले केचुए इसी श्रेणी के होते हैं।

3. एनेसिक :– इस प्रजाति के केंचुए जमीन के नीचे लम्बी सुरंगें बनाकर रहते हैं। ये केंचुए जमीन के ऊपर आकर सड़ा हुआ ओर्गैनिक मैटर खाते हैं और जमीन के धरातल पर ही अपना मल गिराते हैं। इनके शरीर से निकलने वाला चिपचिपा पदार्थ सुरंग की दीवारों को स्थायित्व देता है। जमीन को पोली करने के साथ साथ ये नैसर्गिक रूप में खाद का निर्माण करते रहते हैं। लेकिन इस प्रजाति के केंचुए किसी भी प्रकार के नुकसान को सहन नहीं कर सकते इसलिए सिर्फ रात में ही जमीन से बाहर आते हैं। उनकी बढ़ने की दर बहुत कम होती है, जीवन चक्र लम्बा होता है और आकार में भी बड़े होने के कारण उनका उपयोग कृत्रिम वर्मीकल्चर में नहीं किया जा सका है।

केचुओं की विभिन्न प्रजातियों के व्यवहार को देखते हुए यह माना जाता है कि किसी भी स्थान पर उचित परिस्थितियाँ ना होने पर बाहर से लाई गई प्रजाति जिंदा नहीं रह सकेगी और यदि कोई प्रजाति उस क्षेत्र की मूल निवासी ना हो तो कई साल बाद ही कठिन परिश्रम द्वारा उसे उस स्थान पर स्थापित किया जा सकेगा। एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि केंचुओं की विभिन्न प्रजातियों में आपसी घालमेल संभव नहीं है अतः यदि किसी एक स्थान पर एक से अधिक प्रजातियों को रखा जाये या पाया जाये तो सभी प्रजातियां अपने अपने दायरे में रहकर अपना जीवनचक्र सफलतापूर्वक चला सकती हैं।

कृत्रिम वर्मीकल्चर के लिए अधिकतया पैरेग्रीन तथा एन्डोमिक प्रजातियां उचित पाई गई है। भारत में कुल 6 उपप्रजातियां इस श्रेणी में पाई जाती हैं।

(अ) लुम्ब्रीसाइड परिवार :– बिमास्टोस पर्वस, डेन्ड्रोबेना रूबिडा, ऐसीनिया फटिडा, ऐसिनिया होर्टेन्सिस।
(ब) यूड्रीलीडैक परिवार :– यूड्रीलस – युजैनिआक
(स) मैगास्कोलैसीडै परिवार :– अमीन्थस् डिफरीजैंस, पैरीआनिक्स एक्सकैवेटस्।
(द) ओकटीचैक्टीडै परिवार :– डाइकोजैस्टर बौलोई, डाइकोजैस्टर सेलाइनस।
(य) आकनैरोड्रीलीडैक परिवार :– ओकनैरोड्रिलस्, आकसीडैन्टेलिस
(र) मोनीलिग्साट्रिडै परिवार :– ड्राविडाविल्सी, मोनीलिगैस्टर पोरसी।

पूरी दुनिया में ऐसिनिया फटिडा का सबसे अधिक उपयोग किया जा रहा है। युड्रिलस यूजैनिआक का प्रयोग बैंगलोर कृषि विश्वविद्यालय में सफलतापूर्वक कई वर्षों से हो रहा है। पैरीओनिक्स एक्सकैवेटस भी सभी महाद्वीपों में पाया जाता है और इसका छोटा जीवन चक्र तथा बिना संसर्ग के अंडो की उत्पति करने के कारण इसे भी कृत्रिम वर्मीकल्चर के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।
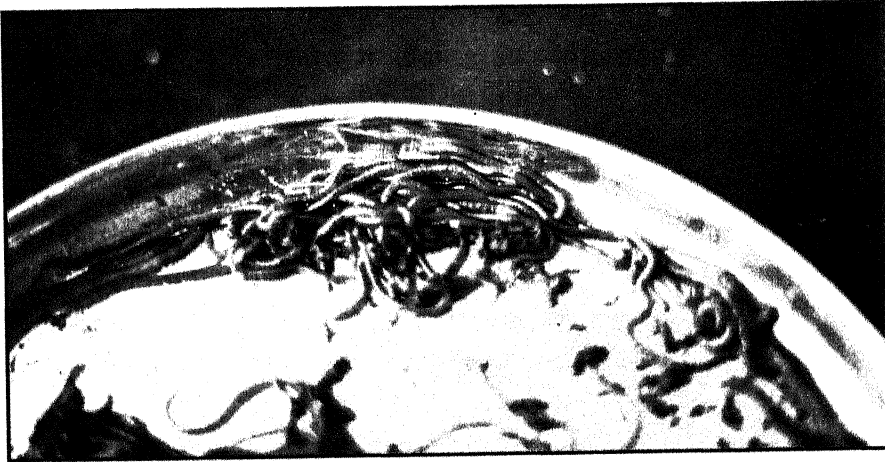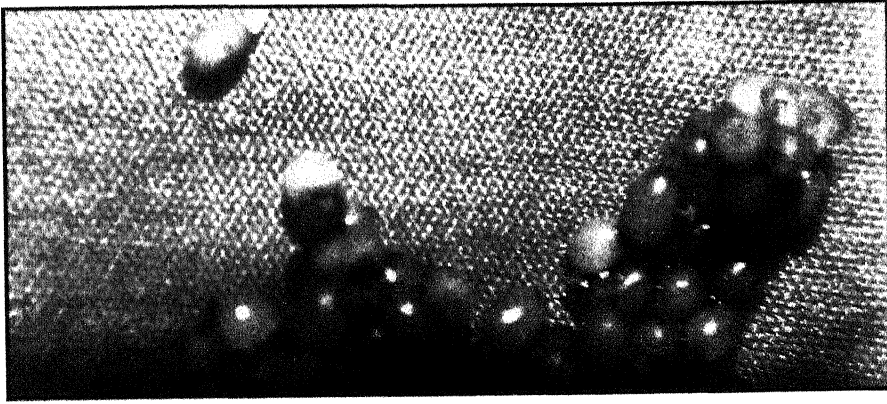
ऐसीनिया फटिडा केचुए के अण्डे, केचुओं का समूह एवं
वर्मीकल्चर बेड में केचुए

यूनिट 4.3 वर्मी कल्चर में ऐसिनिया फटिडा का उपयोग

ऐसिनिया फटिडा करीब करीब सम्पूर्ण विश्व में समान रूप से पाई जाने वाली प्रजाति है। इस प्रजाति की विशेषता यह है कि यह विभिन्न प्रकार के वातावरण एवं परिस्थितियों में बहुत आसानी से ढ़ल जाते हैं। ऐसिनिया फटिडा प्रजाति के केंचुए लाल हल्का भूरापन लिए हुए तथा बहुत हल्के बैंगनी शेड़ के होते हैं। इनका शरीर खंडित होता है। इनके शरीर का अंतिम भाग नुकीला होता है जिसके कारण ये आसानी से कचरे में बिल बना सकते हैं। शरीर के सिलेण्डर नुमा होने एवु पिस्टन की तरह आगे–पीछे हो सकने के कारण ये कचरे के बीच आसानी से चल सकते हैं तथा आगे–पीछे दोनों तरफ रेंग सकते हैं। ऐसिनिया फटिडा केंचुए के शरीर पर 9 खंड की चौड़ाई का क्लाइटेलम बना होता है। यह क्लाइटेलम केंचुए के शरीर के 24–26 वें खंड में बना होता है।

ऐसिनिया फटिडा अधिकतर अधिक वर्षा वाले इलाकों के प्लान्टेशन या जंगल वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से भोजन पदार्थ की उचित उपलब्धता एवं नमी के कारण आसानी से रह सकते हैं। भारत में केंचुओं की कुल 509 प्रजातियां ही पाई जाती है एवं इनकी सीमित संख्या के कारण इनकी गतिविधियों के बारे में पहले कोई बहुत अधिक शोध नहीं की गई। गत कुछ वर्षों से ही इस प्रजाति के कृत्रिम वर्मीकल्चर में उपयोग के कारण शोध कार्य किया जा रहा है। इस कारण इस प्रजाति के जीवन चक्र एवं व्यवहार के बारे में बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध नहीं है।

केंचुए का जीवन चक्र (अ) परिपक्व अण्डे में से केंचुए का जन्म
(ब) एक सप्ताह तक (स) दो से तीन सप्ताह तक
(द) चार सप्ताह बाद लगातार अण्डे देते हुए करीब 18–20 सप्ताह तक
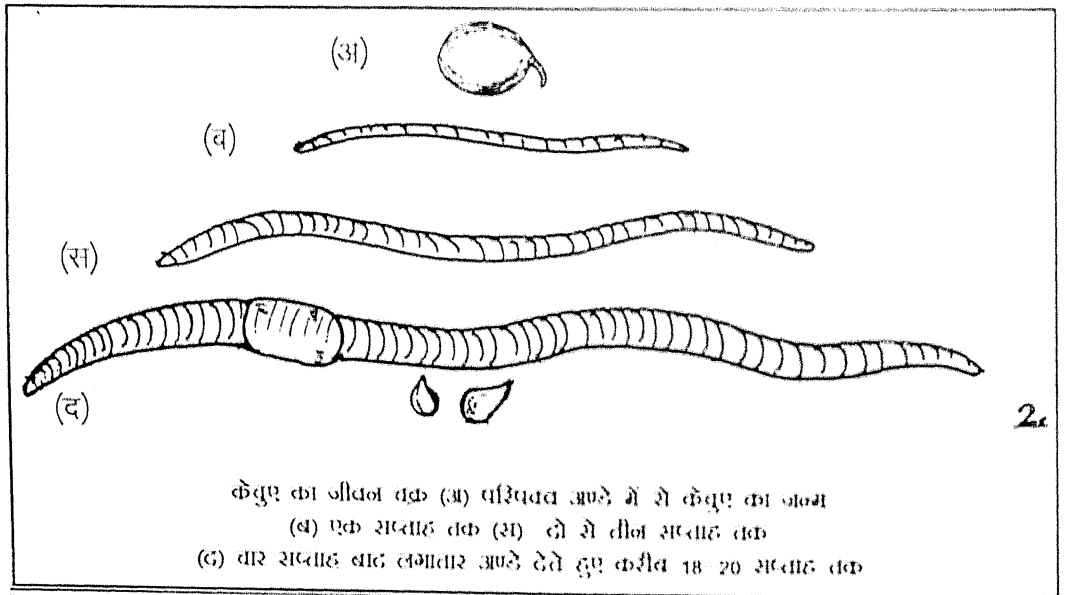
मोरारका फाउण्डेशन द्वारा गत् 5 वर्षों से किये जा रहे शोध कार्यों के परिणामस्वरूप ऐसिनिया फटिडा प्रजाति की प्राप्त जानकारी के आधार पर निम्न प्रकार कहा जा सकता है :–

- ऐसिनिया फटिडा एक जुझारू प्रवृति का केचुआ है जो कि 10 – 35 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान एवं 20 – 60 प्रतिशत आद्रता की स्थिति में आसानी से रह सकता है।

- जिन्दा केचुए का वजन 1000 से 1500 मिलीग्राम तक होता है।

- इन केचुओं का जीवन चक्र 150–180 दिन का होता है। (कुछ वैज्ञानिकों द्वारा इसका जीवन चक्र 240 दिन तक का बताया गया है)

- केचुआ जन्म के 40–45 दिनों बाद रिप्रोडक्शन करना प्रारम्भ कर देता है।

- केचुए एक बार ही संसर्ग करने के पश्चात् प्रत्येक 2–3 दिन के बीच एक अंडा देता है और यह प्रक्रिया 4–6 सप्ताह तक निरन्तर चलती रहती है।

- एक केचुए के अण्डे से 3–5 तक छोटे बच्चे निकलते हैं लेकिन उनके जिन्दा रहने का प्रतिशत बहुत कम होता है।

- केचुए के शरीर में 85 प्रतिशत भाग पानी होता है। पानी का आदान प्रदान इनके शरीर की चमडी द्वारा होता है।

- केचुए के शरीर पर लगी हुई श्लेष्मा की परत इन्हें तापमान की अधिकता से बचाती है। लेकिन धूप में अधिक समय तक रखने पर यह परत सिकुड जाती है और इससे केचुए की मृत्यु हो जाती है।

- केचुआ जन्म से लेकर लगातार बढ़ता रहता है और अपने सिरे के आखिरी हिस्से से खंड बढ़ाता रहता है।

- केचुए द्वारा निगला हुआ कार्बनिक पदार्थ इनके पाचन तंत्र से बारीक पिसी हुई अवस्था में बाहर आता है जिसमें पेड़–पौधों के लिए कई प्रकार के लाभदायक जीवाणु एवं जीवांश पदार्थ होते हैं।

* केचुआ अंधेरे में रहना पसंद करता है। अंधेरे में ही प्रजनन करता है और रोशनी होते ही तुरन्त अंधेरे की तलाश में कचरे के ढ़ेर के अंदर चला जाता है।

* एक केचुआ प्रतिदिन 1.5 ग्राम से लेकर 7 ग्राम तक भोजन ग्रहण करता है। भोजन ग्रहण करने की क्षमता उनके रहने के स्थान एवं भोजन पदार्थों की अनुकूलता पर निर्भर करती है।

* केचुए के शरीर से निकलने वाली कास्टिंग में कई प्रकार के जीवाणु होते हैं जिनमें से कुछ एन्जाइम क्रियाओं द्वारा जिबरलिन, साइटोकिनिन्स, और ऑक्सीन नामक प्लान्ट हार्मोन का उत्पादन करते हैं।

* केचुए की कास्टिंग पतले डोरे के समान होती है एवं इसमें पर्याप्त नमी होती है।

* केचुए के शरीर से निकला म्यूकस पदार्थ हानिकारक पैथोजन्स को नष्ट करने में सहायक होता है।
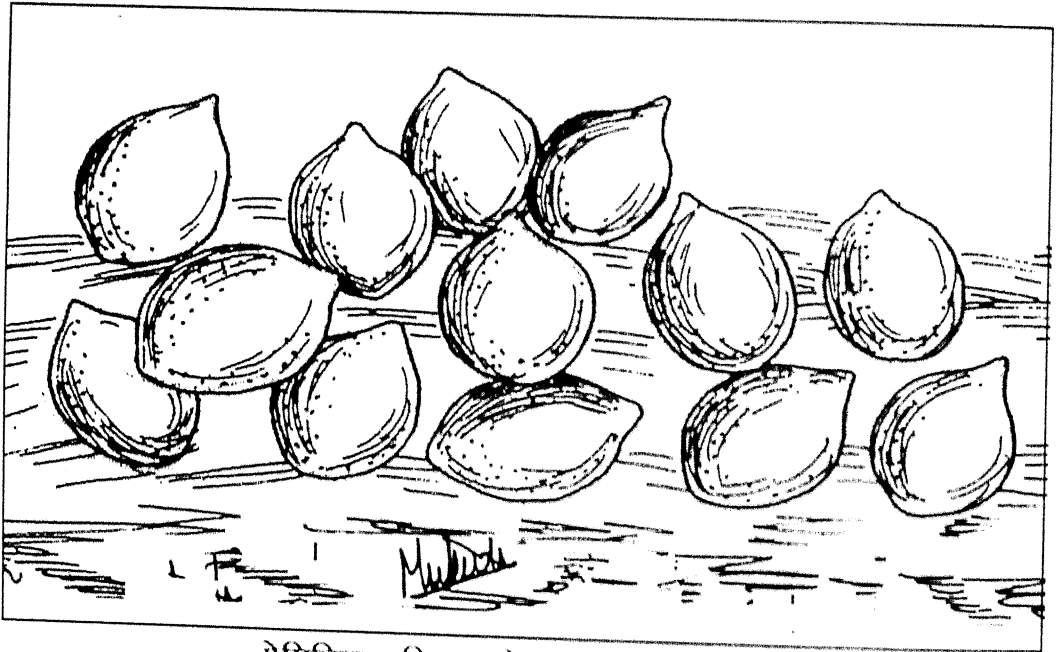
ऐसिनिया फटिडा – केचुए के अण्डे (कोकून)

युनिट 4.4 घरेलू स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन

वर्मीकल्चर तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता इसके किसी भी स्तर पर आसानी से उत्पादन इकाई स्थापित करने की है। छोटी से छोटी इकाई चाहे तो सौ ग्राम प्रति माह से लेकर 1000 क्विंटल प्रतिदिन तक वर्मीकल्चर उत्पादन इकाई लगाई जा सकती है। किसी भी उत्पादन क्षमता की इकाई लगाने पर वर्मीकल्चर की मूलभूत प्रक्रिया में कोई बदलाव नहीं लाया जाता है। लेकिन उत्पादन क्षमता के अनुसार काम में आने वाले तौर–तरीकों, औजार एवं साधन–सुविधाओं में बहुत अंतर आ जाता है।

बहुत छोटे स्तर पर 10–20 किग्रा प्रतिमाह वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा बहुत थोड़ी जगह में आसानी से किया जा सकता है। इसके लिए कच्ची या पक्की किसी भी प्रकार की जमीन पर, चाहें तो प्लास्टिक के क्रैट, लकडी के डिब्बे, सीमेन्ट के पुराने कट्टे, प्लास्टिक के टब, ऊपर से खुले हुए मिट्टी के बड़े बर्तन इत्यादि में वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सकती है। उपयुक्त पात्र के अलावा, बजरी, सूखा एवं गीला कचरा, वर्मीकास्टिंग के केचुए, पानी छिड़कने के लिए छोटा झारा तथा ढकने के लिए टाट के कपड़े, कास्टिंग मैटिरियल को उलटने–पलटने के लिए पंजे की जरूरत होती है। प्रायः देखा गया है कि इस प्रकार की सभी सामग्री घर पर ही आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं।

घरेलू स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए किसी भी पात्र में नीचे की तरफ बजरी डालकर उस पर सूखा कचरा बिछाया जाता है। इसके ऊपर केंचुओं सहित डीकम्पोज किया हुआ मैटिरियल डाला जाता है और फिर उसे गीले कचरे से ढ़क देना चाहिये। सबसे ऊपर टाट के कपड़े से ढ़ककर उचित नमी बनाये रखने के लिए समय–समय पर पानी का छिड़काव करते रहना होगा। प्रतिमाह 20 किलो तक खाद उत्पादन के लिए शुरू में करीब 500–1000 केचुओं की जरूरत होती है। कुछ ही समय में केचुए पात्र में उपलब्ध कचरे को खाकर वर्मीकास्टिंग बनाना शुरू कर देते हैं। धीरे–धीरे इसी पात्र में चाहें तो और कचरा डाला जा सकता है। एक बैच के रूप में पहले डालें गये कचरे के खाद बनने के पश्चात् दुबारा पात्र को भरा जाना चाहिए। कचरा डालते समय यह ध्यान रखा जाये कि उसमें किसी भी प्रकार के विषैले पदार्थ अथवा तत्व ना होअं।

वर्मीकल्चर की पूरी प्रक्रिया के दौरान पात्र के कचरे में 30-40 प्रतिशत नमी बनाये रखना जरूरी है। नमी के आंकलन के दो बहुत आसान तरीके हैं। पहले तरीके में कचरे को हाथ में लेकर मुट्ठी में दबाऐं, हाथ तो गीला हो जाये लेकिन पानी ना टपके यह नमी का सही माप है। दूसरे तरीके में कुछ समय के अभ्यास के पश्चात् देखने से ही नमी की कमी या अधिकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। केचुए वाले ढेर को उलट-पलट करने पर यदि केचुए के शरीर की त्वचा गीली एवं चमकदार दिखाई दे तथा उसके शरीर पर कचरे अथवा कास्टिंग के कण नहीं चिपकते हों तो यह ढ़ेर में सही नमी का द्योतक है।

वर्मीकास्टिंग बनने की प्रक्रिया में केचुओं की संख्या का आंकलन पात्र/बैड में डाले गये कचरे की मात्रा पर निर्भर करता है। 5 वर्षों के अनुभव से हमने यह जाना है कि वर्मीकल्चर के बैच प्रोसेस में 40–50 दिन का समय रखने पर केचुओं की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि होती है। चूंकि एक केचुए का औसत वजन 1 ग्राम एवं उसके द्वारा सभी प्रकार से उचित वातावरण निर्माण करने पर 3–7 ग्राम तक भोजन खाया जाता है अतः पात्र/बैड में यदि 100 किलो कचरा हो तो उसे करीब 2000 केचुए 45 दिन में खाकर वर्मीकास्टिंग बना सकेंगे।

पात्र/बैड में वर्मीकास्टिंग बनने के पश्चात् केचुए एवं खाद को अलग करने की कई विधियां विकसित की गई हैं। बहुत छोटे स्तर पर बैच प्रोसेस के तहत पूरे कचरे के खाद बनने के पश्चात् केचुओं को अलग किया जाना उचित रहता है इसके लिए किसी साफ स्थान पर या पक्के फर्श वाली जगह पर नीचे अखबार बिछाकर पूरे पात्र को उलट देना चाहिए। शुरू में आप देखेंगे कि बनी हुई खाद के साथ केचुए भी ऊपर ही दिखाई दे रहे हैं लेकिन कुछ ही मिनटों के बाद आप पायेंगे कि सारे केचुए अंदर चले गये हैं।

खाद बनाने वाले केचुओं की प्रजाति की यह विशेषता होती है कि वह रोशनी से डरता है और तुरन्त अंधेरे में चला जाता है। केचुओं की इस मूलभूत विशेषता के कारण ही केचुओं से खाद अलग करने की प्रक्रिया बहुत आसान हो जाती है। पलटी गई ढ़ेरी की 2 ईंच मोटी ऊपरी सतह हाथ से हटाने पर फिर से केचुए ऊपर दिखाई देने लगेंगे। यहां फिर हमें कुछ मिनटों के लिए रूकना होगा और जब केचुए वापस अंदर चले जायें तब हम खाद की दूसरी परत हटा सकते हैं। इस प्रकार कई परतों में धीरे-धीरे खाद अलग होती जायेगी और धीरे – धीरे नीचे की तरफ सिर्फ केचुए और कचरा रह जायेगा जिसे तुरन्त ही नई बैड बनाकर उसमें छोड देना चाहिए। इस प्रकार लगातार एक के बाद एक नये चक्र में वर्मीकास्टिंग बनाई जा सकती है। आमतौर पर बहुत छोटे स्तर पर बनाई गई वर्मी कास्टिंग को छानने की जरूरत नहीं होती है लेकिन बड़े स्तर पर उसको छान लेना अच्छा रहता है।
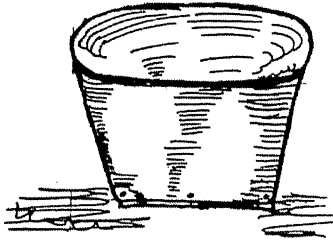
ख़ाली पात्र

पात्र का काट सैक्शन

बजरी + कचरा
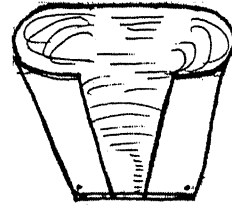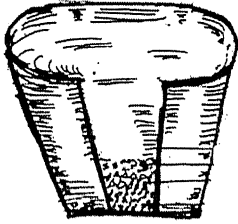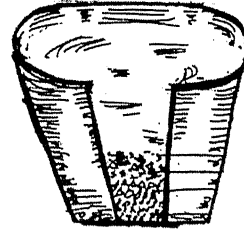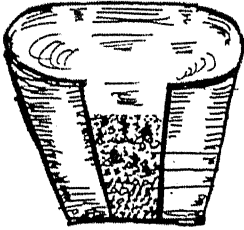
परत दर परत कचरा + केचुए

परत दर परत कचरा + केचुए
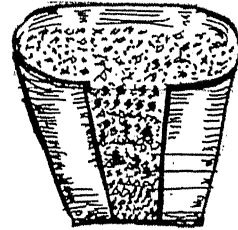
पूरा भरा हुआ पात्र
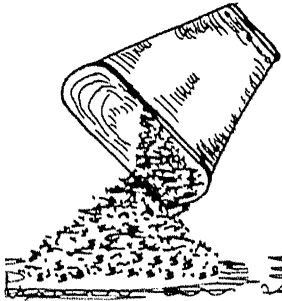
पात्र उलटते हुए

केचुए नीचे की तरफ

घरेलू स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन
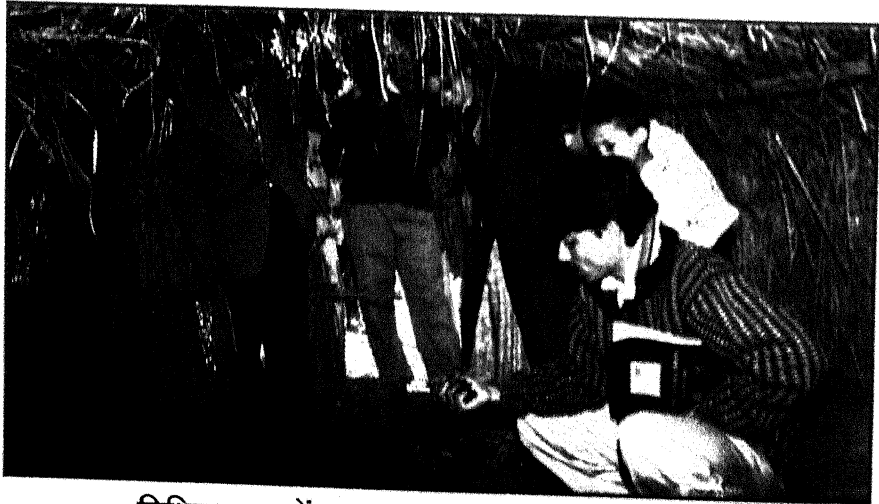
विभिन्न कृषकों द्वारा लगाई गई वर्मीकम्पोस्ट युनिट

यूनिट 4.5 वर्मीकम्पोस्ट की सरफेस–बैड विधि

पूरे विश्व में कृत्रिम तरीकों से वर्मीकल्चर बनाये जाने की शुरूआत बहुत छोटे स्तर पर की गई थी। इसलिए शुरूआत में वर्मीकल्चर का कार्य लकड़ी के डिब्बों में प्रारम्भ किया गया। प्रारम्भिक सफलता मिलने के पश्चात् अधिकतर स्थानों पर जब थोड़ी बड़ी इकाई लगाई गई तो लकड़ी के डब्बे की आकृति को ही उपयोग में लाया गया। इसलिए यह देखा गया है कि 99 प्रतिशत स्थानों पर जमीन के नीचे 6 ईंच से लेकर 1 मीटर तक गहरी एवं आवश्यकतानुसार लम्बाई – चौड़ाई की पिट खोदकर वर्मीकल्चर की जाती रही है।

शुरू–शुरू में मोरारका फाउण्डेशन में भी इसी तरीके को अपनाया गया। उस समय जो भी सफलता मिली उसने बहुत उत्साहित किया और इस तकनीक का व्यापक प्रचार – प्रसार शुरू कर दिया गया। लेकिन जब हमने देखा कि किसानों के स्तर पर प्रत्येक 10 में से 6–7 स्थानों पर केचुए मर रहे हैं तो यह अहसास हुआ कि पिट विधि की व्यवस्था में कई कमियां हैं। सबसे बड़ी कमी पिट में अधिक पानी भर जाने की पाई गई। दूसरा पिट में पड़ा कच्चा माल जल्दी ठोस हो जाता था। तीसरा केचुए द्वारा खाद बनाने की दर तथा केचुओं की वृद्धि दर भी बहुत धीमी रही। कई किसानों के यहां जब बहुत दिनों तक कोई परिणाम देखने में नहीं आया तो उनका उत्साह टूट गया और उन्होंने वर्मीकल्चर के प्रति ध्यान देना बंद कर दिया। कई किसानों के यहाँ जब केचुए मर गये तो उन्होंने कहा कि केचुए मरे नहीं हैं बल्कि जमीन में नीचे चले गये हैं।

इसी प्रकार की कई अन्य परेशानियों से जूझते हुए कई किसानों द्वारा प्रयोग के तौर पर जमीन में पिट बनाये जाने के स्थान पर जमीन के ऊपर ढ़ेर लगाकर खाद बनाना शुरू किया गया। पतली, लम्बी, मोटी, ऊँची कई प्रकार के माप एवं आकार की सैंकड़ों ढ़ेरियां बनाने के पश्चात् एवं उनसे मिलने वाले अनुभवों के आधार पर सरफेस बैड विधि का विकास किया गया।

जमीन के ऊपर अर्द्धगोलाकार आकृति की बेड़ बनाने से केचुओं की क्रियाशीलता कई गुणा बढ़ गई। इस प्रकार की बेड में उचित नमी, तापमान एवं हवा का प्रवाह बनाये रखना भी आसान हुआ। शुरूआत में पूरी बेड की खाद बनने के बाद ही उसे खाली किया करते थे, लेकिन बाद में पाया कि जैसे–जैसे खाद बनती जाये उसे उतारते रहने से खाद बनने की प्रक्रिया की गति बढ़ जाती है। इस प्रकार बनी हुई बैड को सूखे कचरे अथवा वानस्पतिक अवशेषों से ढकने पर केचुओं को लगातार 24 घंटे गतिशील बनाये रखना भी संभव हो गया।

बनी हुई वर्मीकास्टिंग में भी 20–30 प्रतिशत नमी बनाये रखना चाहिए। इसके लिए भी ऊपर बताये अनुसार नमी का आंकलन किया जा सकता है। वर्मीकल्चर की सबसे बड़ी विशेषता उसमें उपलब्ध लाभदायक सूक्ष्मजीवाणुओं की उपस्थिति है। यदि वर्मीकल्चर को बनने के पश्चात् पूर्णतया सुखा लिया जाये तो उसमें उपलब्ध पोषक तत्वों की उपलब्धता में आधे से अधिक कमी आ जाती है।

ठीक इसके विपरीत यदि वर्मीकास्टिंग में 30–40 प्रतिशत नमी लगातार बनाये रखी जाये तो उसमें उपलब्ध सूक्ष्मजीवाणु लगातार क्रियाशील बने रहते हैं और धीरे–धीरे वर्मीकास्टिंग में उपलब्ध सूक्ष्मजीवाणुओं एवं पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती रहेगी। करीब 25 डिग्री तापमान तथा 30 प्रतिशत नमी पर जब वर्मीकास्टिंग को 3 वर्ष तक रखा गया तो हमने पाया कि कास्टिंग में सभी पोषक तत्वों की मात्रा में दुगने से अधिक की वृद्धि हुई। सभी वैज्ञानिक इस तथ्य से भली भांति परिचित हैं कि कई प्रकार के सूक्ष्मजीवाणु वातावरण में उपलब्ध ऊर्जा एवं पोषक तत्वों को अपने भोजन के रूप में खाकर कई प्रकार के (पेड़–पौधों के लिए आवश्यक) पोषक तत्वों का निर्माण करते हैं अतः यह जरूरी है कि वर्मीकास्टिंग का बनने के बाद भी सुरक्षित नमी एवं तापमान पर भंडारण किया जाये। यह सभी कार्य सरफेस बेड विधि में आसानी से किया जाना संभव हुए।

कुल मिलाकर इस विधि के विकास के साथ ही वर्मीकम्पोस्ट के वाणिज्यिक उत्पादन की नई संभावनाएं खुलने लगी। कच्चा माल, केचुओं की संख्या एवं बेड की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के उचित अनुपात से बैच प्रोसेस में 10–15 दिन तथा लगातार प्रक्रिया में चाहे जितना उत्पादन लिया जा सकता है। मोरारका फाउण्डेशन के दुर्गापुरा स्थित रिसर्च सेन्टर में इस पद्धति पर आधारित 3 फुट चौडी एवं 10 फुट लम्बी 40 बेड लगाने से ही प्रतिदिन 500 किग्रा वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन किया जाने लगा।

आज इस नाप के अनुपात की लगभग 25000 बेड, 2000 से अधिक इकाईयों में लगी हुई हैं और कई वर्षों से संतोषजनक उत्पादन कर रही है। बेड बनाने की विधि एवं उसमें की जाने वाली प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण आगे के अध्याय में दिया गया है।

वर्मीकम्पोस्ट के बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए सरफेस बेड विधि के विकास के बाद भी कुछ लोग पिट विधि को अपना रहे हैं। पिट विधि में शुरूआती लागत अधिक आती है और समय अधिक लगने के कारण लेबर की लागत भी अधिक हो जाती है। इस पुस्तक को लिखने में लेखक की एक मंशा यह भी रही है कि अधिक से अधिक लोगों को सरफेस बेड विधि के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध कराई जाए।

अभ्यास 4

1. क्या आपने अभी तक किसी भी प्रकार के केचुए देखें है? हाँ / नहीं, यदि हाँ तो क्या आप उनका वर्णन लिख सकते हैं? ....

....

....

....

2. आपके अनुसार केचुओं को किसान का मित्र क्यों कहा जाता है? ....

....

....

....

3. केचुओं को पालने के लिए जितनी भी आवश्यकताऐं हैं, उनमें से कौन–कौन सी सुविधाऐं आपके पास उपलब्ध हैं? सूची बनाऐं एवं उनका विवरण लिखें। ....

....

....

....

....

....

4. आपके अनुसार केचुओं द्वारा बनाई गई खाद क्यों बेहतर होगी? ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विभिन्न स्थानों पर कृषकों द्वारा लगाई गई वर्मीकम्पोस्ट युनिट

मोड्यूल – 5

वर्मी कल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल – ठोस कचरा प्रबंध

युनिट 5.1 ठोस कचरा प्रबंध

युनिट 5.2 ओर्गेनिक मैटिरियल

युनिट 5.3 वर्मी कल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल प्रबंध
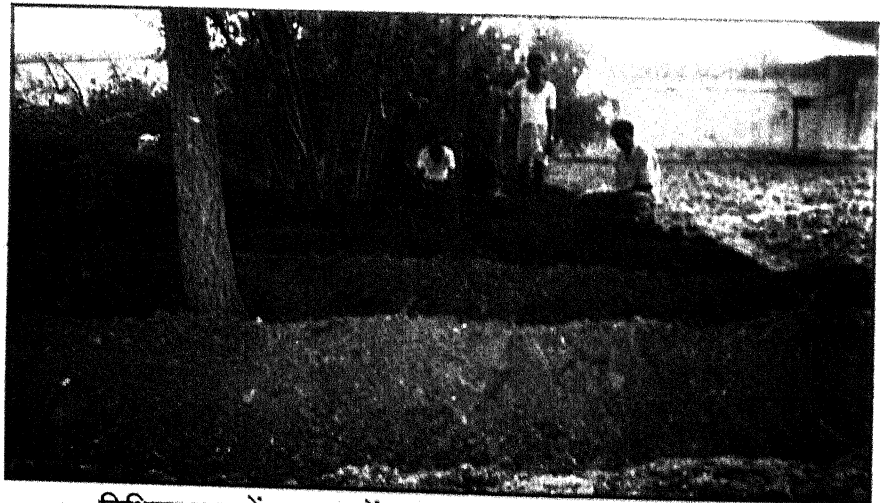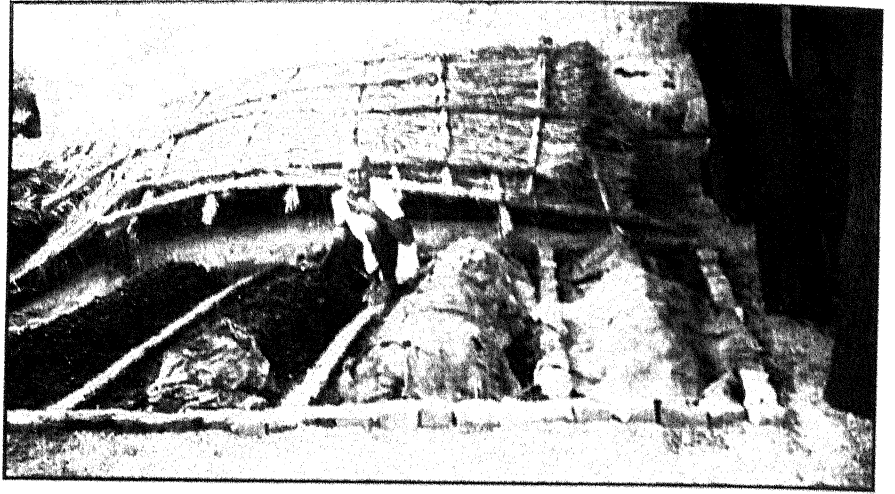
विभिन्न स्थानों पर कृषकों द्वारा लगाई गई वर्मीकम्पोस्ट युनिट

युनिट 5.1 ठोस कचरा प्रबंध

वर्मीकल्चर को बड़े पैमाने पर कामयाब होने के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल का उचित प्रबंध एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। ओर्गेनिक मैटिरियल अथवा जैविक पदार्थों को बायोमास के नाम से भी जाना जाता है। पूरे देश में प्रतिवर्ष इतनी बड़ी मात्रा में बायोमास का उत्पादन होता है कि उसके निष्पादन के लिए अनेक तरीकों को अपनाया जा रहा है। बायोमास के निष्पादन के अनेक तरीकों के आधार पर उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

1. <u>भौतिक प्रक्रियाएं</u> :– इसके तहत सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया कचरे को सुखा कर उसकी मात्रा एवं वजन कम करना है। कई प्रकार की फसलों, बाग–बगीचों, घरेलू पेड़ पौधों एवं शहरों में उत्पन्न कचरा, पशुओं का मल इत्यादि जिस दिन कचरे के रूप में प्राप्त होता है उस दिन से लेकर उसके लगातार सूखने की प्रक्रिया चलती रहती है।

एक मोटे अनुमान के अनुसार जयपुर शहर में 500 मैट्रिक टन प्रतिदिन उत्पन्न होने वाला जैव पदार्थ 3 दिन पश्चात् ही मात्र 200 टन रह जाता है। कई बार सूखने की प्रक्रिया को त्वरित गति से करने के लिए कचरे के बड़े टुकड़ों को काटकर छोटे टुकडों में तब्दील कर दिया जाता है जिससे इनके सूखने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। गत् कुछ वर्षो में सूखे जैविक पदार्थ के साथ कुछ ज्वलनशील पदार्थों को मिलाकर उसकी ईंधन रूपी ईंटे बनाई जाने लगी हैं, इनमें ब्रिकेटिंग एवं पैलेटाइजेशन प्रक्रियाऐं प्रचलन में हैं।

2. <u>रासायनिक प्रक्रियाएं</u> :– बायोमास के निष्पादन की रासायनिक प्रक्रियाओं को दो प्रमुख भागों में बांटा गया है। इनमें से एक उच्चतापीय रासायनिक प्रक्रिया के तहत कम्बश्चन, गैसीफिकेशन, पायरोलिसिस, तथा डायरेक्ट लिक्विफेक्शन आदि हैं। इन सभी प्रक्रियाओं में कचरे का रूप परिवर्तन कर ऊर्जा प्राप्त की जाती है। रासायनिक प्रक्रियाओं के तहत दूसरी प्रमुख श्रेणी जैव–रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा निष्पादन की है। इसके तहत बायोमास का सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा उपचार किया जाता है। ये सूक्ष्मजीवाणु एन्जाइम क्रियाओं द्वारा कचरे को खाकर अन्य उपयोगी पदार्थों में बदल देते हैं। एनारोबिक डायजेशन, फर्मेन्टेशन इत्यादि कुछ ऐसी ही प्रक्रियाएं हैं।

3. <u>सम्मिलित प्रक्रियाऐं</u> :– कचरे/बायोमास की विशेषता एवं उपलब्धता के आधार पर कई जगह बायोमास निष्पादन के लिए एक से अधिक प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है। बड़े शहरों का कचरा, उद्योगों द्वारा उत्पन्न किया जाने वाला बायोमास/कचरा इसी प्रकार निष्पादित किया जा रहा है।

कुछ समय पहले तक कचरे के निष्पादन के तरीकों में उसे जलाया भी जाता था लेकिन जलने से कार्बनडाइआक्साइड के रूप में हवा के प्रदुषण को देखते हुए इस तरीके को रोकने के लिए व्यापक स्तर पर प्रचार प्रसार किया जा रहा है।

कई शहरों एवं छोटे कस्बों में उत्पन्न बायोमास के निष्पादन के लिए कचरे को डम्पिंग ग्राउंड में डालने की प्रक्रिया प्रचलित रही है। कई शहरों में डम्पिंग ग्राउंड के लिए खड्डों का इस्तेमाल भी किया जाता है। बड़े – बड़े गड्डों को कचरे से भरकर उसकी ऊपरी सतह पर मिट्टी डालकर उस स्थान को काम में ले लिया जाता है। दिल्ली शहर की कई झुग्गी झोपड़ियां इसी प्रकार के डम्पिंग ग्राउण्डस् पर बसी हुई हैं। ठोस कचरा प्रबंध की विभिन्न प्रचलित प्रणालियां एवं प्रक्रियाओं को देखते हुए आज भी भारत में ठोस कचरा प्रबंध के वैज्ञानिक उपायों की कमी है। कचरे के वैज्ञानिक प्रबंधन में सबसे बड़ी समस्या विभिन्न प्रकार के कचरों के आपस में मिल जाने की है।

गांवों में भी यह देखा गया है कि फसलों के अवशेष, पशुओं का मल एवं घरेलू कचरे को एक साथ मिला दिया जाता है और अधिकतर स्थानों पर गांवों में इस प्रकार के कचरे के ढ़ेर दिखाई देते हैं। जहां कचरे के ढ़ेर हैं उन ढेरों से कई प्रकार की बीमारियां फैलती हैं और फसल की बुवाई के समय उन ढ़ेरों को देशी खाद के नाम पर खेतों में डाल दिया जाता है। हमारा मानना है कि इस प्रकार दी हुई खाद सिर्फ मन को संतोष देने के अलावा और कुछ लाभ नहीं पहुंचाती, उल्टे ये जमीन में कई प्रकार के हानिकारक जीवाणुओं की वृद्धि ही करती है। इसी का परिणाम है कि करीब – करीब सभी किसान आजकल यह कहने लगे हैं कि फसल की बुवाई के पहले उन्हें जमीन के हानिकारक कीटाणुओं का नाश करने के लिए हर साल खर्चे में बढ़ोतरी करनी पड रही है।

एक मोटे अनुमान के अनुसार आने वाले समय में फसलों के हानिकारक कीटाणुओं को मारने के लिए काम में आने वाली दवा की खपत की तुलना में जमीन में उत्पन्न हानिकारक कीटाणुओं को मारने वाली दवा की खपत 4–5 गुणा हो जायेगी। इन परिस्थितियों में हर घर, खेत में उत्पन्न होने वाले कुल कचरे में से यदि एक चौथाई कचरे को भी वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम में ले लिया जाये तो हमारे देश में जमीन के हानिकारक कीटाणुओं और रसायनिक उर्वरकों की समस्या बहुत हद तक कम हो सकती है। गांवों के ठोस कचरे के वैज्ञानिक प्रबंध के लिए वर्मीकल्चर को सर्वश्रेष्ठ तकनीकी उपाय के रूप में मान्यता दी जा रही है। राजस्थान के अलवर जिले के 1000 से अधिक गांव में यूनीसेफ के सहयोग से एक बहुत बड़ा कार्यक्रम वर्ष 2000 से प्रारम्भ किया जा चुका है।

ठीक इसी प्रकार ठोस शहरी कचरे के प्रबंध में यदि कचरे को स्त्रोत पर ही अलग कर लिया जाये तो शहर में उत्पन्न कुल कचरे में से करीब 50 प्रतिशत कचरे का उपयोग वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए किया जा सकता है। हर शहर में फल, सब्जी, अनाज मंडी का कचरा, बड़े होटल, रेस्टारेंट, होस्टल, ढ़ाबे, केन्टीन का कचरा, घरेलू एवं सार्वजनिक बाग–बगीचों का कचरा इत्यादि वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे उपयुक्त पाये गये हैं।

शहरी कचरे के प्रबंध की विफलता को देखते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक आदेश में कहा है कि वैज्ञानिक प्रबंध के तहत अनिवार्य रूप से ओर्गेनिक कचरे को कम्पोस्ट बनाने के काम में लेना होगा। इस निर्णय के अनुसरण में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अब जैव पदार्थों वाले ओर्गेनिक मैटिरियल को कम्पोस्ट बनाने के लिए बड़े पैमाने पर कानूनी रियायतें, सब्सिडी, टैक्स में छूट और यहां तक कि 5 लाख रूपये तक के शुद्ध मुनाफे में आयकर की छूट का भी प्रावधान किया गया है। जयपुर शहर के लिए किये गये एक अध्ययन के मुताबिक हर रोज पैदा होने वाले कुल 1000 मैट्रिक टन कचरे में से करीब 400 टन कचरे को अब कम्पोस्ट बनाने के काम में लिया जाना अनिवार्य है। मोरारका फाउण्डेशन एवं इसकी कई सहयोगी इकाईयों द्वारा आज भी करीब 50–60 टन शहरी कचरा प्रतिदिन वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम में लिया जा रहा है। वर्मीकल्चर तकनीक के वाणिज्यिक उत्पादन को बढ़ाये जाने में ठोस कचरा प्रबंध की नई सोच एवं नीतियां बहुत सहायक सिद्ध हो रही है।
(देखें तालिका 8)

Abstract of Honorable Supreme Court of India on
decision of Writ Petition No. 888/1996.

9.1 Recommendations For Mandatory Action By Citizens/ULBs

2. Storage of waste at source.
3. Segregation of recyclable waste/non biodegradable waste at source.
9. Conversion of organic waste into bioorganic fertilizer.
11. Collection, transportation and disposal of Hotel and Restaurant waste.

9.2 Discretionary Recommendations

8. ULBs should earmark a minimum fund on per capita basis for SWM services e.g. 100 per capita per year.

9.3 Suggestions for Consideration of Central and State Geverments/UTs

1. To set up a national technology mission for SWM.

2. SWM to be on the National agenda.
3. Central and state governments to share funds with the local bodies and make them financially sound for implement of the 74th amendment to the constitution
7. SWM infrastructure to be a pre condition for all new urban development plans and proposals.
SWM infrastructure like waste collection and temporary storage sites for transfer processing and disposal of urban solid wastes shall be made a pre-condition in urban planning and management plans by improvement trusts and urban department authorities etc. and shall be strictly enforced.

10. Composting to be deemed an agricultural activity.
So as not to be subject to the payment of non-agricultural conversion changes and requirements for converting agricultural to NA land for compost plants at land fill sites.

11. Fiscal incentives and funds for compost plants.

a) Single window fast track clearance for setting up of compost plants and issue of various NOCs, permissions, finance required etc for setting up plants.

b) Social Infrastructure States for city waste conversion processes for priority finance and concessional rates of interest as well as for taxation and excise purpose.

c) Compost/organic manure plants to be included in the definition of infrastructure facility and deemed a sanitation system. US 10 clause 23G (c) (ii) of the. Income Tax act, similar to water supply and savage system.

d) Excise exemption for plant and machinery intended for manufacture and testing of organic manure from urban solid waste and agricultural waste.

e) Organic manure and vermi compost to be exempt from sales tax.

f) The agricultural and fertilizer policy of the central and State Govts/UTs the promote the use of city compost.

g) National and state Agriculture and fertilizer policy should focus on revitalization of Indian soils by promoting the use of city composts within a reasonable distance of its production at a reasonable price acceptable to cultivators.

तालिका - 8

JAIPUR URBAN SOLID WASTE MANAGEMENT-VERMI CULTURE/COMPOSTING

ESTIMATES OF SOLID WASTE AVAILABILITY SUITABLE FOR VERMI COMPOSTING

S. No	Location and Area- Ward No. and Details	Waste Availability Per Day in Metric Ton					
		Dairy Waste	Fruits & Vegetable	Bulk Sources	Horticulture	House-hold	Total
1	22, 23 – Sanganer	3	2	1	1	1	8
2	13 – Mansarovar	10	3	1	2	2	18
3	14, 21 –Durgapura, Jai Ambey , Mahaveer Nagar, Gopalpura	10	1	1	2	1	15
4	25, 26 – Malviya Nagar, Jhalana	10	1	1	2	1	15
5	28 – Jagatpura	2	1	1	1	1	6
6	15, 19, 20 – Barkat Nagar, Tonk Phatak, Vasundhara, Mahesh Nagar,Kartarpura	10	2	1	2	2	17
7	11 –Shyam Nagar, Vivek Vihar, Devi Nagar, Govindpuri, Sodala some Part	10	2	2	2	2	18
8	17 – Bais Godown, Civil lines, Ram Nagar	2	2	2	2	2	10
9	6, 35, 16 – Hathroi, Ashok Nagar, S-scheme, Lal Kothi	5	40	5	5	5	60
10	18, 27 – Bapu Nagar, Bajaj Nagar, Part of Gandhi Nagar	10	5	5	5	5	30
11	30, 32 –Tilak Nagar, Moti Doongari	10	5	5	5	2	27
12	31, 32 – Rajapark, Sindhi Colony	15	10	10	5	5	45
13	33, 34 – Adarsh Jagar,, Janta Colony	10	5	5	5	5	30
14	4, 5 – Hasanpura, Gopalbari, Shanti Nagar, Laxmi Nagar	5	10	5	5	5	30
15	3 – Vaishali Nagar, Vidyut Nagar, Sanjay Nagar, Hanuman Nagar	10	10	5	5	5	35
16	9 – Khatipura, Jhotwara	10	10	5	5	5	35
7	7, 8 – Bani Park, Subhash Nagar, Sindhi Camp	2	3	5	3	3	16
8	1, 10, 68 – Vidyadhar Nagar, Ambabari	10	5	5	5	5	30
9	36, 37 – M.I.Road, Jalupura	1	2	5	1	1	10

S. No	Location and Area-Ward No. and Details	Waste Availability Per Day in Metric Ton					
		Dairy Waste	Fruits & Vegetable	Bulk Sources	Horticulture	House-hold	Total
20	62 – Chandpole gate.	2	5	5	1	2	15
21	63, 64 – Shastri Nagar	10	5	5	3	3	26
22	66, 67 – Ram Nagar, Tulsi Nagar, Sanjay Colony	10	2	3	2	3	20
23	60, 61 –Purani Basti	5	5	5	1	2	18
24	39, 40, 41 – Chandpole	5	5	10	1	2	23
25	42, 43 - Kishanpole, Chaura Rasta	2	2	10	1	5	20
26	44, 45 – Johari Bazar	2	5	10	1	5	23
27	46, 47 – Ghatgate, Ramganj	2	3	10	1	5	21
28	54, 58 – Brahmpuri, Kanwar Nagar	5	3	10	1	3	22
29	51, 52 part- Govind Nagar, Jalmahal, Gangapole	3	2	5	1	3	14
30	55, 52 part – Jaleb Chouk	1	5	10	1	3	20
31	56, 57 – Hawa Mahal	1	3	5	1	3	13
32	49, 50 – Transport Nagar	2	2	3	1	2	10
33	Amer	5	2	3	1	2	13
	TOTAL	200	168	164	80	101	713

Notes :

- The above estimates are for quantities generated on the day it is disposed.
- About 80 percent of Dairy waste is lifted, transported and used by farmers surrounding Jaipur.
- Many bulk sources are presently disposing their waste as slurry in the drains.
- Horticulture waste normally gets decomposed and never lifted.

Over 20 MT per day waste processing capacity from Lal Kothi F & V market has already been created by us.

युनिट 5.2 ओर्गेनिक मैटिरियल

वर्मीकल्चर के काम में लिए जाने वाले इपिजैइक प्रजाति के केचुएं सिर्फ ओर्गेनिक मैटिरियल ही भोजन के रूप में खाते हैं। जैविक पदार्थ प्रमुख रूप से खेतों में फसल अवशेष, पशुओं के गोबर एवं घरेलू कचरे के रूप में उत्पन्न होते हैं। वर्मीकल्चर अथवा साधारण कम्पोस्टिंग के लिए भी ओर्गेनिक मैटिरियल के सही गुणों की जानकारी होना बहुत जरूरी है। ओर्गेनिक मैटिरियल के रसायनिक विश्लेषण द्वारा उसके कार्बन–नाइट्रोजन के अनुपात को जाना जाता है। इसके अतिरिक्त जैविक पदार्थों में पहले से मौजूद फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश आदि के अलावा अन्य खनिज तत्व जैसे कैल्शियम, मैगनिशियम, जिंक, आयरन इत्यादि तथा सूक्ष्म मात्रा में पाये जाने वाले रासायनिक तत्व जैसे कोबाल्ट, बोरान इत्यादि के होने से ही कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया द्वारा इन सभी पोषक तत्वों को घुलनशील अवस्था में लाकर पौधों को उपलब्ध कराया जा सकता है।

साधारणतया होने वाली कम्पोस्टिंग में बहुत कम प्रकार के सूक्ष्म जीवाणू पाये जाते हैं। इस कारण ये सूक्ष्मजीवाणु बहुत कम मात्रा में एन्जाइम क्रियाओं द्वारा खनिज अवस्था में उपस्थित पोषक तत्वों को घुनलशील अवस्था में ला पाते हैं। वर्मीकल्चर उत्पादन की क्रिया में केचुओं के शरीर में बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवाणु होते हैं। इन्ही सूक्ष्मजीवाणुओं के द्वारा ना सिर्फ कचरे के खनीज लवण के रूप में उपस्थित तत्वों को घुलनशील अवस्था में लाया जाता है बल्कि ये वातावरण में उपस्थित पोषक तत्वों को सोखकर पौधों को उपलब्ध कराने की स्थिति में ले आते हैं।

घने जंगलो, फलों के बाग एवं सिंचित क्षेत्रों में वर्ष पर्यन्त वनस्पति की उपस्थिति से जमीन में कार्बनिक पदार्थ की अधिकता हो जाती है। लेकिन शुष्क प्रदेशों में जहां सिर्फ एक या दो ही फसलें ली जाती हैं वहां फसल अवशेष के रूप में बहुत कम कार्बनिक पदार्थ रह जाता है। ऐसे स्थानों पर नमी की कमी के कारण भी बचे हुए जैविक पदार्थ को खाकर हानिकारक जीवाणुओं की ही वृद्धि होती है। रासायनिक खादों के लगातार उपयोग से भी लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में कमी आई है और अधिकतर फसल अवशेषों का उपयोग हानिकारक जीवाणुओं द्वारा ही किया जा रहा है।

तालिका-9

भारत में विभिन्न कृषि अवशेषों की उपलब्धता

कृषि अवशेष	अनुमानित मात्रा (मिलियन टन/प्रतिवर्ष)
फसल अवशेष	196.8
अनाज के अवशेष	14.4
दालों के अवशेष	5.8
तिलहन के अवशेष	34.4
प्लान्टिंग के अवशेष	17.4
रेशे वाली फसलों के अवशेष	3.3
फल एवं सब्जियों के अवशेष	1.2
चावल की भूसी	18.0
जूटमिल के अवशेष	0.5
कपास का कचरा	0.3
गन्ने का बगास	36.0
गन्ने का मोलेसस	2.1
आटामिल का पाउडर	2.0

स्त्रोत : पादप कचरा प्रबंधन

कई बार कम्पोस्ट बनाने की बात करने पर लोगों द्वारा कहा जाता है कि, कचरा कहां उपलब्ध है। ऊपर दी गई तालिका के अनुसार यदि इसके मात्र 10 प्रतिशत भाग का भी उचित उपयोग कर लिया जाए तो भी बहुत बड़ी मात्रा में कम्पोस्ट बनाई जा सकती है।

पशुओं का मल–मूत्र जो कि शुद्ध ओर्गेनिक मैटर के रूप में होता है लेकिन उसमें भी पोषक तत्वों की मात्रा में बहुत बड़ा अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के कम्पोस्टिंग मैटिरियल का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि सबसे कम नाइट्रोजन का प्रतिशत चावल की भूसी, भैंस के गोबर, सूखे खेत के कचरे में पाया गया। सबसे अधिक नाइट्रोजन की मात्रा शहर के गंदे नालों के ठोस कचरे में तथा मूँगफली के छिलके इत्यादि में पाई गई।

ओर्गेनिक कम्पोस्ट के लिए तेल निकालने के बाद बची हुई खली के विश्लेषण करने पर पाया गया कि करीब करीब सभी प्रकार की खली में नाइट्रोजन का प्रतिशत बहुत अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों मे सबसे अधिक मात्रा में जैविक पदार्थ पशुओं के मल एवं फसलों के अवशेष के रूप में प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार की फसलों से अलग – अलग मात्रा में प्रति हैक्टेयर फसल अवशेषों का उत्पादन होता है। उदाहरण के लिए एक हेक्टेयर गेहूं के खेत से 1800–2500 कि. ग्रा. भूसा प्राप्त होता है। सबसे अधिक फसल अवशेष गन्ने के खेतों से प्राप्त होते हैं जिसमें करीब 30 टन प्रति हेक्टेयर तक कचरा उपलब्ध हो जाता है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए सभी प्रकार के जैविक पदार्थ उपयुक्त पाये गये हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर जैविक पदार्थों को केचुओं को खाने के लिए डालने से पहले डीकम्पोज करना जरूरी है। पशुओं के मल में नमी की अधिकता होती है जिस कारण इसे सीधे ही केचुओं को खिलाया जा सकता है लेकिन पशुओं के मल में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवाणु अमोनिया, मीथेन एवं हाइड्रोजन सल्फाइड गैस का निर्माण करते हैं जिसके कारण केचुएं इस वातावरण में प्रवेश ही नहीं करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि केचुओं को खिलाने से पहले गोबर को ठंडा कर लिया जाये। फसल अवशेष में किसी प्रकार की गैस नहीं बनती लेकिन उनका बाहरी आवरण इतना कठोर होता है कि उन्हें सीधे ही केचुओं को नहीं खिलाया जा सकता। अतः यह जरूरी है कि फसल अवशेषों को पहले कुछ समय तक पानी से भिगो दिया जाये और नरम होने पर केचुओं को खाने के लिए डाला जाये।

बागवानी वाली फसलों को अधिकतर हरी अवस्था में ही कचरे के रूप में हटा लिया जाता है। घरों से निकलने वाले रसोई का कचरा भी गीली अवस्था में ही होता है इसलिए सभी प्रकार के कचरों को केचुओं को खिलाने से पहले कुछ दिनों के लिए डीकम्पोज करने के पश्चात् ही देना चाहिए।

तालिका-10

विभिन्न प्रकार के कृषि अवशेषों में उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा

क्रम सं.	कृशि अवशेष	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1	सरसों की तूड़ी	0.45	0.53	1.48
2	अरण्डी	1.01	0.35	1.86
3	कपास	0.44	0.10	0.66
4	इसबगोल	0.66	0.36	0.71
5	गेहूं	0.53	0.10	1.10
6	चावल की तूड़ी	0.36	0.08	0.71
7	चावल की भूसी	0.45	0.25	0.45
8	ज्वार	0.40	0.23	2.17
9	गन्ने के पत्ते	0.35	0.12	0.60
10	मूंगफली के छिलके	1.25	0.46	1.50
11	लकड़ी की राख	0.20	2.70	4.00
12	ग्रामीण कचरा	0.54	0.58	0.76
13	बाजरे की तूड़ी	0.65	0.75	2.50
14	चौला	1.10	0.58	1.28
15	जौ	0.40	0.20	0.90

युनिट 5.3 वर्मी कल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल प्रबंध

वर्मीकल्चर के लिए जब तक यह कार्य बहुत छोटे स्तर यानि 5–10 किग्रा. प्रतिमाह पर किया जा रहा था, तब तक वर्मीकल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल के प्रबंध की कभी कोई समस्या नहीं हुई, लेकिन जैसे ही वर्मीकल्चर उत्पादन की बड़ी इकाईयां 100–300 मैट्रिक टन प्रतिमाह की स्थापित की जाने लगी तभी से वर्मीकल्चर के क्षेत्र में कचरा प्रबंध को समझना एक अनिवार्यता बन गई।

किसी भी स्थान पर नई वर्मीकल्चर युनिट लगाये जाने से पहले उस स्थान पर उपलब्ध कचरे का आंकलन किया जाना जरूरी है। कई बार देखा गया है कि वर्मीकल्चर युनिट लगाने का उद्देश्य ही कचरे का निष्पादन करना है। बड़ी होटलों, कैन्टीन, शुगर मिल, फूड–प्रोसेसिंग इत्यादि में वर्मीकम्पोस्ट इकाई की स्थापना ठोस कचरे के निष्पादन के लिए की जा रही है। जयपुर शहर की फल सब्जी मंडी में उपलब्ध कचरे को काम में लेकर वर्मीकम्पोस्ट बनाये जाने की कई इकाईयां गत् 4–5 वर्षों से सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इस प्रकार की सभी इकाईयों द्वारा एक तरफ कचरे का वैज्ञानिक प्रबंध हो रहा है , दूसरी तरफ कचरे के उपयोग से मुनाफा भी कमाया जा रहा है।

मोरारका फाउण्डेशन गत् 3 वर्षों से फल–सब्जी मंडी के कचरे के लिए 400 रूपये प्रति ट्रक तथा शहर की दूध की डेयरी के गोबर के लिए प्रति ट्रक 2000 रूपये से अधिक का भुगतान कर रही है। वर्ष 2000 में मोरारका फाउण्डेशन द्वारा करीब 50 हजार मैट्रिक टन कचरे के उपयोग की सुविधा विकसित कर दी गई है। दिल्ली शहर एवं उसके आसपास अब तक 20 से अधिक वर्मीकल्चर इकाईयां प्रतिदिन 200 टन कचरा वर्मीकल्चर के लिए काम में ले रही हैं।

वर्मीकल्चर के लिए उपलब्ध कचरे को कई बार सीधा उपयोग में नहीं लिया जा सकता । इसके कई कारण होते हैं जैसे कठोर, सूखे, पोषण विहिन कचरे को पहले केंचुओं के खाने लायक बनाया जाता है। मोरारका फाउण्डेशन द्वारा अब तक 100 से अधिक विभिन्न प्रकार के कचरों की प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन प्रक्रियाएं विकसित की गई है। इन प्रक्रियाओं में भौतिक, रासायनिक, जैविक क्रियाएं शामिल है। कई बार एक ही क्रिया के पश्चात् कचरे को केंचुओं के खाने लायक बनाया जा सकता है और कई बार एक से अधिक (तीनों प्रकार की) प्रक्रियाओं द्वारा कचरे का उपचार किया जाता है।

कचरे के प्रारम्भिक उपचार में दो प्रमुख बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। पहला प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन के दौरान किसी भी प्रकार की बदबू, विषैली गैसें, हानिकारक जीवाणु, रसायनिक तत्वों द्वारा कोई भी नुकसान न हो। दूसरा कचरे के प्री–ट्रीटमेंट के पश्चात् बनने वाली वर्मीकास्टिंग की गुणवत्ता में बढ़ोतरी हो।

मोरारका फाउण्डेशन के वैज्ञानिकों ने इन दोनों ही लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए शहरी कचरे को हर प्रकार की बदबू, गैस, मक्खी, मच्छर, हारिकारक जीवाणुओं से रहित करने के लिए एक जैविक सैनिटाईजर का विकास किया है। इस सैनिटाईजर के उपयोग से मात्र 15 मिनट में शहरी कचरे का पूर्ण उपचार किया जा सकता है। इसी सैनिटाईजर के कारण जिस कचरे को सामान्य प्रक्रिया से डीकम्पोज होने में 6–8 महिनों का समय लगता था, वह 1–2 सप्ताह में डीकम्पोज किये जाने में सफलता मिलती है।

बहुत कम पोषक तत्वों वाले कचरे के प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन के लिए ऐसी प्रक्रियाएं विकसित की गई हैं जिनमें डीकम्पोजिशन के साथ कचरे में पोषक तत्वों की मात्रा को भी बढ़ाया जा सके। फसल अवशेष के रूप में प्राप्त होने वाले कई प्रकार के कचरों में सेल्यूलोज की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उसके प्रारम्भिक डीकम्पोजीशन के लिए कुछ विशेष प्रकार की जैव–रासायनिक क्रियाओं द्वारा उनमें सूक्ष्मजीवाणुओं की गतिविधि को बढ़ाकर पोषक तत्वों की वृद्धि की जाती है। कचरे के प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन के लिए मिनरल रूप में उपलब्ध कई प्रकार के रसायनों जैसे रॉक फास्फेट, लाइमस्टोन, ग्रेनाइट डस्ट, जिप्सम इत्यादि का उपयोग भी बहुत लाभदायक पाया गया है।

कम पोषक तत्वों वाले कचरों के प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन के लिए तथा जैव प्रक्रियाओं को प्रारम्भ करने के लिए पशु–कत्ल कारखानों का कचरा, मछली उद्योग का कचरा, खाने वाली तेल मिलों का कचरा, कई प्रकार के अखाद्य तेलों की खल इत्यादि को विशेष प्रक्रियाओं के पश्चात उपयोग में लिया जा सकता है।

वर्मीकल्चर बनाने के लिए जिस प्रकार के भी ओर्गेनिक मैटिरियल उपलब्ध हों, उन्हें थोड़ी सावधानी एवं समझदारी के साथ उपयोग में लिया जा सकता है। कई प्रकार के ओर्गेनिक मैटिरियल को केचुओं को खिलाने की जगह वर्मीकम्पोस्ट खाद में बाद में मिलाये जाने पर भी बहुत अच्छे प्रभाव देखे गये हैं। इस विषय पर अब तक जितनी भी खोज की गई है वह हमारी प्रारम्भिक जरूरतों के लिए तो ठीक है लेकिन अभी बहुत कुछ रिसर्च और किये जाने की भी जरूरत है।
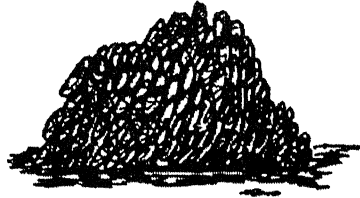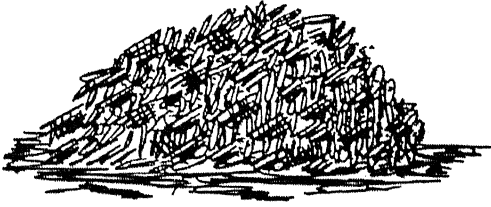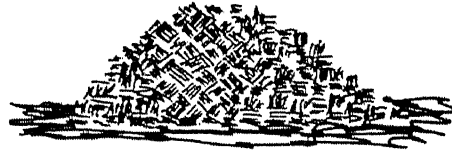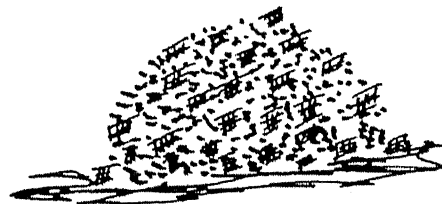
वर्मीकम्पोस्ट के लिये कच्चा माल

तालिका-11

विभिन्न खादों एवं खाद बनाने वाले पदार्थों में उपस्थित औसत पोषक तत्वों की मात्रा

S. No.	खाद / कच्चा माल	N (%)	P_2O_5 (%)	K_2O (%)
A.	पशुओं से प्राप्त			
1	पशुओं का गोबर (ताजा)	0.3-0.4	0.1-0.2	0.1-0.3
2	घोड़े का गोबर (ताजा)	0.4-0.5	0.3-0.4	0.3-0.4
3	भेड़ की मींगनी (ताजा)	0.5-0.7	0.4-0.6	0.3-1.0
4	मलमूत्र (ताजा)	1.0-1.6	0.8-1.2	0.2-0.6
5	मुर्गी की खाद (ताजा)	1.0-1.8	1.4-1.8	0.8-0.9
6	शहरी मलमूत्र (ताजा)	2.0-3.0	-	-
7	शहरी सल्ज (सूखा)	2.0-3.5	1.0-5.0	0.2-0.5
8	शहरी कीचड़	4.0-7.0	2.1-4.2	0.5-0.7
9	पशुओं का मूत्र	0.9-1.2	-	0.5-1.0
10	घोड़े का मूत्र	1.2-1.5	-	1.3-1.5
11	मानव मूत्र	0.6-1.0	0.1-0.2	0.2-0.3
12	भेड़ का मूत्र	1.5-1.7	-	1.8-2.0
B.	खेत, कारखानों तथा घरों से प्राप्त कचरा			
1	ग्रामीण कम्पोस्ट (सूखा)	0.5-1.0	0.4-0.8	0.8-1.8
2	शहरी कम्पोस्ट (सूखा)	0.7-2.0	0.9-3.0	1.0-2.0
3	गोबर की खाद (सूखी)	0.4-0.5	0.3-0.9	0.3-1.9
C.	पादप अवशेष			
1	बाजरा	0.65	0.75	2.5
2	केला (सूखा)	0.61	0.12	1.00
3	कपास	0.44	0.10	0.66
4	ज्वार	0.40	0.23	2.17
5	चावल की भूसी	0.3-0.5	0.2-0.5	0.3-0.5
6	मूंगफली का छिलका	1.6-1.8	0.3-0.5	1.1-1.7
7	मक्का	0.42	1.57	1.65
8	धान	0.36	0.08	0.71
9	तम्बाकू	0.12	0.84	0.80
10	अरहर	0.10	0.58	1.28
11	गेहूं	0.53	0.10	0.60
12	तम्बाकू का चूर्ण	1.10	0.31	0.93

तालिका-12

जैविक खादों में औसत पोषक तत्वों की प्रतिशत

खाद का नाम	संगठन (प्रतिशत में)		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1. खली			
अ. अखाद्य तेलों की खली			
अरंड की खली	4.3	1.8	1.3
कपास की खली	3.9	1.8	1.6
करंज की खली	3.9	0.9	1.2
महुवा की खली	2.5	0.8	1.8
सेप्लोवर की खली	4.9	1.4	1.2
नीम की खली	5.2	1.0	1.4
ब. खाद्य तेलों की खली			
नारियल की खली	3.0	1.9	1.8
कपास के बीज की खली	6.4	2.9	2.2
मूंगफली की खली	7.3	1.5	1.3
लिनसीड की खली	4.9	1.4	1.3
जम्बो खली	4.9	1.6	1.9
नाईगर खली	4.7	1.8	1.3
रेपसीड खली	5.2	1.8	1.2
सेप्लोवर की खली	7.9	2.2	1.9
तिल की खली	6.2	2.0	1.2
2- Meal			
Blood meal	10-12	1.5	1.0
Fish meal	4-10	3.9	0.3-1.5
Meat meal	5-10	2.5	0.5
Hom & hoof meal	13	-	-
Raw bone meal	3-4	20-25	-
Steamed bone meal	1-2	25-30	-

अभ्यास 5

1.क्या आप अपने लिए आवश्यक वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन लायक कचरे की व्यवस्था करने में सक्षम हैं? हाँ/नहीं, क्यों? ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2. आपके पास उपलब्ध कचरे (कच्चे माल) से वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए कौनसे पदार्थों को पहले डीकम्पोज करना होगा एवं इसके लिए कौनसी विधि उपयुक्त रहेगी? ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3. अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु ....

....

....

....

....

....

मोड्यूल – 6
वर्मी कम्पोस्ट का वाणिज्यिक उत्पादन

युनिट 6.1 स्थान

युनिट 6.2 औजार एवं अन्य आवश्यकताऐं

युनिट 6.3 वाणिज्यिक उत्पादन विधि

मोरारका फाउण्डेशन के दुर्गापुरा रिसर्च सेन्टर पर कार्यरत् स्टॉफ

युनिट 6.1 स्थान

वर्मीकल्चर युनिट लगाने के स्थान के बारे में निर्णय करने से पहले कई महत्वपूर्ण बातों का पहले से निर्धारण करना जरूरी है।

वर्मीकम्पोस्ट युनिट - खुले स्थान पर
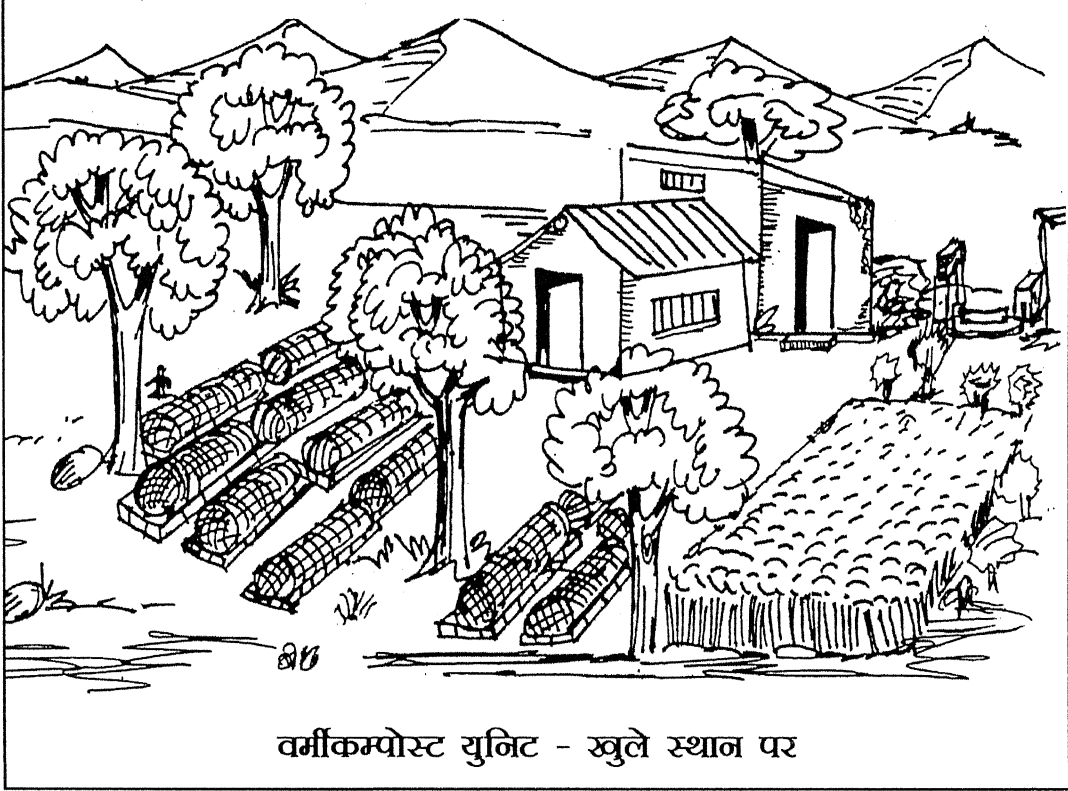
<u>युनिट स्थापना का उद्देश्य :–</u> अब तक वर्मीकंम्पोस्ट इकाई लगाने वाले व्यक्तियों द्वारा दो तरह की इकाईयाँ लगाई जाती रही हैं। पहले तरह की इकाईयाँ किसानों द्वारा स्वयं अपने उपयोग के लिए लगाई जाती हैं। इस प्रकार की इकाई के लिए कई बार देखा गया है कि किसानों के रहने का घर एवं पशु गांव में होते हैं तथा खेत, खलिहान एवं कुआं गांव से दूर होते हैं। ऐसी परिस्थिति में जब–जब इकाई की स्थापना घर से दूर की गई तो उसके उचित रखरखाव एवं संचालन में कई कठिनाइयां सामने आयी हैं। चूंकि किसान द्वारा स्वयं अपने उपयोग के लिए लगाई जाने वाली इकाई की क्षमता कम होती है इसलिए खेत का कचरा एक बार लाया जाना संभव है और छोटी इकाई के लिए पानी का खर्चा भी कम है इसलिए इस प्रकार की यूनिट घर के पास स्थापित करना उचित रहता है।

बड़ी क्षमता की उत्पादन इकाईयों, जिसमें तैयार माल को बेचा जाना हो, के स्थान का चयन करते समय कच्चे माल/कचरे/गोबर के आने का मार्ग, उचित मात्रा में पानी की उपलब्धता एवं इकाई लगाने वाले स्थान के आस-पास लेबर के रहने की व्यवस्था के आधार पर स्थान का चयन करना उचित होगा।

उत्पादन क्षमता :- गत् 3 वर्षों में यह देखा गया है कि वर्मीकम्पोस्ट इकाई की उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखकर युनिट लगाने के स्थान का चयन उचित होगा। वर्मीकल्चर उत्पादन किसी भी क्षमता से प्रारम्भ किया जाय तो कुछ ही समय पश्चात् उस युनिट की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। आमतौर पर देखा गया है कि किसी भी इकाई की उत्पादन क्षमता के निर्धारण में केचुओं की उपलब्धता एक प्रमुख आधार है। केचुओं की बड़ी संख्या में जरूरत पडने पर इकाई में पूंजी निवेश बढ़ जाता है। अब तक का हमारा अनुभव रहा है कि प्रारम्भ में 30-50 मैट्रिक टन प्रतिवर्ष उत्पादन क्षमता की इकाई के लिए प्रारम्भ में केचुएं खरीदने के बाद एक वर्ष बाद ही उस इकाई की उत्पादन क्षमता को 250-300 मैट्रिक टन प्रति वर्ष (और नए केचुएं खरीदे बिना) बढ़ाया जा सकता है। अतः स्थान के चयन के समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि बाद में उस स्थान पर युनिट की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जाने की पूरी गुंजाइश मौजूद है।

कच्चा माल /कचरा/गोबर :- वर्मीकल्चर इकाई की स्थापना के चयन में कच्चे माल की उपलब्धता का ध्यान रखना बहुत जरूरी है। कई बार 4-6 महिनों तक का कच्चा माल किसी एक समय मिलने के कारण कच्चे माल का स्टॉक रखने के लिए पर्याप्त स्थान की जरूरत होती है। एक चक्र लायक कच्चा माल हमेशा स्टॉक में रखा जाना चाहिये।

पानी का स्त्रोत :- किसानों के स्तर पर लगाई जाने वाली कुछ युनिट्स के फेल होने के पश्चात् किये गये विश्लेषण में हमने पाया कि युनिट के स्थान से पानी का स्त्रोत बहुत दूर है। किसी भी व्यक्ति में चाहे कितना भी जोश क्यों ना हो लेकिन बाल्टियों द्वारा बहुत दूर से पानी लाया जाना संभव नहीं होता। अतः यह जरूरी है कि यूनिट के नजदीक ही पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध हो।

ऊपरोक्त बातों के अलावा स्थान के चयन में यह ध्यान रखना भी जरूरी है कि वह स्थान थोड़ा ऊंचाई पर हो, उस स्थान पर पानी नहीं भरता हो तथा उस स्थान का रास्ता सुगम हो। वैसे तो यह देखा गया है कि वर्मीकल्चर यूनिट को आमतौर पर किसी अन्य जीव - जन्तुओं से कोई बहुत अधिक खतरा नहीं है लेकिन फिर भी युनिट लगाये जाने के स्थान की उचित सुरक्षा किया जाना जरूरी है।

शेड :– वर्मीकल्चर उत्पादन की विधि का विकास करते समय शुरूआत में बताया गया कि वर्मीकल्चर उत्पादन के लिए वातावरण नियंत्रण की उचित व्यवस्था के बिना उत्पादन करना संभव नहीं है। अतः शुरूआत में वर्मीकल्चर उत्पादन का प्रारम्भ पक्के कमरे (खिडकी, दरवाजों सहित) से ही किया गया। थोड़े समय पश्चात् जब प्रायोगिक तौर पर खुले स्थानों पर वर्मीकल्चर उत्पादन करने के प्रयास किये तो पाया कि केचुओं के रहने एवं उनकी गतिशीलता के लिए खुले स्थान पर भी आसानी से किये जा सकने वाले उपायों से उचित परिस्थितियां बनाई जा सकती है। इसी का परिणाम है कि आज मोरारका फाउण्डेशन के रिसर्च सेन्टर पर पेड़ों के नीचे पूर्णतया खुले स्थान पर भी 10 मैट्रिक टन प्रतिदिन उत्पादन क्षमता की इकाई कई वर्षो से सुचारू रूप से चल रही है। यह जरूर है कि खुले स्थान पर कुछ विशेष प्रबंध करने जरूरी है। धूप एवं वर्षा से बचाव के लिए एहतियाति कदम उठाने के साथ ही खुले स्थानों पर पानी की खपत बढ़ जाती है। इसलिए अन्य स्थानों पर वर्मीकल्चर इकाई की स्थापना के पहले शेड निर्माण की सिफारिश की जाती रही है।
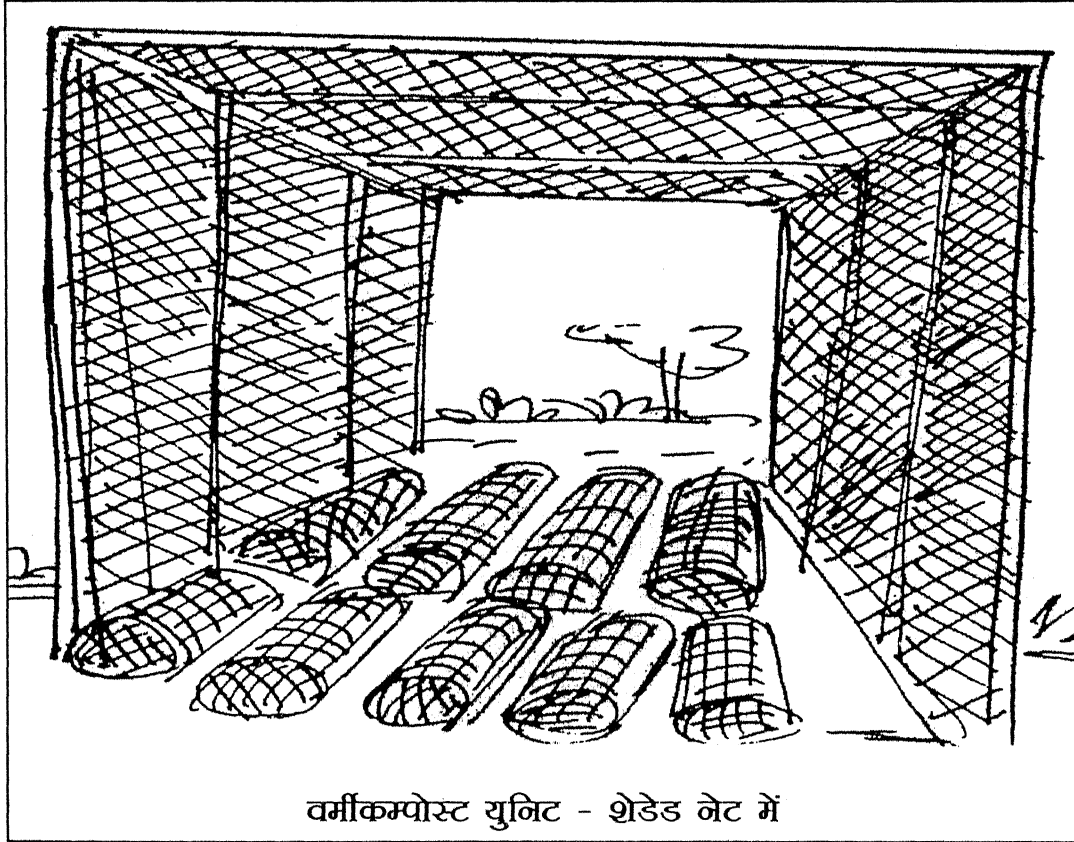
वर्मीकम्पोस्ट युनिट - शेडेड नेट में

गत् 5 वर्षों के गहन शोध के बाद यह पाया गया है कि वर्मीकल्चर इकाई की स्थापना सघन छाया वाले क्षेत्र में किया जाना उचित रहता है। खुली जगह पर वर्मीकल्चर बैड बनाई जा सकती है लेकिन उनसे अच्छा उत्पादन लेने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। वर्मीकल्चर इकाई की उत्पादन क्षमता के अनुसार शेड का निर्माण करना जरूरी है। शेड के निर्माण में इतनी ऊंचाई अवश्य रखी जानी चाहिए कि उसके नीचे खड़े रहकर सभी क्रियाएं की जा सके। शेड की छत के लिए किसी भी प्रकार का कवरिंग मैटिरियल काम में लिया जा सकता है। टाट पट्टी, छान, सीमेन्ट शीट की नालीदार चद्दरें, जी.आइ. शीट की नालीदार चद्दरें, पट्टी वाली छत, सीमेन्ट की आर.सी.सी की छत इत्यादि के उपयोग से शेड बनाई जा सकती है। शेड की एक से लेकर चारों तरफ की दीवारों को भी खुला रखा जा सकता है। लेकिन उचित यही होगा कि वर्मीकल्चर शेड की उन साइड्स पर किसी ना किसी प्रकार का अवरोधक अवश्य लगाया जाये, जिस तरफ से धूप आती है। वर्मीकल्चर के शेड के निर्माण में हवा के आवागमन का उचित प्रबंध होना बहुत जरूरी है।

शेड निर्माण के लिए लकड़ी की बल्लियों के स्थान पर जंग प्रतिरोधक क्षमता के पोल या सीमेन्ट ईंट की चिनाई के खंभे बनाना अधिक उचित रहता है। किसी भी स्थान पर उचित परिस्थितियों में स्थायी रूप से लगाई जाने वाली इकाई में शेड की तीन दीवारों को सीमेन्ट व ईंट की कम से कम 4 फुट ऊंची दीवार एवं उसके पश्चात् खुली जालीदार ईंट की चिनाई करना सबसे उचित रहता है। इस प्रकार बनाई गई शेड की दीवार टिकाऊ होती है और अंदर का तापमान स्थिर रखना आसान होता है। यह प्रयास किया जाना चाहिये कि शैड की लम्बाई पूर्व से पश्चिम की तरफ रहे।

फर्श :– वर्मीकल्चर इकाई के लिए फर्श निर्माण करते समय यह ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि उस स्थान पर पानी नहीं भरे। कच्ची जगह पर यूनिट लगाई जा सकती है लेकिन कच्ची जगह को भी आसपास से करीब 6 ईंच ऊंचाई देना ठीक रहेगा। कच्चे फर्श वाली जमीन पर इकाई लगाने से पहले उस स्थान का दीमक एवं लाल चींटी के लिए उपचार किया जाना चाहिए। उपचार के लिए रासायनिक दवाओं में एल्डोसल्फोन डस्ट, क्लोरो पायरीफास लिक्विड तथा नुवान इत्यादि उचित पाये गये हैं। प्राकृतिक उपायों में नीम की खली का उपचार किया जाना चाहिए। यदि वर्मीकल्चर यूनिट की स्थापना शेड में की जा रही हो तो पक्की ईंटों का खरंजा मिट्टी के गारे में किया जा सकता है। सीमेन्ट फर्श वाले स्थान पर वर्मीकल्चर बेड लगाने से पहले तीन इंच मोटाई में बजरी बिछाई जानी चाहिए। इससे उचित नमी एवं तापमान बनाये रखना आसान रहता है। चूंकि एसिनिया फटिडा केचुएं जमीन में नीचे नहीं जाते हैं इसलिए पक्का फर्श बनाया जाना जरूरी नहीं है। लेकिन फर्श बनाने से पानी की खपत जरूर कम होती है।
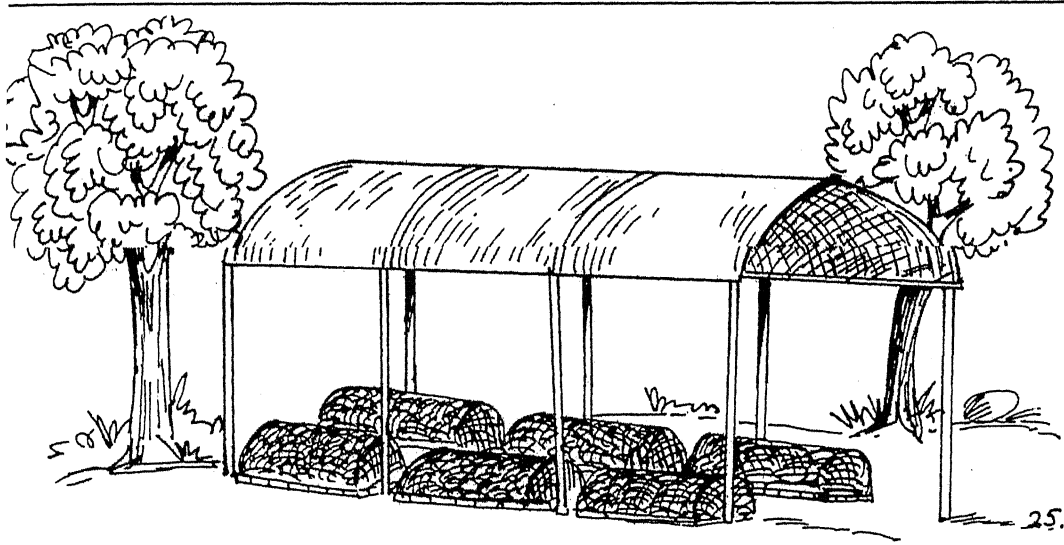
वर्मीकम्पोस्ट युनिट - टिन शेड में
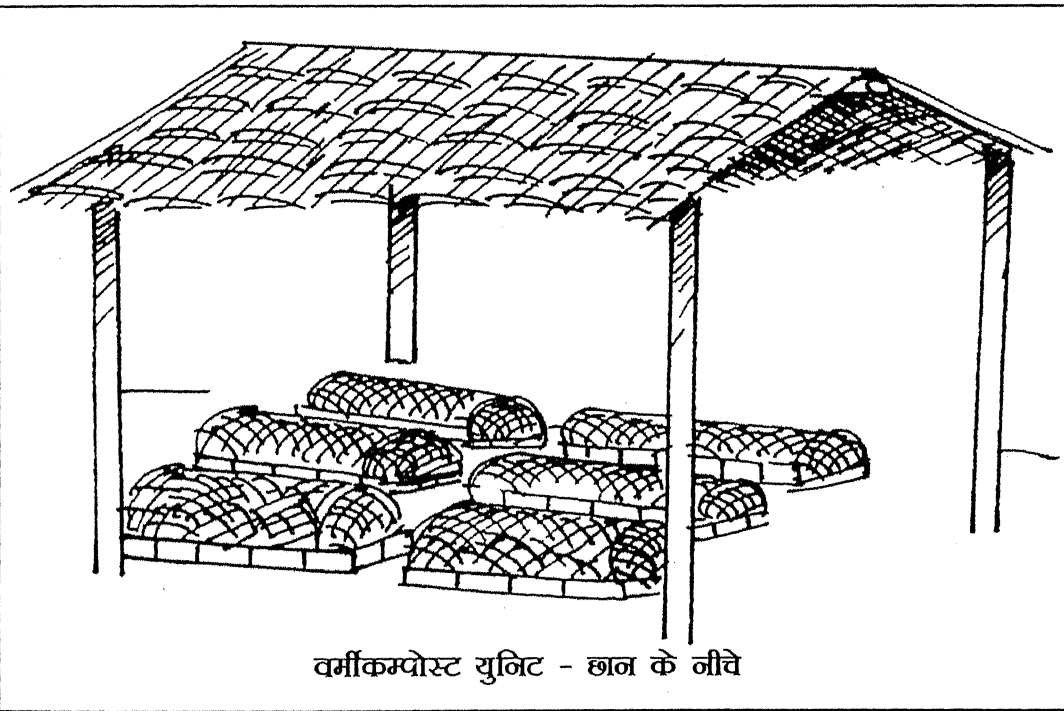
वर्मीकम्पोस्ट युनिट - छान के नीचे

यूनिट 6.2 औजार एवं अन्य आवश्यकताएँ

वर्मीकल्चर/वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के लिए आवश्यक औजार एवं साधन सुविधाएं इकाई की उत्पादन क्षमता पर निर्भर होते हैं। छोटे स्तर पर बहुत कम साधन सुविधाओं से काम चलाया जा सकता है लेकिन बड़े स्तर पर उत्पादन की लागत को नियंत्रित करने के लिए उचित औजार एवं साधन–सुविधाओं का होना बहुत जरूरी है। इस अध्याय में कुछ प्रमुख आवश्यकताओं के बारे में बताया गया है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इनके बिना वर्मीकल्चर नहीं की जा सकती। कुल मिलाकर काम के तरीके एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखना होगा और जैसी सुविधा जिस जगह पर उपलब्ध हो उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए।

<u>पानी का स्त्रोत, पाईप लाईन एवं टंकियां</u> :– वर्मीकल्चर के लिए केचुएं एवं कचरे के बाद पानी सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। 5 वर्ष से अधिक के अनुभव से यह देखा गया है कि प्रतिदिन 80–100 किग्रा वर्मीकास्टिंग के उत्पादन के लिए सर्दी एवं वर्षा ऋतु में 20–30 लीटर तथा ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम 60–70 लीटर पानी की प्रतिदिन जरूरत होती है। वर्मीकल्चर इकाई के स्थान, धूप, शेड, बैड के फर्श, कच्चा माल इत्यादि के आधार पर पानी की खपत घट–बढ़ सकती है।किसी भी स्थान पर वर्मीकल्चर इकाई की स्थापना तभी की जानी चाहिए जब उस स्थान पर या उसके नजदीक ही जरूरत के अनुसार पानी उपलब्ध हो सके।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाले बाल्टी, लोटा व मग
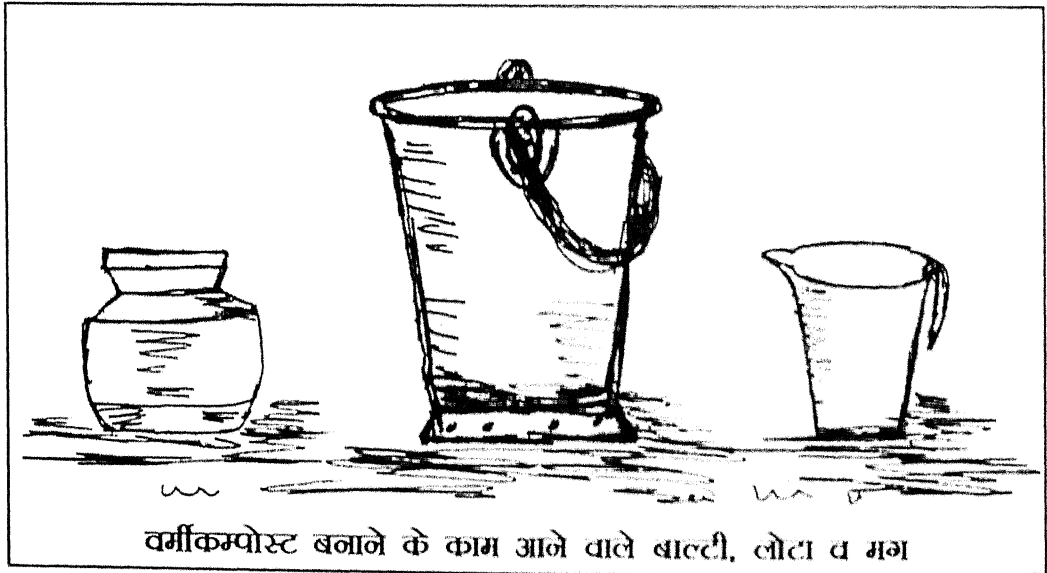
ानी का स्त्रोत अधिक दूर होने पर बाल्टियों से पानी लाने की जगह पानी का परिवहन पाइप लाइन द्वारा किया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार पानी मिलने में कठिनाई हो तो इकाई वाले स्थान पर ही पानी के भंडारण के लिए जमीन के स्तर पर (छोटी इकाईयों के लिए) एवं ओवर हैड टैंक (बड़ी इकाईयों के लिए) बनाने होंगे।

पानी देने के लिए फव्वारेनुमा बहाव सबसे अधिक उपयुक्त है तथा बाल्टी–मग की जगह झारे का उपयोग किया जाना चाहिए। पाइप द्वारा पानी दिया जाये तो नलकी के मुहं पर फव्वारे का अटैचमेन्ट लगा देना चाहिए। स्थायी आधार पर लगाई गई यूनिट में छत की तरफ से लटकाये हुए छोटे स्प्रिंकलर का उपयोग भी किया जा सकता है। इससे श्रम में बचत होती है और मात्र नल खोल देने या मोटर चला देने से ही आवश्यक पानी दिया जा सकता है।
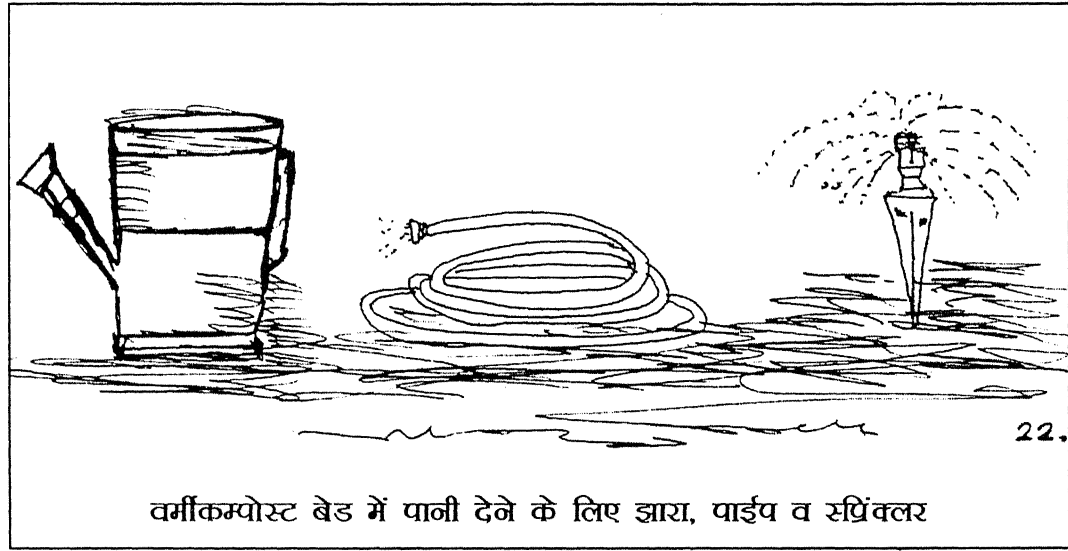
वर्मीकम्पोस्ट बेड में पानी देने के लिए झारा, पाईप व स्प्रिंक्लर

<u>परात, टोकरी एवं प्लास्टिक क्रेट्स</u> :– बड़े स्तर पर वर्मीकल्चर इकाई में कचरे अथवा कच्चे माल को कम से कम दो बार हैन्डिल किया जाता है। सबसे पहले यूनिट में लाये गये कच्चे माल को बैड में डालने के लिए एवं दूसरी बार बनी हुई खाद को निकालने के लिए। लेकिन वास्तविकता में यह देखा गया है कि कुछ मैटिरियल को कई बार हैन्डल करना पडता है। इसके लिए हर स्तर पर अलग–अलग तरह के साधनों की जरूरत होती है। ट्रक या ट्रोली से कच्चा माल उतारने के लिए, प्रारम्भिक डीकम्पोजिशन करने के लिए, मिश्रण बनाने में, बैड भरने के लिए, बैड खाली करने के लिए, भंडारण एवं पैकिंग, डिलीवरी देने के लिए इत्यादि। मैटिरियल हैन्डलिंग हेतु विभिन्न नाप एवं आकार की टोकरी, परात एवं क्रैट्स की जरूरत होती है। इनकी संख्या इकाई द्वारा किये जाने वाले उत्पादन एवं लेबर की संख्या के आधार पर तय की जा सकती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाली टोकरी, परात व ट्रे

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाले प्लास्टिक क्रेट्स
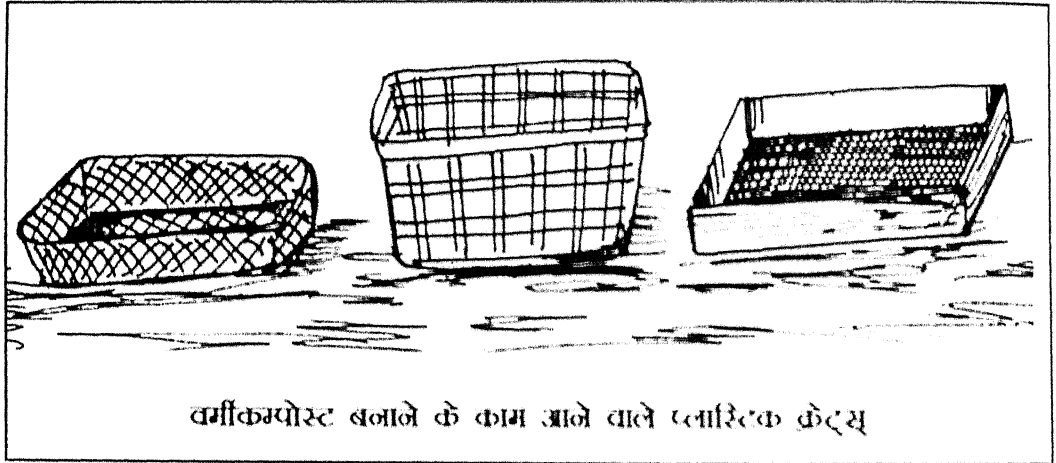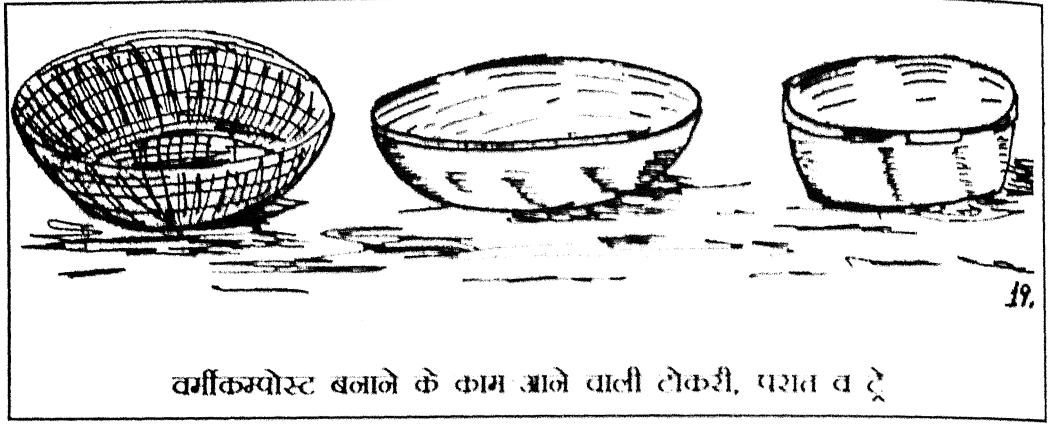
फावडे, पंजे एवं दंताली :– यह तीनों ही प्रकार के औजार वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन इकाई की प्रमुख प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए बहुत जरूरी है। फावडे का प्रयोग कच्चे माल को भरने, खाली करने में किया जाता है। लोहे अथवा लकडी के बने पंजों का उपयोग वर्मीकास्टिंग की बेडों में कुरैरी लगाने के लिए किया जाता है। वर्मीकल्चर बैड मे यदि हाथ ना डालना हो तो केंचुओं की गतिविधि को जानने के लिए पंजों से मैटिरियल एवं केंचुए निकालकर देखा जा सकता है। दंताली का उपयोग कच्चे माल को फैलाने एवं बैड पर से बनी हुई खाद को उतारने के लिए किया जाता है।

कुछ विशेष प्रकार के कच्चे माल को उपयोग में लेने पर हाथों के दस्ताने भी पहनने चाहिये।
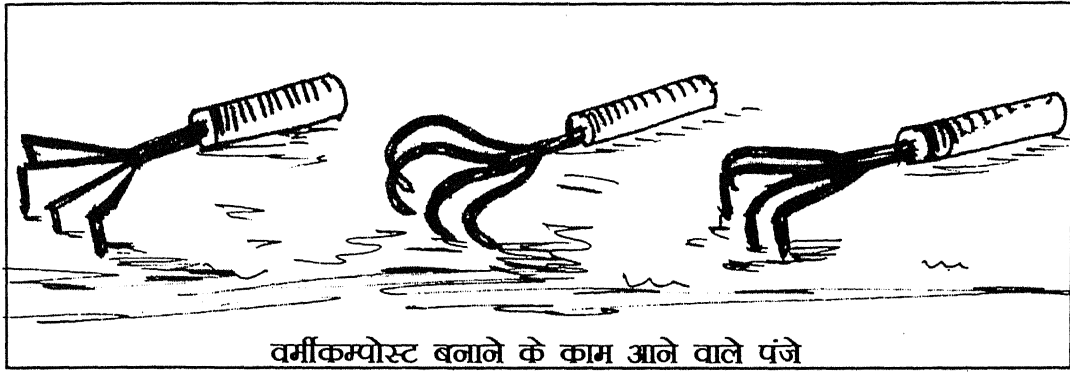
वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाले पंजे

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाले फावडे
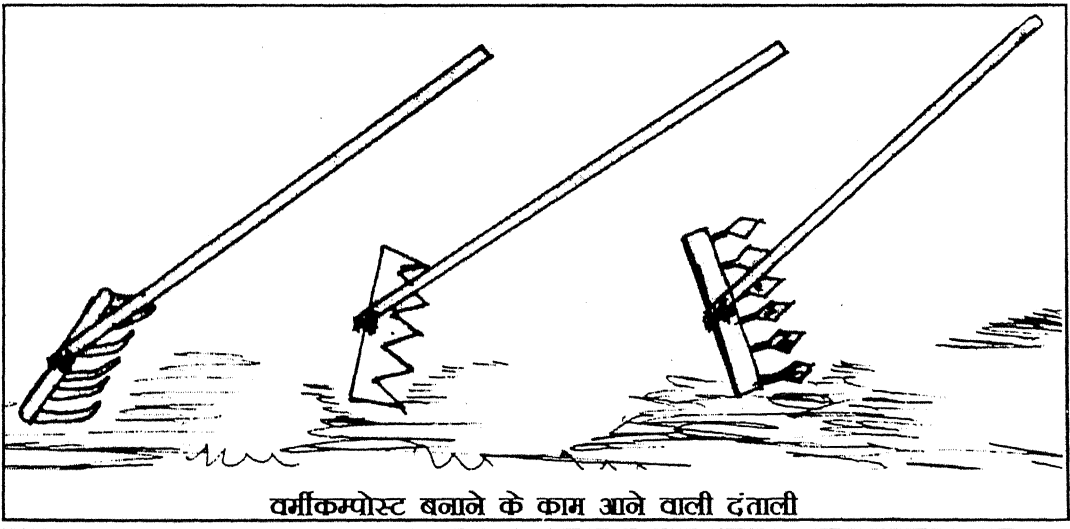
वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम आने वाली दंताली

यूनिट 6.3 वाणिज्यिक उत्पादन विधि

घरेलू एवं छोटे स्तर पर वर्मीकल्चर इकाई लगाने में थोड़ी बहुत कमी रह जाने पर भी वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन पर कोई बहुत अधिक विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन बड़े स्तर पर वाणिज्यिक उत्पादन करने में जरा भी कमी रहने से मुनाफे पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। एक दूसरा पहलू वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी का भी है। अगर शुरूआत से लेकन अंत तक सही विधि नहीं अपनाई जाये तो वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी प्रभावित होने लग जाती है। कई बार देखा गया कि कुछ लोगों ने 20 क्विंटल माल में 10–20 केंचुएं छोड़ दिये हैं और उनके अनुसार 2–3 महिने बाद वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो गई है। लेकिन केंचुओं की संख्या एवं कच्चे माल के अनुपात को देखते हुए यह कतई संभव नहीं है। कई जगह वर्मी कल्चर–कम्पोस्ट बनाने के इस प्रकार के तरीकों को देखकर मोरारका फाउण्डेशन ने अपने स्तर पर शोध किये। इसी शोध के परिणामस्वरूप सरफेस बेड विधि का विकास किया गया जो कि वाणिज्यिक उत्पादन में सहायक सिद्ध हुआ। इस विधि का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है।

पहले बताये अनुसार फर्श एवं शेड बनाने के पश्चात् सबसे पहले वर्मीकम्पोस्ट बेड बनाई जाती है। वर्मीकम्पोस्ट बेड बनाने के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चा माल, अन्य साधन–सुविधाएं तथा लेबर की उपलब्धता को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

इस अध्याय में उत्पादन विधि को साधारण बोलचाल एवं आसानी से समझ में आने वाली भाषा में बताया गया है।

वर्मीकम्पोस्ट बेड का आकार
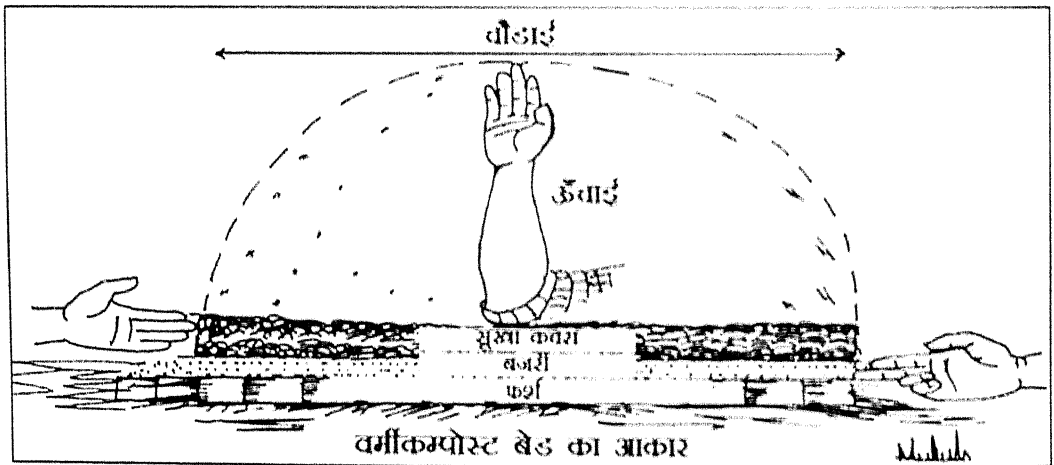
ड बनाने के लिए सबसे पहले फर्श पर दो अंगुली (डेढ़ इंच मोटाई) की ऊंचाई तक बजरी थवा बालू रेत डालनी चाहिए। इससे बेड में उचित नमी बनाये रखना आसान होता है। केचुएं वं इसके अंडे भी इसके नीचे नहीं जाते। बजरी अपनी क्षमता के अनुरूप पानी सोख लेती और अधिक पानी को बहकर निकल जाने देती है। नमी की कमी होने पर बजरी द्वारा सोखा या पानी कैपिलरी एक्शन से बेड में ऊपर आ सकता है। बजरी के ऊपर 4 अंगुली (3 इंच ोटाई) की ऊँचाई तक मोटा कचरा–फसल अवशेष, डाले जाने चाहिए। इसके ऊपर र्मीकम्पोस्ट के लिए पहले से तैयार किया गया कच्चा माल डाला जायेगा।

ोट: वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए काम में लिए जाने वाले कचरे में मिट्टी नहीं होनी चाहिये और दि है तो उसके लिए बेड बनाने की विधि के लिए स्वयं लेखक या मोरारका फाउण्डेशन से म्पर्क कर अपनी जरूरत के अनुसार डिजाइन एवं विधि तय करें।

जारों आकार एवं प्रकार की बेड बनाने के पश्चात् यह देखा गया कि बजरी और मोटे कचरे े ऊपर कच्चा माल एक हाथ की ऊँचाई (18–20 ईंच) तक डालना उचित रहता है। बेड के ीच में एक हाथ की ऊँचाई तक कच्चा माल ही बेड की चौड़ाई निर्धारित कर देता है। एक ाथ की ऊँचाई वाली बेड की सामान्यतः दो हाथ की चौड़ाई (35–40 ईंच) बन जाती है। इस कार बनी हुई बेड में कई समस्याओं का अपने आप ही निदान हो जाता है।

र्मीकम्पोस्ट के वाणिज्यिक उत्पादन के लिए सही ऊँचाई एवं चौड़ाई रखने के अलावा बेड ी लम्बाई चाहे जितनी रखी जा सकती है। किसी स्थान विशेष पर साधन सुविधाओं की उपलब्धता, शेड के आकार इत्यादि को ध्यान में रखते हुए बेड्स की लम्बाई तय की जानी ाहिए। एक बेड से दूसरी बेड के बीच लेबर के आने जाने एवं कार्य करने के लिए उचित थान छोड़ना चाहिए।

वर्मीकम्पोस्ट बेड में भरा हुआ गोबर
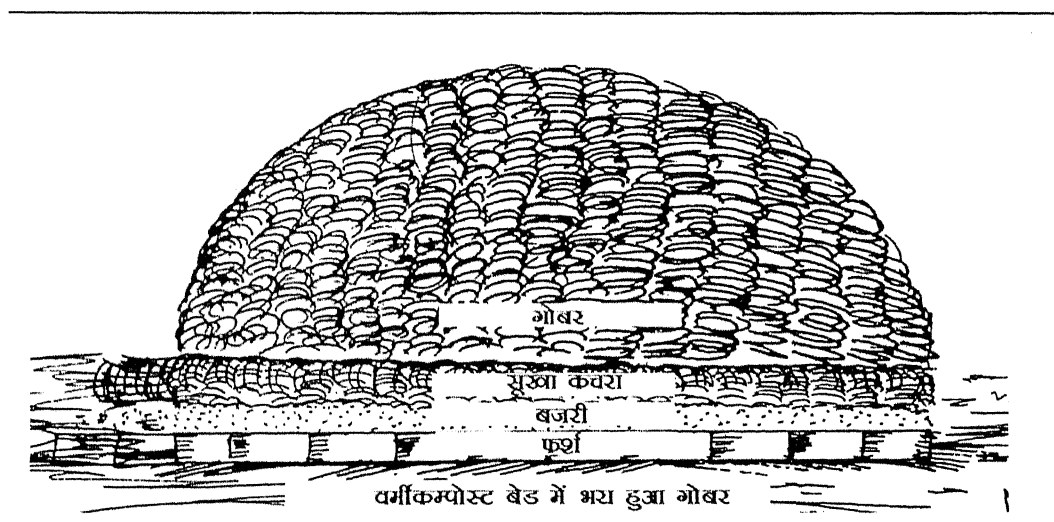
अर्द्धगोलाकार बेड का सबसे बड़ा फायदा केंचुओं द्वारा कास्टिंग गिराने के लिए सबसे अधिक सरफेस एरिया मिलना है। केंचुए द्वारा कचरा बेड के ऊपर के धरातल से करीब दो या तीन अंगुल नीचे खाया जाता है लेकिन कास्टिंग हमेशा धरातल के ऊपर ही गिराई जाती है। अधिक संख्या में केंचुएं होने पर सभी केंचुओं के लिए धरातल पर इस प्रकिया को करना आसान होता है। अर्द्धगोलाकार बेड में हवा का आवागमन अधिक होता है। यह केंचुओं के स्वस्थ रहने एवं लगातार गतिशील बने रहने के लिए बहुत जरूरी है।

अर्द्धगोलाकार बेड में पानी की कमी होने पर भी अंदर की तरफ डेढ़ फुट चौड़ाई और 1 फुट ऊँचाई में अच्छी नमी बनी रहती है। हमने देखा है कि इस प्रकार की बेड में 10–15 दिन तक पानी ना देने पर भी केंचुओं को जिन्दा रखने लायक नमी बनी रहती है। हालांकि इस स्तर पर केंचुएं सिर्फ जिन्दा ही रह पाते हैं और वर्मीकास्टिंग बनने की प्रकिया रूक जाती है। वर्मीकास्टिंग बेड बनने के पश्चात् उस पर पानी का छिड़काव किया जाता है। उचित नमी का आकंलन पहले बताये गये तरीकों से किया जा सकता है। नमी की इस स्थिति में बेड को 2–3 दिन छोड़ देना चाहिए।

वर्मीकम्पोस्ट की बेड को पानी डालकर ठण्डा करते हुए
एवं ट्रायल के लिये थोड़े से केंचुए छोड़कर देखते हुए 6.
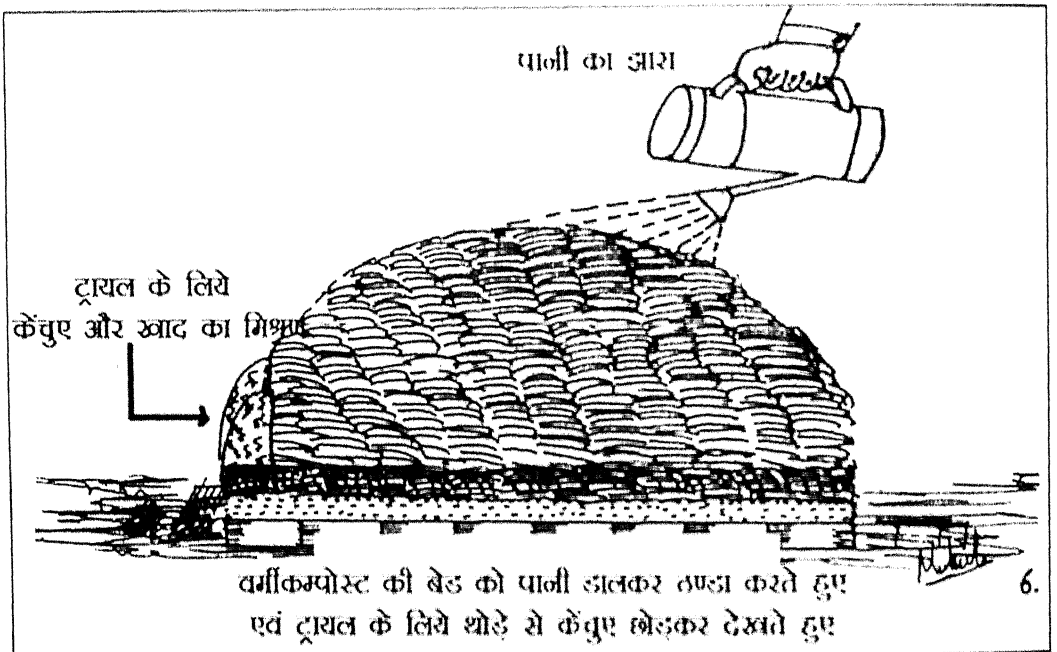
बेड में केचुएं डालने से पहले उसमें कई जगहों पर हाथ डाल कर यह देख लेना उचित रहता है कि कहीं किसी स्थान पर अधिक गर्मी या कोई बदबू तो नहीं आ रही है। जब बेड में सभी तरफ समान नमी, समान तापमान एवं किसी प्रकार की बदबू ना आ रही हो तब उस बेड के किसी एक तरफ लम्बाई में केचुएं, अंडे, पहले से बनी हुई खाद व कच्चे माल का मिश्रण चित्र में दर्शाये अनुसार 10 ईंच ऊँचाई में डालना चाहिए।

वर्मीकम्पोस्ट की ठण्डी बेड में केंचुए और खाद का मिश्रण पूरी मात्रा में डालते हुए
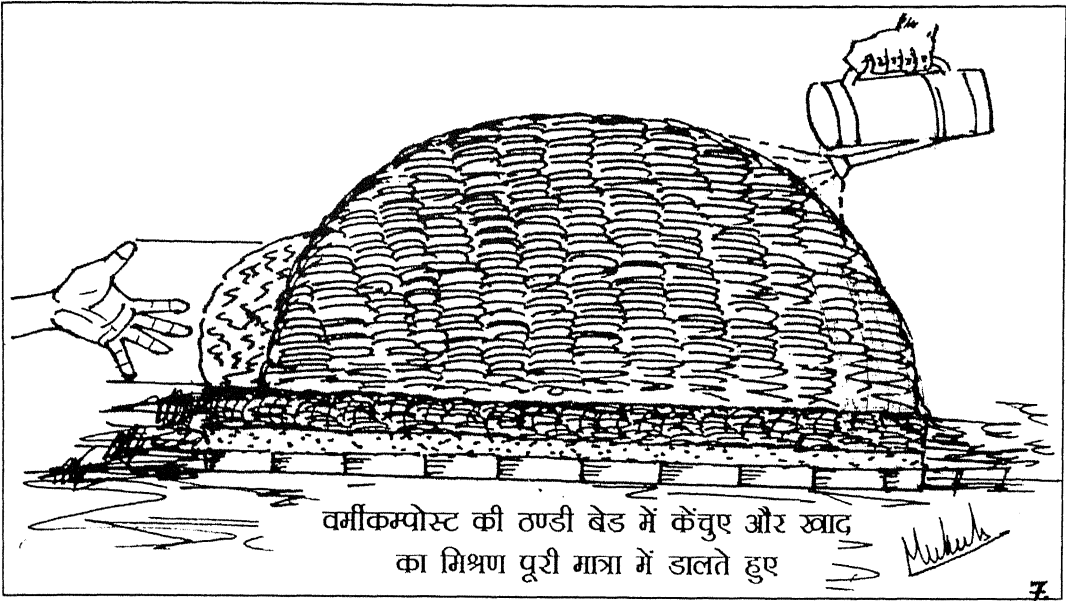
इस प्रकार साइड में केचुएं एवं मिश्रण डालने से केचुएं स्वयं भी यह आंकलन कर सकते हैं कि बेड में परिस्थितियां उनके आहार–विहार के अनुकूल हैं या नहीं। मिश्रण के साइड में डालने के पश्चात् पूरी बेड को बारीक अथवा कुट्टी कटे हुए कचरे से करीब 4 अंगुली मोटाई में अच्छी तरह ढ़कना होगा।

वर्मीकम्पोस्ट की बेड में केचुए डालने के बाद कचरे से ढ़कते हुए
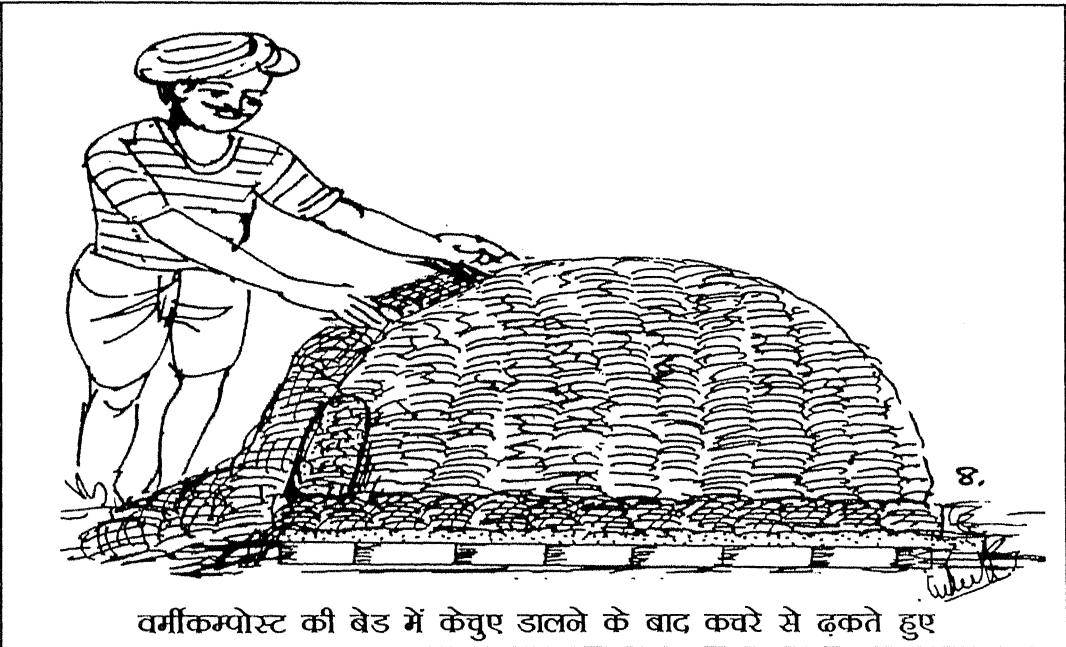
वर्मीकम्पोस्ट के लिए बड़ी साइज के कचरे को कुट्टी मशीन से काटते हुए

स्टेप बाई स्टेप वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सरफेस बेड विधि

स्टेप बाई स्टेप वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सरफेस बेड विधि

वर्मीकल्चर की प्रत्येक क्रिया के पश्चात् नमी का आंकलन कर जरूरत के अनुसार बेड में पानी छिडकना चाहिए। बेड में उचित परिस्थितियां होने पर केचुएं अपने आप सारी बेड में चारों तरफ समान रूप से फैल जायेंगे। अधिकतर केचुएं सतह के नीचे 2 इंच गहराई तक रहते हैं और यहीं सबसे पहले आहार खाकर सतह पर कास्टिंग गिराते हैं। इस प्रकार बनाई गई एक बेड जिसकी लम्बाई 10 फुट हो तो उसमें औसत 400–500 किलो कचरा आ सकता है। केचुएं के कचरा खाने की औसत दर के आधार पर इतने कचरे के लिए करीब 5000 केचुएं होने चाहिए। बेड की लम्बाई अधिक होने पर इसी अनुपात में केचुओं की संख्या रखनी होगी।
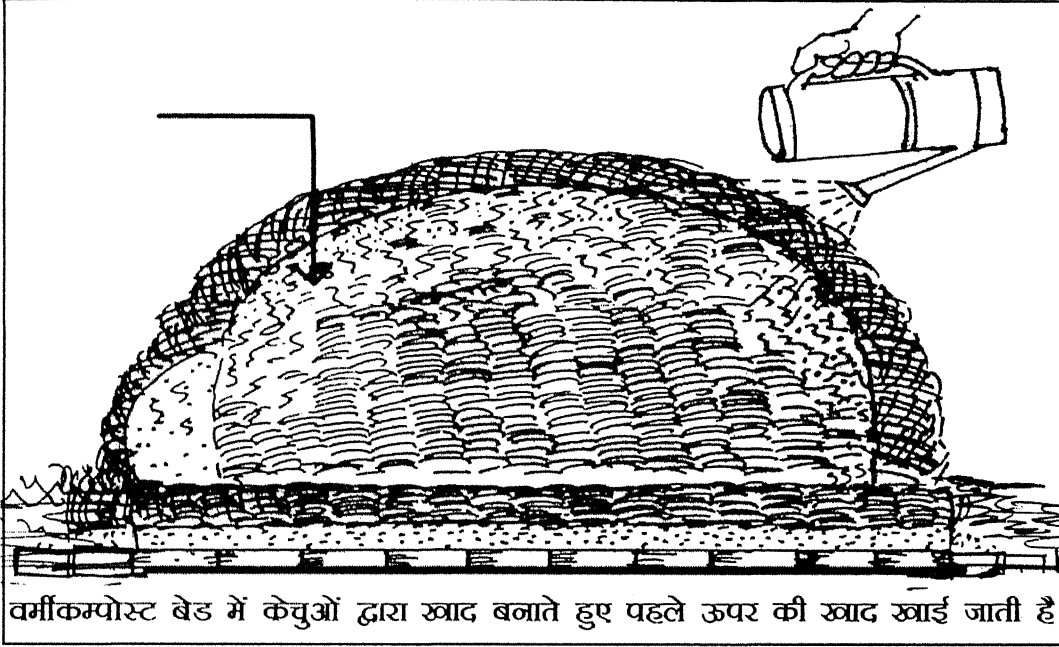
वर्मीकम्पोस्ट बेड में केचुओं द्वारा खाद बनाते हुए पहले ऊपर की खाद खाई जाती है

केचुओं का जैव–विज्ञान एवं उस पर आधारित कार्य प्रणाली कुछ इस प्रकार की है कि बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के केचुएं स्वयं कास्टिंग बनाने का कार्य कर सकते हैं। हमारी जिम्मेदारी तो सिर्फ उचित परिस्थितियों का निर्माण करने तक ही सीमित है। अतः दिन में एक बार कम से कम बेड को अंदर से पंजा लगाकर जरूर देखना चाहिये जिससे सभी परिस्थितियों की अनुकूलता (ताप, नमी एवं वायु प्रवाह) सुनिश्चित की जा सके। इस प्रकार बनाई गई बेड एवं उसमें छोड़े गये केचुएं डाले गये मिश्रण से निकलकर बेड में खाद बनाने की प्रक्रिया करते रहते हैं और साइड में डाले गये मिश्रण में यदि अंडे हों तो उनमें से केचुएं निकल कर बेड के अंदर चले जाते हैं। इस समय साइड का मिश्रण जो कि करीब–करीब वर्मीकास्टिंग बन चुकी है को वहां से भंडारण/उपयोग के लिए हटा लिया जाता है।
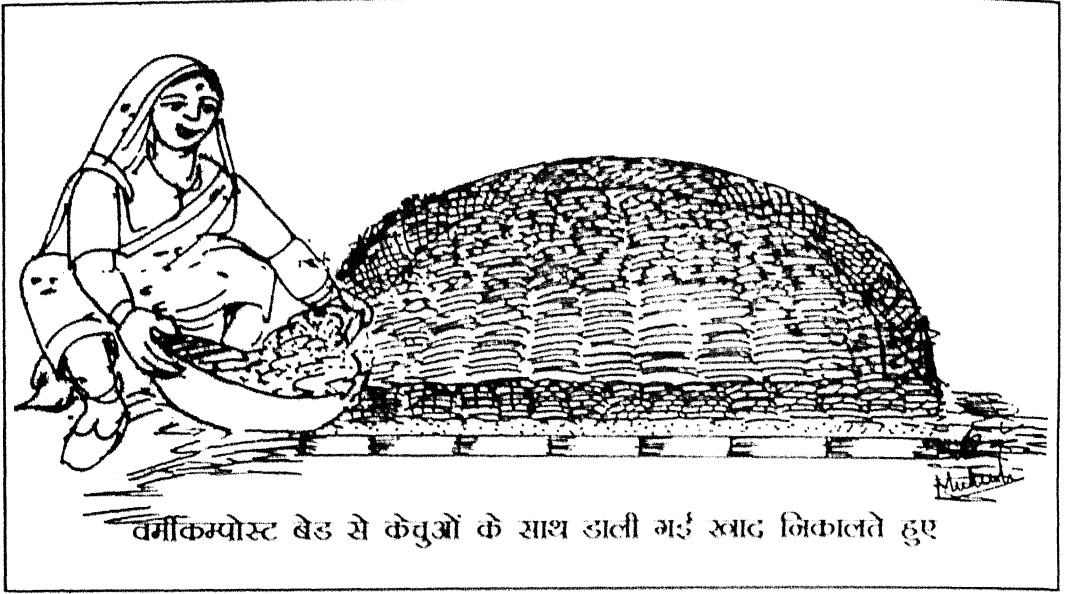
वर्मीकम्पोस्ट बेड से केचुओं के साथ डाली गई खाद निकालते हुए

बेड बनाने के करीब 25–30 दिन के अंदर यह देखेंगे कि उचित नमी, तापमान एवं वायु संचार के रहते ऊपर की सतह की करीब 3–4 ईंच मोटाई में पूर्णरूप से तैयार वर्मीकास्टिंग इकट्ठी हो गई है।इस स्थिति में बेड को ढकने के लिए डाले गये कचरे को ऊपर से हटाकर बनी हुई कास्टिंग को एक साईड में उतार दिया जाता है। बनी हुई खाद को उतारते समय केचुओं द्वारा रोशनी से डरकर अंदर चले जाने की प्रवृति इस कार्य को आसान बना देती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि शुरू में केचुए ऊपरी सतह पर दिखाई देते हैं लेकिन रोशनी होते ही अंदर चले जाते हैं। अतः 1–2 ईंच की 2–3 परतों में बनी हुई खाद एक साइड में आसानी से उतार ली जाती है। यह पूरी प्रक्रिया 10 फुट लम्बी बेड में करीब आधे घंटे में सम्पन्न हो सकती है।
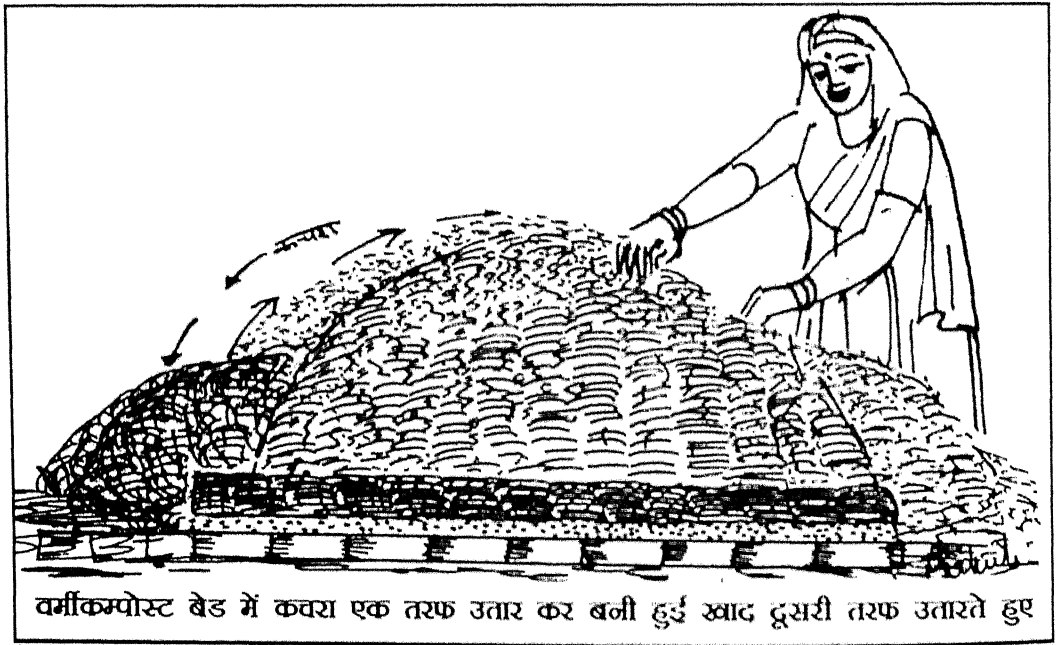
वर्मीकम्पोस्ट बेड में कचरा एक तरफ उतार कर बनी हुई खाद दूसरी तरफ उतारते हुए

बनी हुई खाद उतारने के बाद कच्ची खाद एवं केचुएं के मिश्रण में पंजे से कुरैरी लगाकर बारीक कचरे द्वारा उसे पुनः ढ़क देना चाहिए। इसके बाद पुनः नमी का आकंलन कर पानी छिडकते रहना चाहिए। पहली खाद की परत बनने में कुछ अधिक समय लगता है लेकिन उसके बाद की 4–6 ईंच मोटाई की परत लायक खाद बनने में 5–7 दिन तक का समय ही लगता है। हर रोज देखने पर खाद उतारने लायक स्थिति का आंकलन कर ऊपर बताये गये तरीके से खाद उतारी जानी चाहिए। सारी खाद को शुरू में जिस साइड में उतारा गया था उसी तरफ उतारना होगा। इस प्रकार करीब 80–85 प्रतिशत खाद करीब 45–50 दिन में उतारी जा सकती है।
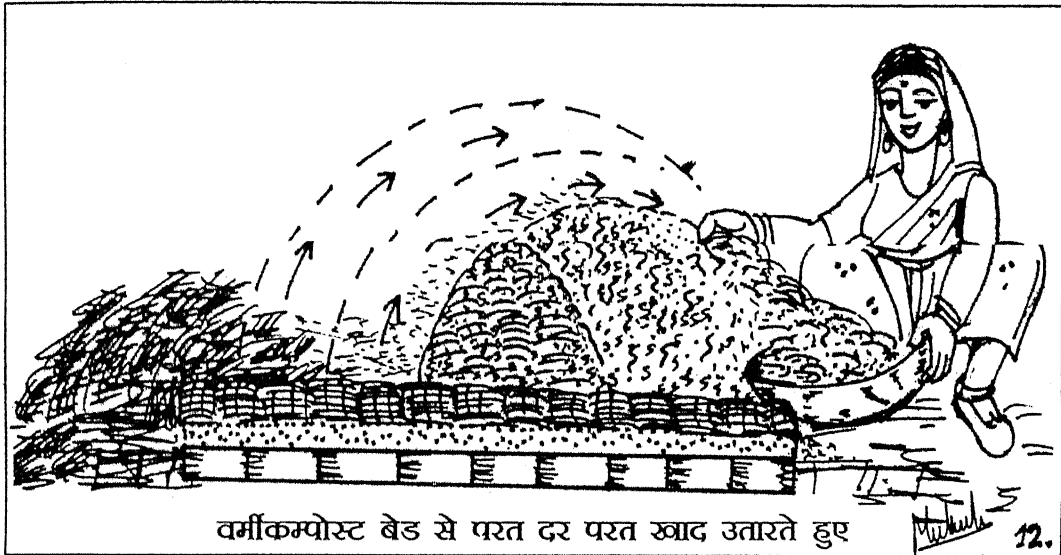
वर्मीकम्पोस्ट बेड से परत दर परत खाद उतारते हुए 12.

जब पूरी खाद बन जाये तो साइड की ढ़ेरी में से दुबारा परत दर परत खाद हटाकर भंडारण/उपयोग में ली जा सकती है। अन्त में थोड़ी सी खाद एवं सभी केचुएं अंडों सहित एक छोटी ढ़ेरी के रूप में रह जायेंगे।
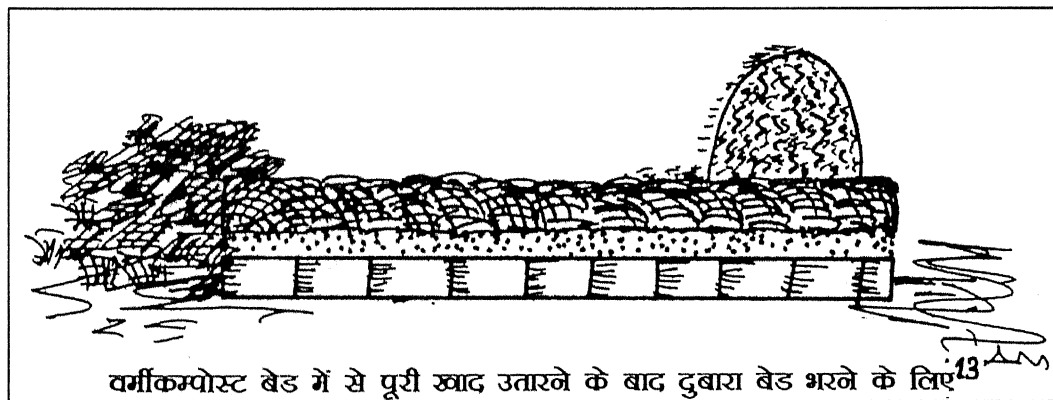
वर्मीकम्पोस्ट बेड में से पूरी खाद उतारने के बाद दुबारा बेड भरने के लिए 13

अब नीचे बिछे हुए कचरे को एक साइड में करके पुनः फर्श पर 4 अंगुली मोटाई में नया कचरा डालकर पहले बताये अनुसार पुनः कच्चा माल डालकर दूसरे चक्र के लिए बेड़ बनाई जा सकती है। इस बार जो कचरा पहले नीचे डाला था उसे अब ऊपर ढकने के काम में लिया जा सकता है और जो कचरा सबसे पहले चक्र में ऊपर डाला गया था उसका उपयोग वर्मीकास्टिंग के भंडारण वाले स्थान पर नीचे फर्श पर एवं ऊपर से ढकने के काम में लिया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट की बेड दुबारा भरकर कचरे से ढकते हुए

वर्मीकम्पोस्ट की छनाई :– बहुत छोटे स्तर पर बनाई गई वर्मीकम्पोस्ट को छानने की जरूरत नहीं होती है। लेकिन बड़े स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन में छनाई करना जरूरी है। इस कार्य के लिए लकड़ी के फ्रेम युक्त जाली के चालनों का उपयोग किया जाता है।
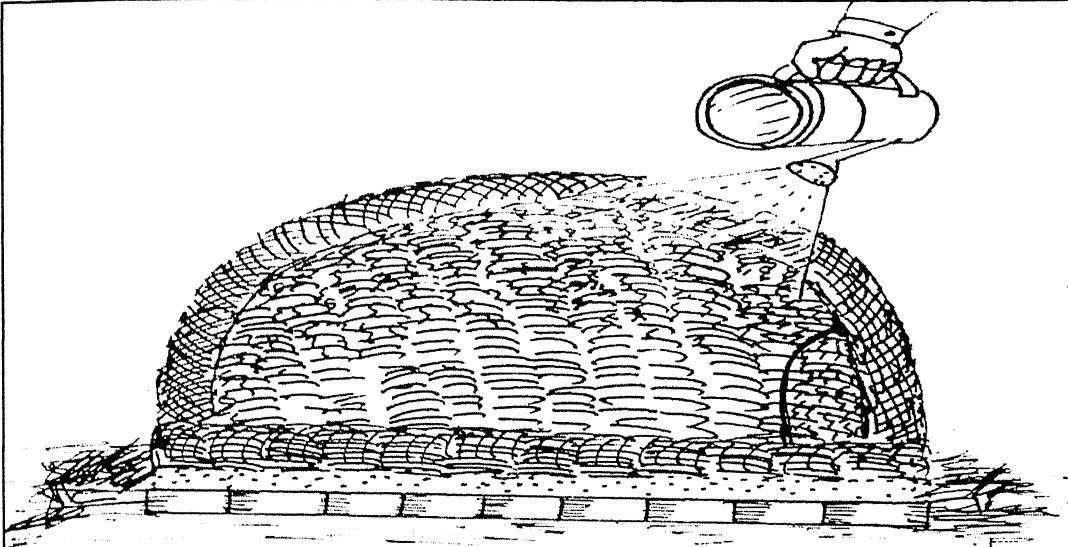
वर्मीकम्पोस्ट की दुबारा बनी हुई बेड पर पानी छिड़कते हुए
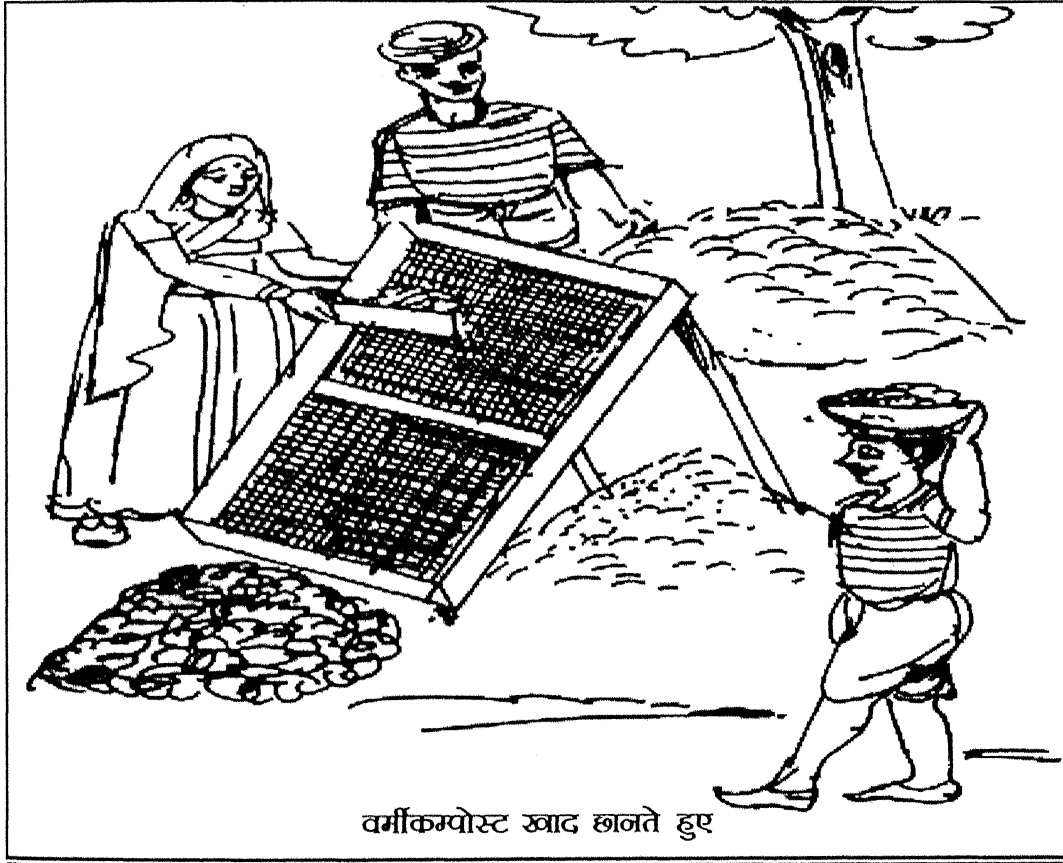
वर्मीकम्पोस्ट खाद छानते हुए

कुछ समय पहले मोरारका फाउण्डेशन द्वारा वर्मीकम्पोस्ट के छानने की एक मशीन भी विकसित की गई है। इस मशीन द्वारा कम लेबर से अधिक काम लिया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट खाद छानने की मशीन
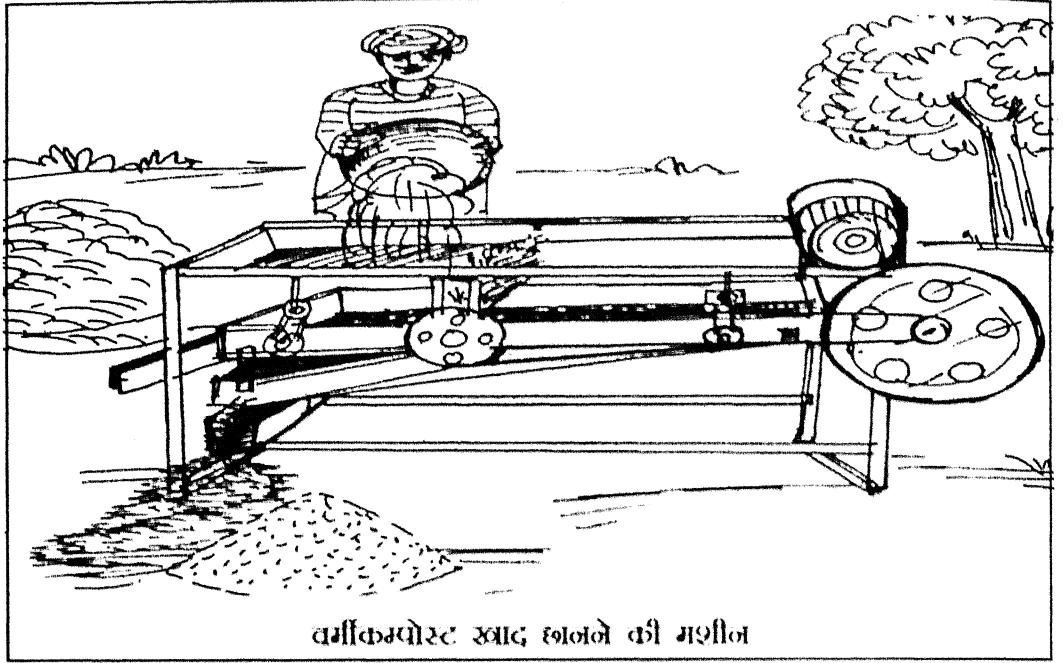
वर्मीकास्टिंग को बेचने के लिए पैकिंग करते समय इस प्रकार सील बंद किया जाये कि उसमें नमी सुरक्षित रहे। पहले से उसमें खाली जगह छोड़ी जाये ताकि उसमें हवा रह सके और सील की हुई थैलियों को ठंडे, छायादार स्थान पर रखा जाये।

वर्मीकम्पोस्ट खाद की तुलाई व पैकिंग
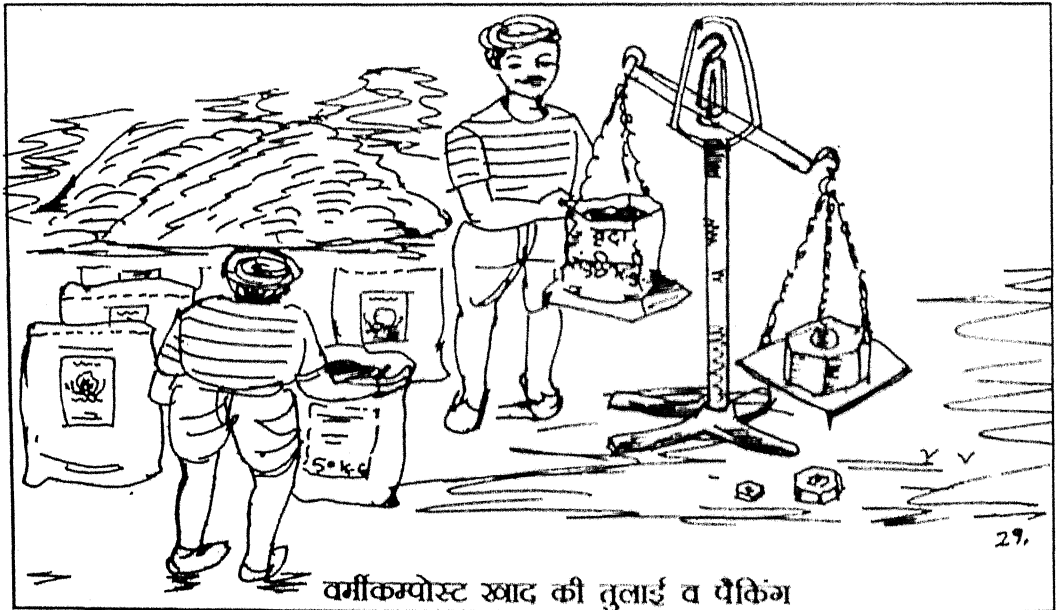
वर्मीकम्पोस्ट खाद का भंडारण

कई वर्षों के प्रयोग के पश्चात् हमने देखा है कि वर्मीकम्पोस्ट की एक किलो एवं पांच किलो की प्लास्टिक थैलियां उचित रहती हैं। हालांकि काले रंग की थैली में रखी हुई वर्मीकास्टिंग की गुणवत्ता में अधिक बढ़ोतरी होती है लेकिन खरीदने वाले ग्राहक की वर्मीकास्टिंग देखने की इच्छा के कारण पारदर्शी थैली का उपयोग किया जाना उचित होगा। छोटी थैलियों को सील करने के लिए किसी भी प्लास्टिक, थैली सील करने वाली मशीन का उपयोग किया जाता है जो कि बिजली से चलती है और उचित तापमान पर प्लास्टिक की दोनों तरफ की परतों को पिघलाकर सील कर देती है।
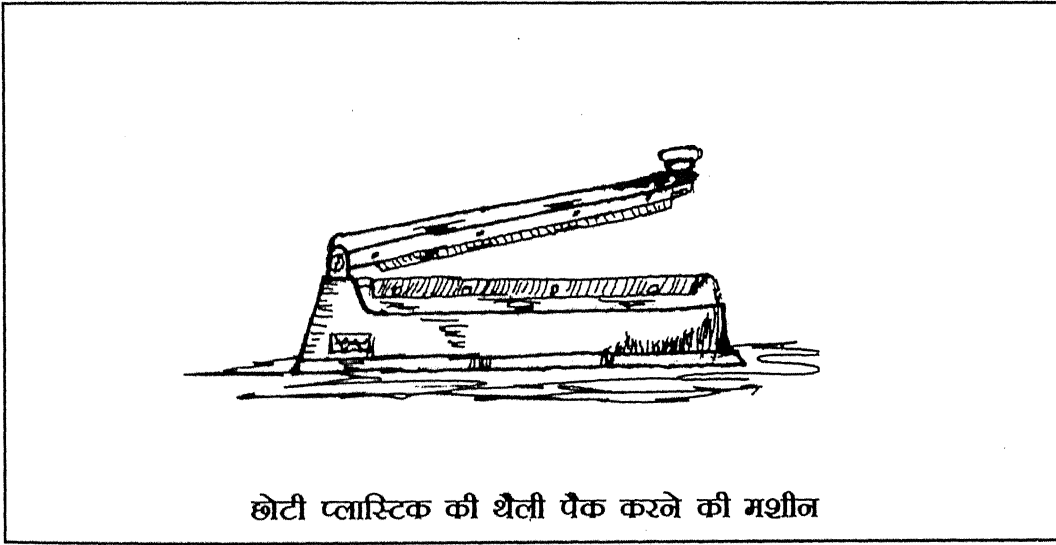
छोटी प्लास्टिक की थैली पैक करने की मशीन
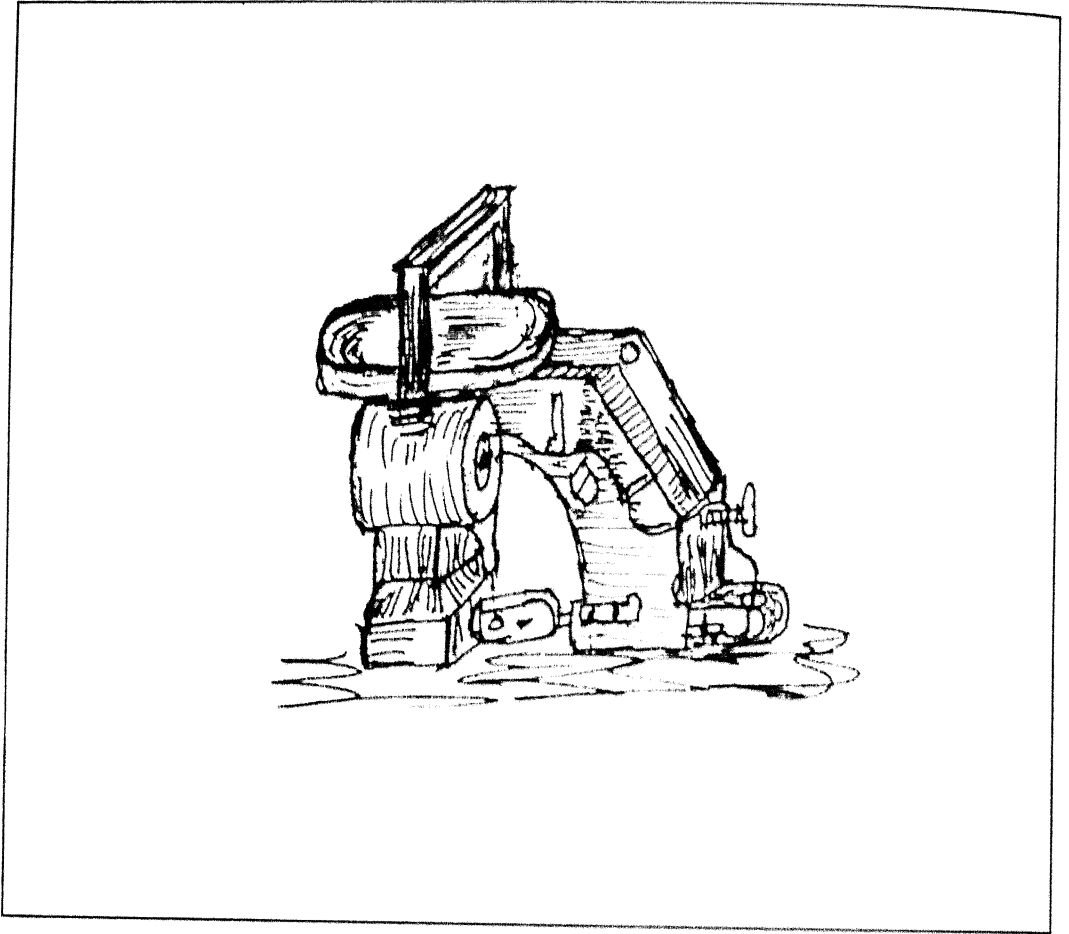
वर्मीकम्पोस्ट खाद के कट्टे सिलने की मशीन

बड़े कट्टों 40 व 50 किलो के लिए एच.डी.पी. के कट्टे उपयोग में लिए जाते है। इन कट्टों में अन्दर की तरफ फिल्म चढ़ी हुई होती है। इस फिल्म के कारण अन्दर की नमी कम नहीं होती। खाद की पैकिंग के समय 30–40 प्रतिशत नमी रखी जानी चाहिये। कट्टों की सिलाई के लिए भी मशीन बाजार में उपलब्ध है। 5 और 10 किलो की प्लास्टिक थैलियों एवं 40 और 50 किलो के कट्टे की पैकिंग अब तक सबसे उपयुक्त पाई गई है।

कई किसानों द्वारा बड़ी मात्रा में वर्मीकम्पोस्ट की मांग करने पर सीधे ट्रेक्टर ट्राली या ट्रक में भरकर भी वर्मीकम्पोस्ट भेजी जा सकती है। जिस ट्रॉली में 1.5 से 2.0 टन गोबर आता है, उसी ट्रॉली में 1200–1500 किलो तक वर्मी कम्पोस्ट आ सकती है।

स्टेप–बाई–स्टेप वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सरफेस बेड विधि

अभ्यास 6

1. क्या आप अपने क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट के वाणिज्यिक उत्पादन की संभावना के बारे में जानते हैं? अपने विचार लिखें। ....

....

....

....

....

....

....

2. क्या आप स्वयं वर्मीकम्पोस्ट का वाणिज्यिक उत्पादन करना चाहेंगे? हाँ/नहीं, क्यों?

....

....

....

....

....

3. क्या आप वर्मीकम्पोस्ट खाद उत्पादन की बताई गई विधि मे कोई परिवर्तन करना चाहेंगे? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो सिलसिलेवार लिखें। ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

मोड्यूल – 7
वर्मी कल्चर–कम्पोस्ट की क्वालिटी

यूनिट 7.1 वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी

यूनिट 7.2 वर्मीकम्पोस्ट के रसायनिक गुण

यूनिट 7.3 वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण

यूनिट 7.1 वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी

सदियों से सारी दुनिया में कम्पोस्ट खाद बनाई जा रही है। विभिन्न प्रकार की विधियों एवं कच्चे माल के उपयोग से बनाई जाने वाली कम्पोस्ट के रंग रूप में फर्क होता है। किसानों द्वारा किसी भी प्रकार की कम्पोस्ट बनाने के लिए काम में लिए गये कच्चे माल, बनाने की प्रक्रिया एवं कम्पोस्ट बनने के बाद उसके दिखने वाले रंग, रूप एवं उसके परिणामों के अनुभव के आधार पर कम्पोस्ट की गुणवत्ता का आंकलन कर लिया जाता है। विकसित देशों में शायद कुछ किसान कम्पोस्ट का रासायनिक विश्लेषण कराकर इसकी गुणवत्ता का आंकलन करते होंगे। भारत में तो शायद कुछ कृषि विज्ञान एवं अनुसंधान केन्द्रों को छोड़कर कहीं भी कम्पोस्ट के रासायनिक विश्लेषण की ना तो कोई प्रक्रिया बनाई गई है और ना ही इसके लिए कोई सुविधाएं उपलब्ध हैं। किसानों के स्तर पर कम्पोस्ट के रासायनिक विश्लेषण द्वारा गुणवत्ता की जांच किया जाना तो कल्पना से भी बाहर है। इसलिए यहां वर्मीकम्पोस्ट के भौतिक गुणों के आधार पर ही गुणवत्ता की प्रारम्भिक जांच का विवरण दिया गया है।

नोट: देशी खाद/कम्पोस्ट इत्यादि की गुणवत्ता जांच के मानक नहीं बनाए गए हैं। गत दिनों बी.आई.एस. विभाग से सम्पर्क करने पर यह जानकारी मिली है कि अब विभाग ने इस दिशा में कुछ शुरूआत की है। वर्मीकम्पोस्ट के सही मायने में कामयाब होने के लिये उसके सर्वमान्य मानक होना बहुत जरूरी है। इन मानकों के होने से उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को ही सुविधा होगी। ठीक इसी प्रकार वर्मीकास्ट/कम्पोस्ट को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के लिये आई. टी.सी. कोड भी नहीं है। हमारा मानना है कि वर्मीकम्पोस्ट का आई.टी.सी. कोड मिलने पर इसका हमारे देश से बड़ी मात्रा में निर्यात भी किया जा सकेगा।

वर्मीकम्पोस्ट चाहे किसी भी प्रकार के (उपयुक्त) कच्चे माल से बनाई जाये, बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट के भौतिक गुणों में कोई बहुत बड़ा अंतर दिखाई नहीं देता। यह इस बात का भी द्योतक है कि प्राकृतिक/नैसर्गिक रूप से केंचुएं के शरीर में की जाने वाली क्रिया-प्रक्रिया हर समय समान रहती है।

बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट हमेशा छोटे-छोटे दानेदार पदार्थ के रूप में होती है। केंचुएं द्वारा चाहे कितनी भी लम्बाई की कास्टिंग क्यों ना गिराई जाये वह थोड़ी सी नमी कम होने पर बारीक, काले भूरे रंग के दाने एवं बीच-बीच में बहुत छोटे सफेद दानों के रूप में दिखाई देती है। 30 प्रतिशत नमी पर वर्मीकम्पोस्ट का हर दाना अलग बिखर जाता है। अन्य प्रकार से तैयार कम्पोस्ट में यह गुण नहीं होता। वर्मीकम्पोस्ट के हर दाने का आकार एवं नाप समान होता है।

बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट को उपयोग करने तक लगातार 30 प्रतिशत नमी पर रखना चाहिए। इस नमी पर खाद का तापमान लगातार 15–25 डिग्री तक रखा जा सकता है। इस तापमान पर वर्मीकम्पोस्ट में उपस्थित अधिकतर सूक्ष्मजीवाणु क्रियाशील बने रहते हैं। पूर्णतया सूखी हुई कम्पोस्ट बजरी/कूडा–माटी की तरह दिखाई देती है। 30 प्रतिशत नमी का आंकलन पहले बताये गये तरीकों से किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के काम में आने वाले किसी भी कच्चे माल में चाहे जितनी भी गंध क्यों ना हो वर्मीकम्पोस्ट बनने के बाद इसमें किसी भी प्रकार की बदबू नही रहती है। बेड से निकालते समय वर्मीकम्पोस्ट को हाथ में लेकर सूंघने पर उसमें से वर्षा के दिनों में गीली मिट्टी के जैसी सोंधी खूशबू आती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया में जिस प्रकार कच्चे माल का प्रारम्भिक सड़ाव किया जाता है एवं जब केचुएं द्वारा खाया जाता है तो उसके पेट से गुजरने के बाद वह इतना पिस जाता है कि कच्चे माल में उपस्थित किसी भी प्रकार के खरपतवार के बीज का नामोनिशान भी नहीं रहता । इसलिए वर्मीकम्पोस्ट के लगातार उपयोग से खेती में खरपतवार की समस्या पर शीघ्र नियंत्रण हो जाता है।

वर्मीकम्पोस्ट के प्रत्येक कण पर केचुएं के शरीर से निकले म्यूकस का आवरण होता है। यह म्यूकस आवरण खाद के कणों को विद्युत आवेश प्रदान करता है। इसकी वजह से स्वयं खाद एवं उसके खेत में उपयोग करने के बाद हवा के आवागमन एवं जलसंधारण की क्षमता में कई गुणा वृद्धि हो जाती है। कई प्रयोगों में पाया गया कि सूखे कचरे, सूखे गोबर एवं अन्य किसी प्रकार के पदार्थों की तुलना में सूखी हुई वर्मीकम्पोस्ट 8–10 गुना अधिक नमी ग्रहण कर सकती है। इसके अलावा इन पदार्थों को जब खुले स्थान पर पुनः सुखाया गया तो भी अन्य पदार्थों की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट के सूखने में 5–15 दिन अधिक लगते हैं। बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट की बेड में हाथ डालने पर बहुत मुलायम अहसास होता है। ठीक इसी प्रकार बेड में से निकाली हुई वर्मीकम्पोस्ट (30 प्रतिशत नमी पर) को जब हाथ में लिया जाये तब भी किसी प्रकार के वजन का आभास नहीं होता।

वर्मीकम्पोस्ट के भौतिक गुण

- वर्मीकम्पोस्ट दानेदार गहरे भूरे/काले रंग का मुलायम ह्युमस पदार्थ है। यह बदबू, खरपतवार एवं हानिकारक जीवाणु रहित है।
- वर्मीकम्पोस्ट में विद्युत आवेशित कण होते हैं जो पौधों को मृदा से पोषक तत्व लेने में मदद करते हैं तथा इसकी गुणात्मकता गोबर की खांद के मुकाबले ८–१० गुणा ज्यादा होती है।
- खाद के कणों पर म्युकस जैसा पदार्थ लिपटा हुआ होने की वजह से यह मृदा में हवा का आवागमन एवं जलसंधारण क्षमता बढ़ाती है तथा भारी मिट्टियों में जल निकास सुधार करती है।
- खाद में काफी नमी (पेकिंग के समय २० से ३० प्रतिशत नमी) होने की वजह से इसमें सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होने की गति बढ़ जाती है।

यूनिट 7.2 वर्मीकम्पोस्ट के रसायनिक गुण

गत् 100 वर्षों में कृषि वैज्ञानिकों ने कृषि विज्ञान के क्षेत्र में तो बहुत प्रगति कर ली लेकिन कृषि से जुड़े रसायन विज्ञान में आज भी आसानी से समझ में आने वाला ज्ञान साहित्य सुलभ नहीं है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण कृषि जगत में एन.पी.के., पी.एच. इत्यादि को छोड़कर कुछ अधिक ना तो सोचा जा सका है और ना ही जमीनी धरातल पर कोई चर्चा की जा रही है।

मोरारका फाउण्डेशन के वैज्ञानिक गत् कई वर्षों से खेती से सबंधित रसायन विज्ञान के बारे में जानने को उत्सुक रहे हैं। इस विषय में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों की तुलना में कृषि की फूड प्रोसेसिंग के क्षेत्र में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों द्वारा अधिक प्रगति की गई है।

एक अध्ययन के मुताबिक अकेले अलफान्सो आम में खुशबू देने वाले रसायनों का जब विश्लेषण किया गया तब 28 अलग अलग रसायनों की पहचान की जा सकी। विश्लेषण करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि अभी तो इससे भी कई गुणा अधिक रसायनों की पहचान की जानी बाकी है। इस प्रकार का विश्लेषण करने के लिये बहुत एडवांस प्रयोगशाला की जरूरत होती है।

वर्मीकम्पोस्ट की रसायनिक जांच से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तकरीबन् सभी प्रकार की फसलों के लिये आवश्यक सभी रसायन इस खाद में मौजूद हैं। इन रसायनों को पोषक तत्व भी कहा जाता है। आम बोलचाल की भाषा में प्रमुख पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश हैं। इसके पश्चात् सल्फर, आयरन, मैगनीज, जिंक तथा कॉपर को सूक्ष्म पोषक तत्व तथा अति सूक्ष्म तत्वों में मोलिब्डेनम, बोरोन इत्यादि कहे जाते हैं।

हमारे देश में करीब पचास प्रतिशत से अधिक जमीनें नाइट्रोजन की कमी वाली है। इन जमीनों में नाइट्रोजन की उपलब्धता 280 किलो से कम है। मध्यम श्रेणी की जमीनों में नाइट्रोजन की मात्रा 280 से 560 कि. ग्रा. तक तथा इससे अधिक होने पर उच्च नाइट्रोजन मानी जाती है।जमीन में सबसे अधिक नाइट्रोजन धरातल के पास तकरीबन् 0.05 प्रतिशत तक, 6 इंच से 12 इंच तक 0.04 प्रतिशत तथा इसके नीचे 0.03 प्रतिशत तक पाई जाती है।

धरती में नाइट्रोजन का प्रमुख स्त्रोत जैव पदार्थ होते हैं, जो कि जीवाणुओं के द्वारा नाइट्रोजन को घुलनशील अवस्था में ले आते हैं। अधिक तापमान होने पर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और नाइट्रोजन भी कम हो जाती है।

तालिका 13

विभिन्न फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों का ह्रास

फसल	उत्पादन (क्विंटल/हैक्टेयर)	पोषक तत्वों का ह्रास (किलो/हैक्टेयर)		
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
सरसों	6.8	22	11	28
अलसी	10.2	20	13	32
अरहर	15	45	18	15
ज्वार	18	56	15	147
बाजरा	11	36	22	66
मूंगफली	19	78	20	45
गेहूं	16	56	24	68
कपास	4.5	68	34	68
तम्बाकू	147	95	67	19
शलजम	1250	97	11	81
जौ	74	54	29	125
प्याज	950	90	18	150
केला	3000	60	20	200
गाजर	300	95	40	150
मक्का	40	110	50	150
पत्ता गोभी	700	120	18	200
मिर्च	—	160	30	160
आलू	325	110	56	210
मूली	400	250	60	90
चुकन्दर	600	150	60	190
धान	80	90	85	325
जूट	16	280	123	245
गन्ना	1218	140	105	410

तालिका 14

विभिन्न फसलों द्वारा भूमि से सूक्ष्म पोषक तत्वों का ह्रास

फसल	उपज (क्विंटल/हैक्टेयर)	अणु पोषक तत्व (ग्राम/हैक्टेयर)			
		तांबा	मैग्नीज	मोलिबिडनम	जस्ता
गेहूँ	28	20	161	0.10	148
भूसा	38	20	292	0.50	158
जौ	25	22	96	0.42	91
भूसा	22	22	180	0.35	103
आलू	200	44	42	42	99

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की पूरी प्रक्रिया में सबसे पहले कचरे के मिश्रण में ही नाइट्रोजन की उपलब्धता के आधार पर विभिन्न पदार्थों को मिला कर केंचुओं को खिलाया जाता है। वर्मीकम्पोस्ट बनने के दौरान एवं इसके पश्चात लगातार चलने वाली जीवाणुओं की गतिविधि के कारण वर्मीकम्पोस्ट में नाइट्रोजन की मात्रा शुरूआत में 1.5 से 2.0 प्रतिशत तथा बाद में 3.0 प्रतिशत तक आंकी गई है। खेत में आवश्यक पोषक तत्वों की गणना करते समय सबसे पहले उपयोग में 2.5 प्रतिशत आधार पर वर्मी कम्पोस्ट काम में ली जानी चाहिये। वर्मीकम्पोस्ट के साथ थोड़ी मात्रा में एफ.वाई.एम (देशी खाद) काम में लेने पर नाइट्रोजन की उपलब्धता 4–5 प्रतिशत तक हो जाती है। लगातार उसी खेत में वर्मीकम्पोस्ट काम में लेने पर दूसरी बार नाइट्रोजन की गणना 3–4 प्रतिशत तथा तीसरी बार 5–6 प्रतिशत तक की जा सकती है। इसलिये जिन जगहों पर अत्यधिक रसायनों का उपयोग किया जा रहा है वहां पहली बार नाइट्रोजन के आधार पर निकाली गई वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा को दूसरी एवं तीसरी बार समान रखने से भी रसायनिक उर्वरक की मात्रा में हर बार एक तिहाई की कमी की जाकर रसायनों का उपयोग शून्य स्तर पर लाया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार की फसलों द्वारा भी नाइट्रोजन का उपयोग अलग अलग मात्रा में किया जाता है। सबसे कम नाइट्रोजन का उपयोग सब्जियों, मसाले एवं रेशे वाली फसलों, उससे अधिक अनाज, तिलहन एवं दलहन वाली फसलों एवं सबसे अधिक बागवानी की फसलों में किया जाता है। अतः वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग में भी इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर ही मात्रा का निर्धारण किया जाना चाहिये।

फास्फोरस की उपलब्धता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि कुछ क्षेत्रों को छोड़कर करीब सभी जगहों पर फास्फोरस की कमी पाई जाती है। वर्मीकम्पोस्ट में फास्फोरस की मात्रा करीब नाइट्रोजन के अनुपात में ही रहती है। आमतौर पर पाये जाने वाले कच्चे माल में फास्फोरस की मात्रा नाइट्रोजन से कम होती है लेकिन वर्मीकम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया के दौरान जीवाणुओं द्वारा इस कमी को पूरा कर लिया जाता है। कुछ विशेष फसलों जैसे सब्जियों, बागवानी वाली फसलों इत्यादि में फास्फोरस की अधिक जरूरत होने के कारण यदि कुछ मात्रा में फास्फोरस का रसायन के रूप में उपयोग किया जाय तो वर्मीकम्पोस्ट की उपयोग में ली जाने वाली मात्रा में कमी की जा सकती है।

पोटाश की मात्रा करीब सभी जगहों पर समुचित पाई गई है। कुछ फसलों के लिये भूमि में उपलब्ध पोटाश पर्याप्त होता है लेकिन कुछ विशेष फसलों जैसे सब्जियों एवं बागवानी में पोटाश का उपयोग बहुत अधिक होता है। कई जगहों पर वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिये सब्जी मंडी का कचरा काम में लिया जा रहा है, ऐसे स्थानों पर बनाई जाने वाली वर्मीकम्पोस्ट में पोटाश की मात्रा 1–2 प्रतिशत तक अधिक पाई जाती है।

अणुपोषक तत्वों के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि चिकनी मिट्टी में आयरन की मात्रा 0.5 से 150 पी.पी.एम., मैंगनीज की 0.2 से 400 पी.पी.एम. तक, जिंक की 0.1 से 20 पी.पी.एम.तक तथा कॉपर की 0.04 से 10 पी.पी.एम. तक पाई जाती है। दोमट तथा रेतीली जमीन में इन तत्वों की मात्रा कम होती है। जमीन में अणुपोषक तत्वों का प्रमुख स्त्रोत ओर्गेनिक कार्बन ही होता है। वर्ष में एक फसल लेने वाले मोनोक्रोपिंग क्षेत्रों में ओर्गेनिक कार्बन कम होता है। वर्मीकम्पोस्ट चूंकि विभिन्न प्रकार के कच्चे माल के मिश्रण से बनाई जाती है अतः इससे सभी अणुपोषक तत्व उचित मात्रा में मिल जाते हैं। प्रमुखतया सल्फर एवं जिंक की कमी वाले क्षेत्रों के लिये शुगर मिल के अपशिष्ट पदार्थों का इस्तेमाल करने से बनने वाली वर्मीकम्पोस्ट में इन दोनों तत्वों की भी बहुतायत हो जाती है।

इंटेंसिव क्रोपिंग (लगातार एक के बाद एक फसल) वाले सिस्टम में सूक्ष्म तत्वों का अधिक उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार अधिक बायोमास वाली फसलों में भी सूक्ष्म तत्वों का अधिक उपयोग किया जाता हैं। इस प्रकार की कृषि स्थिति वाले खेतों के लिये वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बहुत ही लाभप्रद देखा गया है। चारे वाली फसलों में मात्र तीन पोषक तत्वों के अलावा बहुत बड़ी मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व भी उपयोग में लिये जाते हैं। इन फसलों में भी वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्व इस जरूरत को पूरा करने में सक्षम हैं।

रासायनिक विश्लेषण के संदर्भ में वर्मीकल्चर के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिये उनके क्षेत्र में एक बड़ी समस्या, रासायनिक विश्लेषण की सुविधाओं की है। आमतौर पर मिट्टी की जांच करने वाली प्रयोगशालाओं में वर्मीकम्पोस्ट की जांच के परिणामों में कई विसंगतियाँ रहती हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के रासायनिक गुण

- पी. एच. : 7.0 से 7.5
- कार्बन:नाईट्रोजन अनुपात : 12–15:1
- नाईट्रोजन : 1.75–2.5 प्रतिशत (रासायनिक जांच के अनुसार) तथा 5–6 प्रतिशत (फसलों पर देखे गये प्रभावानुसार)
- प्राप्त फास्फोरस : 1.5–2.25 प्रतिशत (रासायनिक जांच के अनुसार) तथा 4–5 प्रतिशत (फसलों पर देखे गये प्रभावानुसार)
- पोटेशियम : 1.25–2.0 प्रतिशत (रासायनिक जांच के अनुसार) तथा 2–3 प्रतिशत (फसलों पर देखे गये प्रभावानुसार)
- केलशियम, मैगनिशियम एवं सल्फर : 3–5 गुणा (गोबर की खाद से बेहतर)
- आयरन, जिंक, मेन्गेनीज एवं कॉपर : 200–700 पी.पी.एम
- कोबाल्ट, मोलबिडेनम एवं बोरोन : पर्याप्त मात्रा में घुलनशील अवस्था में उपलब्ध

यूनिट 7.3 वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण

वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुणों का विश्लेषण एवं उसके आधार पर वर्मीकम्पोस्ट के गुणों की जांच की चर्चा करने से पहले पाठक का ध्यान कुछ महत्वपूर्ण नैसर्गिक क्रियाओं की तरफ आकर्षित करना होगा।

कहने को तो वैदिक काल से ही भारत में विज्ञान इतना विकसित हो चुका था कि आज उस समय घटने वाली घटनाओं के बारे में कथा साहित्य के रूप में जब सुनते हैं तो वह मात्र कोरी कल्पना जैसा प्रतीत होता है। सच क्या है यह आज भी कोई नहीं जानता। लेकिन गत् 200 सालों में और उसमें से भी विशेषतः गत् 20–30 वर्षों में जैव विज्ञान ने जितनी तरक्की की है उसमें से अधिकतर कल्पना मात्र ही दिखाई देती है। लेकिन चूंकि उनके प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हैं और अपनी समझ के आधार पर हम इन्हें सच ना मानते हुए भी इनको स्वीकार करने के लिए विवश हैं।

एक तरफ जैव विज्ञान के क्षेत्र में क्लोनिंग, जैनेटिक इंजिनियरिंग इत्यादि के माध्यम से पेड़ पौधे तो क्या पशुओं एवं इंसानों के मूलभूत स्वरूप में परिवर्तन करने में विज्ञान ने सफलता प्राप्त कर ली है। लेकिन दूसरी तरफ कृषि के क्षेत्र में अभी भी प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले पेड़–पौधों, फसलों एवं वनस्पतियों के जैव विज्ञान की बहुत कम जानकारियां उपलब्ध हैं।

इससे पहले वाले अध्याय में लिखा गया है कि आम के सिर्फ एक गुण के लिए किस प्रकार 100 से अधिक रसायन जिम्मेदार हैं। क्या उपभोग में आने वाली प्रत्येक पैदावार के बारे में इतना ही ज्ञान है, शायद नहीं! बहुत लम्बे समय तक सम्पूर्ण विज्ञान जगत में नैसर्गिक रूप में पैदा होने वाले भोजन पदार्थों के उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के क्षेत्र में व्यापक शोध की गई, लेकिन भोजन पदार्थों की गुणवत्ता बढ़ाये जाने के लिए कुछ अधिक नहीं किया जा सका है।

उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए किये गये शोध के परिणामस्वरूप जिस प्रकार की तकनीकों का अब तक विकास किया गया है उनमें से लगभग सभी के दुष्परिणाम भी दिखाई देने लगे हैं। इंसान की भूख मिटाने के नाम पर विज्ञान के वर्तमान स्वरूप ने सम्पूर्ण मानव जाति को प्रभावित किया है।

वैज्ञानिकों ने रासायनिक उर्वरकों का विकास किया, लेकिन रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से जमीन, मिट्टी, वनस्पति, पैदावार की गुणवत्ता, उनका उपयोग करने वाले पशु–पक्षी, इंसान आदि में किस प्रकार के प्रभाव होंगे, इसका कोई आंकलन रसायनिक उर्वरकों की खोज करते समय नहीं किया गया। यह बात आज संकर बीज, पेस्टीसाइड्स और कुछ समय पहले विकसित जैनेटिकली (आनुवांशिक रूप से) परिवर्तित फसलों के लिए भी कही जा सकती है। वैज्ञानिकों ने अब तक अपनी खोज द्वारा मिलने वाले एक पहलू–फायदों के बारे में तो अवश्य बढ़ा चढ़ाकर बताया, लेकिन दूसरे पहलू – नुकसान के बारे में मौन धारण कर लिया।

वर्तमान में भी बढ़ती हुई आबादी के संदर्भ में भोजन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नई खोज के नाम पर अधिक कीमत वाले बीज, खाद एवं दवाओं के उपयोग की सलाह दी जा रही है। सिंचित खेती के नाम पर आज जिस प्रकार की खेती की जा रही है उससे किसानों को अपने उत्पादन की पूरी लागत भी नहीं मिल रही है।

राजस्थान में सबसे पहले कृषि के क्षेत्र में नहरी पानी की सुविधा और सिंचित खेती के विकास का काम हुआ। इससे पैदावार खूब बढ़ी लेकिन मात्र 40 वर्षों में हजारों–लाखों हेक्टेयर जमीन दलदली होकर बर्बाद हो गई, जिसका आज तक कोई इलाज नहीं ढूंढा जा सका है।

हरित क्रांति के दौर में व्यापक पैमाने पर खेती में उत्पादन बढ़ाने के लिए बिज़ली की सुविधा का प्रचार प्रसार किया गया। कई वर्षों तक सस्ती बिजली (लागत से कम मूल्य पर), सब्सिडी पर खाद एवं बीज के उपयोग से रेगिस्तानी जिलों में भी सिंचित फसलें पैदा होने लगी। लेकिन आज यदि बिजली की वास्तविक लागत ली जाये और खाद, बीज की सब्सिडी हटा दी जाये तो इन सिंचित फसलों (गेहूं) की लागत ही 10 रूपये प्रति किलो से अधिक आयेगी।

ये कुछ इस प्रकार के प्रश्न हैं जो खेती के नये तौर तरीकों के बारे में सोचने के लिए विवश कर देते हैं। इन्हीं प्रश्नों के हल खोजने की दिशा में जब विचार करना शुरू किया जाय तब पाया जाता है कि हजारों वर्षों तक मानव सभ्यता ने जिस प्रकार की खेती की थी उसमें किसान को फसल पैदा करने के लिए कुछ भी खरीदने की जरूरत नहीं पडती थी। आज फसल पैदा करने की कुल लागत का 80 प्रतिशत भाग खरीदी हुई वस्तुओं के खर्च में जा रहा है। जब मानव सभ्यता हजारों सालों तक नैसर्गिक क्रिया–प्रक्रियाओं के भरोसे अपनी सभी आवश्यकताएं पूरी करती रही तो क्या आज फिर से ऐसा करना संभव नहीं हो सकता।

मोरारका फाउण्डेशन ने इन विचारों के आधार पर 25,000 हैक्टेयर क्षेत्र के 10,000 किसान परिवारों के साथ राजस्थान के रेगिस्तानी जिलों में से एक झुंझनू जिले में इस दिशा में व्यापक शोध कार्य किये। मात्र 5 वर्षों में संस्था के वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंच चुके है कि किसानों द्वारा आज अगर शून्य लागत संभव ना भी हो तो भी लागत में 80 प्रतिशत तक की कमी करना संभव है। खेती की भरपूर पैदावार के लिये किसानों को बाहर से बीज, खाद और दवाईयां खरीदने की जरूरत नहीं है। फसल पैदा करने की प्रक्रिया में हानिकारक जीवाणुओं एवं खरपतवार का नैसर्गिक तरीकों से नियंत्रण किया जा सकता है।

वर्मीकल्चर/बर्मीकम्पोस्ट का ज्ञान इसी प्रयोग के दौरान प्राप्त हुआ। जैसाकि पहले लिखा जा चुका है कि वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग में रासायनिक विश्लेषण का कोई ठोस आधार नहीं है, तब हमारा ध्यान वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुणों की तरफ गया। आज यह बात बहुत आसानी से समझ में आ रही है कि यदि किसी भी फसल के लिए हजारों प्रकार के रसायन एवं उनकी क्रियाएं जिम्मेदार हैं तो यह जीवाणुओं द्वारा भूमि को सजीव बनाए जाने पर ही हो सकता है। यहीं से खेती में जैव विज्ञान की इस खोज का अभियान प्रारम्भ हो गया। हालांकि मोरारका फाउण्डेशन में अपने स्वयं के कोई जैव विज्ञानी नहीं है लेकिन 10000 किसान परिवारों के साथ काम करने के अनुभव ने इस विषय की शोध में अपना भरपूर योगदान दिया है।

एक पुरानी कहावत के अनुसार कहा जाता है कि मिट्टी के कण–कण में जीवन है। और इसके आगे यह भी कहा जाता है कि पृथ्वी पर चौरासी लाख तरह के जीव हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार इनमें से यदि मात्र एक प्रतिशत जीव भी धरती पर वनस्पति के विकास के लिए उत्तरदायी हैं, तो 84,000 जीव खेती के कार्य के लिए उपलब्ध हैं, और शायद इन 84,000 जीवों द्वारा ही लाखों तरह की क्रियाएं की जाती हैं जिनमें से कुछ हजार तरह के रसायनिक पदार्थों के मिश्रण से किसी एक प्रकार के पौधे एवं उसकी उपज की प्राप्ति होती है।

हर जीव अपने जीवन काल में एक निश्चित व्यवहार के लिए जिम्मेदार होता है और बिना बाहरी हस्तक्षेप के अपना कार्य करता रहता है। इसी कारण हजारों वर्षों तक मानव सभ्यता खेती द्वारा इन जीवों की बदौलत अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन का उत्पादन करने में सफल रही।

आज कई विकसित देशो में लम्बे समय तक आधुनिक खेती करने के पश्चात् हजारों किसानों द्वारा फिर से प्राकृतिक खेती के तरीकों को अपनाया जाने लगा है। इन्टरनेट पर उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार आज विश्व के कम से कम 20 देश ऐसे हैं जहां लाखों एकड़ जमीन में सुनिश्चित वैज्ञानिक आधार पर प्राकृतिक खेती (जिसे ओर्गेनिक फार्मिंग भी कहा जाता है) की जा रही है।

आस्ट्रेलिया, जर्मनी एवं अमेरिका में इस क्षेत्र में बहुत तेजी से प्रगति की जा रही है। इनके अलावा भारत के पड़ौसी देश चीन में भी इस दिशा में बहुत बड़े स्तर पर प्रयास प्रारम्भ किये गये हैं। चीन की एक चाय बागान कम्पनी के विज्ञापन में कहा जा रहा है कि मात्र 3 वर्षों में उनके द्वारा पहले 100 रू प्रति किलो मूल्य की चाय के स्थान पर अब प्राकृतिक खेती द्वारा 1000 रू प्रति किलो मूल्य की चाय का उत्पादन किया जा रहा है। इस क्षेत्र में जिस तेजी से काम हो रहा है उसे समझने के लिए सिर्फ देखने वाली आंखों की जरूरत है। अमेरिका एवं यूरोप के कई देशों में रासायनों से त्रस्त उपभोक्ताओं के दबाव ने इन देशों की सरकारों को इस बात के लिए विवश कर दिया है कि प्राकृतिक खेती के मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण के नए नियम बनाये।

आज भी जिज्ञासु वैज्ञानिकों की सुविधा के लिये कोई जैव विज्ञान की प्रयोगशाला नहीं है, लेकिन उपलब्ध ज्ञान, अपने स्वयं के अनुभव एवं देश विदेश में किये जा रहे प्रयासों को देखते हुए यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि वर्मीकम्पोस्ट नैसर्गिक क्रियाओं को सम्बल प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कुछ जैव विज्ञान प्रयोगशालाओं के मुताबिक वर्मीकम्पोस्ट में 10 अरब से अधिक जीवाणु पाये जाते हैं। इनमें से अब तक एक्टिनोमाइसिटीज, फंजाई, ऐजेटोबेक्टर, राइजोबियम, फास्फेट सोल्युबिलाइजर, नाइट्रोबेक्टर जिनकी संख्या भी हजारों से लेकर करोड़ों में है, कि पहचान की गई है। ये सभी सूक्ष्मजीवाणु अपनी नैसर्गिक क्रियाओं द्वारा जमीन में उचित वातावरण मिलने पर मिट्टी में पहले से मौजूद रासायनिक तत्वों को अपनी क्रियाओं द्वारा पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को घुलनशील अवस्था में उपलब्ध कराते हैं।

वनस्पतिक उत्पादन के लिए आवश्यक सभी तत्व एवं जीवाणु धरती में पहले से मौजूद थे लेकिन विपरीत परिस्थितियों (रसायनिक खाद एवं दवा, अत्यधिक सूखा तथा कार्बनिक पदार्थों की कमी) के कारण इन लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में कमी आ गई या वे समाप्त हो गये।

वर्मीकम्पोस्ट एक ऐसी नैसर्गिक क्रिया है जिसमें सभी लाभदायक जीवाणुओं को विकास का अवसर मिलता है। कच्चे माल से लेकर वर्मीकम्पोस्ट बनने के दौरान लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। ये लाभदायक जीवाणु वर्मीकम्पोस्ट के भंडारण के दौरान भी गतिशील रहते हैं और खेत में डालने के पश्चात् भी क्रियाशील बने रहते हैं। इसी कारण जैसा कि पहले कहा गया है कि हजारों प्रयोगों में हर बार (सैंकड़ों तरह की फसलों, पेड़ पौधों वनस्पति इत्यादि) जब भी वर्मीकम्पोस्ट का इस्तेमाल किया गया इसके परिणाम लाभदायक रहे हैं।

पृथ्वी पर जिस प्रकार लाभदायक जीवाणु पाये जाते हैं उसी प्रकार हानिकारक जीवाणुओं की भी एक बहुत बड़ी संख्या मौजूद है। अधिकतर देखा गया है कि सूक्ष्म जीवाणुओं में लाभदायक जीवाणुओं की तुलना में हानिकारक जीवाणुओं की चर्चा अधिक सुनने में आती है। हमारे दैनिक जीवन में लाभदायक जीवाणु के रूप में हम शायद दूध से दही बनाने वाले जीवाणुओं के अलावा और अन्य प्रकार के जीवाणुओं के बारे में बहुत कम जानते हैं। लेकिन हानिकारक जीवाणु जिन्हें पैथोजन भी कहा जाता है, से रोज पाला पड़ता है। हर प्रकार का बुखार–मलेरिया, टी.बी., टायफाइड, डायरिया इत्यादि इसी के उदाहरण हैं। इसके प्रचार–प्रसार ने जीवाणुओं को नकारात्मक पहचान दी है।

वातावरण में और विशेषकर कचरों के ढेर में इन जीवाणुओं का विद्यमान होना आम बात है। अतः यह बहुत आसानी से कहा जा सकता है कि जब इसी कचरे को काम में लेकर वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा रही है तब उसमें लाभदायक जीवाणुओं के साथ सभी प्रकार के हानिकारक जीवाणु भी अवश्य होने चाहिए। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसका प्रमुख कारण है वर्मीकल्चर बनाने की प्रक्रिया।

जैसा कि वर्मीकल्चर विधि एवं कच्चे माल के वर्णन के साथ कहा गया है कि किसी भी प्रकार के कच्चे माल को केचुओं को सीधा नहीं खिलाया जा सकता। कच्चे माल का पहले प्रारम्भिक अपघटन किया जाता है और कम्पोस्टिंग वाले अध्याय में बताया गया था कि किस प्रकार कम्पोस्टिंग क्रिया में तापमान की वृद्धि होती है।

पूरी दूनिया में लाभदायक जीवाणुओं की अपेक्षा हानिकारक जीवाणुओं की अधिक वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध है। हानिकारक जीवाणु पशुओं एवं इंसानों में बीमारियां पैदा करते हैं और उन बीमारियों के इलाज के लिए दवा कम्पनियों द्वारा दवा विकसित करने की प्रक्रिया में इन जीवाणुओं के बारे में गहन वैज्ञानिक शोध की जाती है। उपलब्ध साहित्य और वर्मीकल्चर बनाने की विधि के आधार पर कुछ प्रमुख हानिकारक जीवाणुओं के बारे में निम्न जानकारी उपलब्ध है:–

• वर्ष 1996 में गौताश नामक वैज्ञानिक ने कहा कि 60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर अधिकतर बीमारियों के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

• टायफाइड का जीवाणु 46 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान होने पर जिंदा नहीं रह सकता।

• डायरिया का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर एक घंटे में ओर 60 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 20 मिनट में मर जाता है।

• डिफ्थिरीया का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 20 मिनट में मर जाता है।

• अमीबीय डिसेन्ट्री का जीवाणु 45 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ मिनट में और 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ ही क्षणों मे मर जाता है।

• टेपवर्म एवं हुकवर्म का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर मर जाता है।

• पशुओं का गर्भ गिराने वाला जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर एक घंटे में एवं 62 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ मिनटों मे ही मर जाता है।

• टी.बी. का जीवाणु कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया मे जिन्दा नहीं रह सकता।

• पोलियो का जीवाणु 60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर 3 दिन में मर जाता है।

आमतौर पर प्रारम्भिक अपघटन के दौरान एक मीटर ऊँचाई के ढेर में पहले 10 दिनों में तापमान 70 डिग्री से अधिक पहुंच जाता है जिससे यह माना जा सकता है कि करीब करीब सभी प्रकार के हानिकारक जीवाणु इस दौरान समाप्त हो जायेंगे।

इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट बेड मे केंचुए के शरीर से निकला म्यूकस भी कई प्रकार के हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने मे सहायक होता है। म्यूकस एक ऐसा चिपचिपा पदार्थ होता है जो हानिकारक जीवाणुओं को मिलने वाले भोजन की सप्लाई रोक देता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्मीकल्चर पूर्णतया सूक्ष्मजीवाणुओं की अपनी दुनिया पर आधारित एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा नैसर्गिक रूप में प्रकृति ने अपने टिकाऊपन की व्यवस्था कर रखी है।

वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण

• बेक्टीरिया की संख्या	: 10^{10} से ज्यादा
• एक्टीनोमाईसिटिस, एजोटोबेक्टर, राईजोबियम, फास्फेट सोल्यूबिलाइजर एवं नाईट्रोबेक्टर	: लगभग 10^{6} से 10^{7} तक
• जिबरेलिन्स (जी.ए.), आक्सीनस् (आई.ए.ए.) एवं साईटोकिनिन्स (आई.पी.ए.)	: पर्याप्त मात्रा में
• फंगाई	: कई प्रकार की लाभप्रद फंगाई

पृथ्वी पर जिस प्रकार लाभदायक जीवाणु पाये जाते हैं उसी प्रकार हानिकारक जीवाणुओं की भी एक बहुत बड़ी संख्या मौजूद है। अधिकतर देखा गया है कि सूक्ष्म जीवाणुओं में लाभदायक जीवाणुओं की तुलना में हानिकारक जीवाणुओं की चर्चा अधिक सुनने में आती है। हमारे दैनिक जीवन में लाभदायक जीवाणु के रूप में हम शायद दूध से दही बनाने वाले जीवाणुओं के अलावा और अन्य प्रकार के जीवाणुओं के बारे में बहुत कम जानते हैं। लेकिन हानिकारक जीवाणु जिन्हें पैथोजन भी कहा जाता है, से रोज पाला पड़ता है। हर प्रकार का बुखार–मलेरिया, टी.बी., टायफाइड, डायरिया इत्यादि इसी के उदाहरण हैं। इसके प्रचार–प्रसार ने जीवाणुओं को नकारात्मक पहचान दी है।

वातावरण में और विशेषकर कचरों के ढेर में इन जीवाणुओं का विद्यमान होना आम बात है। अतः यह बहुत आसानी से कहा जा सकता है कि जब इसी कचरे को काम में लेकर वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा रही है तब उसमें लाभदायक जीवाणुओं के साथ सभी प्रकार के हानिकारक जीवाणु भी अवश्य होने चाहिए। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसका प्रमुख कारण है वर्मीकल्चर बनाने की प्रक्रिया।

जैसा कि वर्मीकल्चर विधि एवं कच्चे माल के वर्णन के साथ कहा गया है कि किसी भी प्रकार के कच्चे माल को केचुओं को सीधा नहीं खिलाया जा सकता। कच्चे माल का पहले प्रारम्भिक अपघटन किया जाता है और कम्पोस्टिंग वाले अध्याय में बताया गया था कि किस प्रकार कम्पोस्टिंग क्रिया में तापमान की वृद्धि होती है।

पूरी दूनिया में लाभदायक जीवाणुओं की अपेक्षा हानिकारक जीवाणुओं की अधिक वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध है। हानिकारक जीवाणु पशुओं एवं इंसानों में बीमारियां पैदा करते हैं और उन बीमारियों के इलाज के लिए दवा कम्पनियों द्वारा दवा विकसित करने की प्रक्रिया में इन जीवाणुओं के बारे में गहन वैज्ञानिक शोध की जाती है। उपलब्ध साहित्य और वर्मीकल्चर बनाने की विधि के आधार पर कुछ प्रमुख हानिकारक जीवाणुओं के बारे में निम्न जानकारी उपलब्ध है:–

• वर्ष 1996 में गौताश नामक वैज्ञानिक ने कहा कि 60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर अधिकतर बीमारियों के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

• टायफाइड का जीवाणु 46 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान होने पर जिंदा नहीं रह सकता।

• डायरिया का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर एक घंटे में ओर 60 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 20 मिनट में मर जाता है।

• डिफ्थिरीया का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 20 मिनट में मर जाता है।

• अमीबीय डिसेन्ट्री का जीवाणु 45 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ मिनट में और 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ ही क्षणो मे मर जाता है।

• टेपवर्म एवं हुकवर्म का जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर मर जाता है।

• पशुओं का गर्भ गिराने वाला जीवाणु 55 डिग्री सेन्टीग्रेड पर एक घंटे में एवं 62 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ मिनटों मे ही मर जाता है।

• टी.बी. का जीवाणु कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया में जिन्दा नहीं रह सकता।

• पोलियो का जीवाणु 60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर 3 दिन में मर जाता है।

आमतौर पर प्रारम्भिक अपघटन के दौरान एक मीटर ऊँचाई के ढेर में पहले 10 दिनों में तापमान 70 डिग्री से अधिक पहुंच जाता है जिससे यह माना जा सकता है कि करीब करीब सभी प्रकार के हानिकारक जीवाणु इस दौरान समाप्त हो जायेंगे।

इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट बेड मे केंचुए के शरीर से निकला म्यूकस भी कई प्रकार के हानिकारक जीवाणुओ को नष्ट करने मे सहायक होता है। म्यूकस एक ऐसा चिपचिपा पदार्थ होता है जो हानिकारक जीवाणुओं को मिलने वाले भोजन की सप्लाई रोक देता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्मीकल्चर पूर्णतया सूक्ष्मजीवाणुओं की अपनी दुनिया पर आधारित एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा नैसर्गिक रूप में प्रकृति ने अपने टिकाऊपन की व्यवस्था कर रखी है।

वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण

• बेक्टीरिया की संख्या : 10^{10} से ज्यादा

• एक्टीनोमाईसिटिस, एजोटोबेक्टर, राईजोबियम, फास्फेट सोल्युबिलाइजर एवं नाईट्रोबेक्टर : लगभग 10^{6} से 10^{7} तक

• जिबरेलिन्स (जी.ए.$_3$), आक्सीनस (आई.ए.ए.) एवं साईटोकिनिन्स (आई.पी.ए.) : पर्याप्त मात्रा में

• फंगाई : कई प्रकार की लाभप्रद फंगाई

तालिका 15

मृदा में सूक्ष्म जीवों तथा बायोमास की जनसंख्या

सूक्ष्म जीव	औसत संख्या लाख में (प्रतिग्राम मृदा में)	औसत बायोमास कि.ग्रा. में (प्रति हैक्टर)
1. जीवाणु	1000	500
2. कवक	10	1000
3. एक्टिनोमाइसिट्स	100	750
4. शैवाल	0.01	150

स्त्रोतः डॉ. एस.सी.व्यास, ***जैविक खेती***, पृष्ठ 13

तालिका 16

विभिन्न सूक्ष्म जीव तथा उनके कार्य

विभिन्न सूक्ष्म जीवी	कार्य
शाकाणु	
राइजोबियम	दलहनों, फसलों की जड़ की ग्रंथी में सहजीवी के रूप में नत्रजन स्थिरी करण करते हैं।
एजेटोबेक्टर	मृदा में वायुमण्डल से नत्रजल स्थिरीकरण करते हैं।
एजोस्पाइरेलियम–	
–स्युडोमोनास स्ट्रेटा	स्फुर को घोलते हैं।
राइजोबेक्टेरिया	पौध वृद्धि में लाभदायक, हारमोन, आक्जीन तथा अन्य तत्वों को घोल के रूप में पौधे को पहुंचाते हैं।
फफूंद	
माइकोराइजा	पौधों में सहजीवी के रूप में रहकर स्फुर को घोलते हैं तथा पौधे को क्लेमायडोस्फोर के द्वारा पहुंचाते हैं।
स्फुर घोलक फफूंदे	शाकाणुओं के समान फफूंदें भी मृदा में स्फुर घोलती हैं
शैवाल	
एजोला स्पीसिज	ये नत्रजन स्वतः ही खेत में स्थिर करते हैं।

स्त्रोतः डॉ. एस.सी.व्यास, ***जैविक खेती***, पृष्ठ 2

तालिका 17

विभिन्न फसलों में पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु जैव उर्वरक

जैव उर्वरक और उपचार की मात्रा	फसल	अनुमानित तत्व की पूर्ति (कि.ग्रा./है./प्रतिवर्ष)
राइजोबियम कल्चर (5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज)	अरहर, मूंग, उड़द, सोयाबीन, चना, मटर, मसूर, मूंगफली, लोबिया, बरसीम	नत्रजन 50–300
एजेटोबेक्टर (5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज)	गेहूँ, जौं, धान, ज्वार, मक्का, सूरजमुखी, सरसों, टमाटर, कपास, आलू आदि	नत्रजन 20–40
एजोस्पीरिलम (5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज)	ज्वार, मक्का, रागी, जौ एवं चारे वाली फसलें	नत्रजन 30
स्यूडोमोनास स्ट्रेटा एवं वेसिलस पाली मिक्सा (5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज)	सभी फसलों में	स्फुर 20–30 स्फुर 20–30
वैम (जड़ कवकं)	प्याज एवं अलसी	स्फुर 15–20

स्त्रोतः डॉ. एस.सी.व्यास, ***जैविक खेती***, पृष्ठ 3

अभ्यास 7

1. आप कई वर्षों से रसायनिक खाद का उपयोग कर रहे हैं। क्या आप बता सकते हैं कि किस रसायनिक खाद में कौन–कौन से पोषक तत्व होते हैं? ....

....

....

....

2. क्या आप जानते हैं कि रसायनिक खाद के पोषक तत्व पौधों द्वारा किस प्रकार उपयोग में लिये जाते हैं? ....

....

....

....

3. क्या आपको मालूम है कि रसायनिक खाद में उपलब्ध पोषक तत्वों में से कितना पौधों द्वारा काम में ले लिया जाता है और शेष का क्या होता है? ....

....

....

....

4. क्या आपको मालूम है कि देशी खाद किस प्रकार पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध कराती है?

....

....

....

....

5. आपके अनुसार वर्मीकल्चर खाद किस प्रकार काम करेगी? अपने विचार लिखें। ....

....

....

....

....

6. क्या आप मिट्टी के कण–कण में जीवन है, वाली बात से सहमत हैं? हाँ/नहीं, क्यों?

....

....

....

....

....

मोड्यूल – 8
वर्मी कल्चर – कम्पोस्ट का उपयोग

युनिट 8.1 वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

युनिट 8.2 बारानी खेती में वर्मीकम्पोस्ट

युनिट 8.3 सिंचित खेती में वर्मीकम्पोस्ट

युनिट 8.4 बागवानी में वर्मीकम्पोस्ट

युनिट 8.5 वृक्षारोपण में वर्मीकम्पोस्ट

युनिट 8.6 वर्मीकम्पोस्ट उपयोग के मार्गदर्शक सिद्धांत

वर्मीकम्पोस्ट बनाने एवं उपयोग के बारे में जानकारी देते हुए

युनिट 8.1 वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

वर्ष 1995 से प्रारम्भ करते हुए अब तक वर्मीकम्पोस्ट के करीब 5000 से अधिक ट्रायल्स लिये जा चुके हैं। कई वर्षों के अनुभव से हमने देखा है कि किसी भी नई तकनीक की ट्रायल पहले कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर एवं उसके पश्चात् किसानों के स्तर पर करने में बहुत समय का नुकसान होता है। इसलिए शत प्रतिशत प्रयोग पहले रोज से ही किसानों को साथ लेकर सीधे खेत में ही करने का फैसला लिया गया। इस प्रकार की रिसर्च एवं ट्रायल के आज तक मिले सभी परिणाम बहुत उत्साह जनक रहे हैं। कई किसानों द्वारा वर्मीकल्चर पर किया गया कार्य एक कहानी के रूप में कहा जाने लगा है।

वर्मीकम्पोस्ट से उत्साहित महिला की कहानी

झुन्झुनू जिले के नवलगढ़ करबे से 15 किलोमीटर दूर सेठों की प्याऊ के पास स्थित ढाणी में दुर्गा देवी ने सन् 1998 से केंचुए की रवाद बनाने का काम प्रारम्भ किया। उन्हें प्रारम्भ में पड़ौसियों एवं परिवार वालों का हंसी मजाक भी सहना पड़ा लेकिन दुर्गा देवी ने शुरूआत करने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देरवा। उसने यह ठान लिया था कि मैं अपने रवेत में रसायनों का एक दाना भी नहीं पड़ने दूंगी और यह उसने सिर्फ दो वर्ष में कर दिरवाया। 1999–2000 में जिला स्तरीय कृषि पुरस्कार ने दुर्गादेवी का उत्साह और अधिक बढ़ा दिया। रवरीफ के दौरान बाजरा, मूंग एवं ग्वार की फसलों में अकाल की स्थिति में भी दुर्गादेवी ने सामान्य फसल केवल वर्मीकम्पोरट के सहारे पैदा करी।

जब दुर्गा देवी से यह पूछा जाता है कि इस रवाद के क्या फायदे है, तो उसका जवाब देते हुए उनका आत्मविश्वास झलकता है। दुर्गा कहती है, *साब केंचुए की रवाद बिना तो म्हारी रवेती ही अधूरी है, थानै कोई एक फायदो होवे तो बताऊँ।* दुर्गा देवी को केंचुए की रवाद का उत्पादन करते हुए 5वां वर्ष है और उसने तीन वर्ष से रवेत में एक दाना भी रसायनों का नहीं डाला और उसकी पैदावार भी 16 क्विंटल प्रति एकड़ से बढ़कर 20 क्विंटल प्रति एकड़ हो गई। लागत में भी 20 प्रतिशत की कमी हुई है। उसके रवेत का गेहूं 7.50 रूपये प्रति किलो बिकता है जबकि बाजार भाव सिर्फ 6.00 रूपये प्रति किलो है। दुर्गा देवी को विश्वास है कि जल्दी ही मेरा गेहूं 10–12 रूपये प्रति किलो में बिकना शुरू हो जायेगा। वह यह भी जोर देते हुए कहती है कि यदि रसायन और केंचुए की रवाद से पैदा किये हुए गेहूं के दानों की तुलना की जाय, तो फर्क साफ नजर आता है।

दुर्गा देवी से जब यह पूछा गया कि केंचुए की रवाद बनाने में मेहनत अधिक होती होगी, तो वह तपाक से जवाब देते हुए कहती है कि मेहनत के कारण ही तो कट्टे की रवाद ने हमारी आदत बिगाड़ दी और हमारी एक मात्र धरोहर जमीन ही नष्ट होती जा रही है। मेहनत लगती है तो उसका परिणाम भी तो मिलता है, उसका प्रभावशाली जवाब सबको संतुष्ट कर देता है।

दुर्गादेवी द्वारा दिये गये एक साक्षात्कार का सारांश

इस तकनीक के विकास के पहले 5 वर्षों के अनुभव ने यह सिखा दिया कि अनुसंधान केन्द्र पर विकसित की गई तकनीक जब किसानों के स्तर पर उपयोग में लाई जाती है तब उसमें किसान अपनी समझ से कई और प्रयोग भी करते हैं। अतः वर्मीकम्पोस्ट की ट्रायल में शुरू से ही किसानों के ज्ञान एवं अनुभव को सर्वोपरि माना गया और उन्हें अपने स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट का अपने तरीके से मूल्यांकन करने का अवसर दिया गया। इसी का परिणाम है कि आधे से अधिक प्रयोग किसानों द्वारा स्वयं विकसित किये गये हैं।

अब तक जितने भी प्रयोग किये गये हैं, वे भी दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। पहली श्रेणी में वे कृषक आते हैं जिन्होने पहले स्वयं अपनी वर्मीकम्पोस्ट यूनिट लगाई और फिर उस यूनिट में उत्पादन की गई वर्मीकम्पोस्ट का खेत में उपयोग किया। ऐसे कृषकों की संख्या भी करीब 1000 रही। दूसरी श्रेणी में वे कृषक आते हैं जिन्होने वर्मीकम्पोस्ट अपने अन्य किसान साथियों से ली या उन्हें मोरारका फाउण्डेशन द्वारा वर्मीकम्पोस्ट उपलब्ध कराई गई और उन्होंने वर्मीकम्पोस्ट उपयोग के प्रयोग अपने स्तर पर किये। लेकिन दोनों ही प्रकार के प्रयोगों में वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा एवं उपयोग का तरीका स्वयं किसानों द्वारा तय किया गया। इन प्रयोगों में किसानों द्वारा अपनाई गई सम्पूर्ण पद्धति का रिकोर्ड रखा गया। वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के बारे में इस रिकोर्ड के आधार पर प्राप्त नतीजों के अनुसार अब अन्य लोगों को सिफारिश की जा रही है।

वर्मीकम्पोस्ट से उत्साहित श्री बोदूराम की कहानी

झुन्झुनू जिले के नेहरों की ढ़ाणी गांव के श्री बोदूराम ने मोरारका फाउण्डेशन द्वारा दी गई सलाह के अनुसार वर्ष 1998 से केंचुए की खाद (वर्मीकम्पोस्ट) बनाने का काम 10´ X 3´ की दो बेड लगाकर प्रारम्भ किया।

उसने 2 माह में करीब 800 किलो खाद बना डाली एवं इसके अगले दो माह में यह खाद बढ़कर 2500 किलो हो गई। वर्तमान में वह 10000 किलो वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन कर रहे हैं। उसने इस खाद का उपयोग गेहूं, सरसों, चना, मैथी, प्याज आदि फसलों में किया।

बोदूराम को केंचुए की खाद का उत्पादन करते हुए तीन वर्ष हो गये हैं और उसने इस दौरान खेत में एक दाना भी रसायनों/कीटनाशकों का नहीं डाला।

उसकी गेहूं की पैदावार जहां 14 क्विंटल प्रति एकड़ से बढ़कर 22 क्विंटल प्रति एकड़ हुई वहां लागत में भी 40 प्रतिशत की कमी हुई है। बोदूराम के अनुसार रोजाना सिर्फ 1 से 1.5 घंटे का कार्य करना पड़ता है।

बोदूराम द्वारा दिये गये एक साक्षात्कार का सारांश

किसानों के अलावा वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के प्रयोग घरेलू बाग बगीचों (करीब 1000 घरों में), संस्थागत उद्यानों (करीब 200), रोड साइड प्लान्टेशन (करीब एक लाख पेड़), जंगलात (करीब 2.5 लाख पेड़) एग्रो फोरेस्ट्री (करीब एक लाख पेड़), चारागाह विकास (करीब 600 हेक्टेयर), नर्सरी (करीब 300) इत्यादि में किये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्ट उपयोग के इतने अधिक प्रयोग करने के बाद, आज भी इस विषय का ज्ञान बहुत सीमित है। हर दिन नये-नये उपयोग एवं नये-नये परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। इस सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उन किसानों को जाता है जिनके द्वारा यह प्रयोग किये जा रहे हैं। जैसा कि पहले बताया गया है कि वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग में जैव विज्ञान आधारित प्रभावों के कारण कई बार इतने अप्रत्याशित परिणाम मिले हैं कि वैज्ञानिक और किसान दोनों ही हतप्रभ रह गये हैं। अब तक किये गये प्रयोगों में कई बार पूरी प्रक्रिया एवं कई बार किसी एक विशेषता को लेकर मूल्यांकन किया गया है।

इस अध्याय में अब तक के अनुभवों के आधार पर मिलने वाले कुछ परिणामों को ही बताया गया है। इस सम्बंध में अभी और भी कई गुना अधिक वैज्ञानिक आधार पर शोध करना बाकी है, जिसके लिये सारे कृषि वैज्ञानिक जगत को आगे आना होगा।

वर्मीकम्पोस्ट संजीवनी साबित हुई

नवलगढ़ से 15 किलोमीटर दूर सेठों की प्याऊ के पास स्थित ढ़ाणी में रहने वाली श्रीमति तिजू देवी कृषि के बारे में कोई नई तकनीक अपनाने में हमेशा आगे रहती हैं। वर्ष 1996 में जब उनसे वर्मीकम्पोस्ट की इकाई की स्थापना हेतु चर्चा की गई तो वे तुरन्त तैयार हो गई एवं उन्होने 300 किलो गोबर लेकर अपने खेत पर एक छोटी इकाई की स्थापना की। उसमें मोरारका फाउण्डेशन द्वारा दिये गये 500 केंचुए छोड़े।

तिजू देवी ने अपने खेत की बंजर भूमि में 1 बीघा में बाजरे की फसल की बुवाई कर रखी थी। यह बाजरा उगने के बाद जब निराई का समय आया तब तक बिल्कुल झुलस चुका था। मोरारका फाउण्डेशन द्वारा इस खेत में 250 किलो वर्मीकम्पोस्ट का बुरकाव करवाकर निराई गुडाई करवाकर सिंचाई करवाई गई। इसके प्रभाव से 10 दिन बाद बाजरे की फसल में नये कल्ले निकलने लगे तो तिजू देवी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा और आस पास की महिलाओं ने कहा कि अरे इसने तो तेरी बाजरे की फसल के लिये संजीवनी का काम किया है। इस खेत में 1.50 क्विंटल/बीघा बाजरे की पैदावार हुई जबकि पड़ोस के खेतों में 90 किलो/बीघा ही हुई।

उसने अपने यहां करीब 1800 किलो खाद तैयार कर उसे गेहूं के खेत में डाला। इससे उसके खेत में 8 सिंचाईयों की जगह 6 सिंचाईयों की ही आवश्यकता पड़ी एवं उपज भी करीब 40 प्रतिशत ज्यादा हुई। इसके बाद उसने उसी खेत में ग्वार की बुवाई की। पहले उसके खेत में ग्वार की फसल जल जाती थी परन्तु इस बार वो नहीं जली तथा उसमें दीमक व खरपतवार भी नहीं लगी।

तीजूदेवी द्वारा दिये गये एक साक्षात्कार का सारांश

युनिट 8.2 बारानी खेती में वर्मीकम्पोस्ट

भारत में आज भी बारानी खेती का क्षेत्रफल सिंचित खेती से अधिक है। ठीक इसी प्रकार बारानी खेती करने वाले किसानों की संख्या भी लगभग 3 गुने से अधिक है और सबसे अधिक समस्याएं भी बारानी खेती की हैं। पारम्परिक रूप से बारानी खेती वर्षा आधारित रही है जिसके तहत मोटे अनाज जैसे – बाजरा, ज्वार, मक्का इत्यादि प्रमुख फसलें ली जाती हैं, अन्य फसलों में दलहन और तिलहन लिये जाते हैं।

सभ्यता के विकास के पहले दौर में सबसे पहले खेती पहाड़ियों की घाटी में प्रारम्भ हुई। जहां भरपूर मात्रा में फसलों को पोषण एवं पानी मिल जाता था। जैसे–जैसे आबादी बढ़ी खेती के क्षेत्र का विस्तार होता गया। मानव सभ्यता के विकास के प्रथम चरण में की जाने वाली खेती सबसे उच्च दर्जे की अनुकूल परिस्थितियों में की गई। इस दौरान खेती करने वाले किसानों ने अपना तालमेल प्रकृति के साथ बनाये रखा। मृदा के अनुसार फसलों का चयन, जमीन की जुताई, बीज भंडारण की विधि, फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्व और फसलों से मिलने वाले उत्पादन की प्रासंगिकता ने इस खेती को टिकाऊपन दिया। धीरे धीरे बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिये कम उपजाऊ क्षेत्रों में भी की जाने लगी। लेकिन इन जगहों पर भी प्रकृति के साथ तालमेल बना रहा और फसल चक्र का निर्धारण जमीन की उपजाऊ शक्ति को ध्यान में रखकर किया जाता रहा।

कई रेगिस्तानी इलाकों में बड़े बुजुर्गों से चर्चा करने पर पाया गया कि उनके अनुसार उन इलाकों की जमीन में इतने ही पोषक तत्व हैं, कि वे पांच साल में एक बार की औसत फसल ले सकें। इसलिये यहां रहने वाले लोगों के जीवन का तरीका भी उसी अनुसार बना रहा। वर्षा की मात्रा पर निर्भरता से अधिक जमीन के पोषक तत्वों का आंकलन करने का यह तरीका अच्छा था। यह बात अलग है कि आज जमीन के पोषक तत्वों के सम्बंध में बहुत हद तक लापरवाह नजरिया अपनाया जा रहा है। आधुनिक विज्ञान के बल पर कम उपजाऊ क्षमता वाली धरती का भी अधिकाधिक दोहन किया जा रहा है।

कई वर्षों के अनुभव के बाद यह सीखा जा रहा है कि जमीन में फसल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा ना होने पर सामान्य वर्षा के दौरान भी उपज की मात्रा बहुत कम होती है। बार बार अकाल पड़ने का एक कारण वर्षा की कमी ही नहीं अपितु जमीन के पोषक तत्वों में लगातार कमी होना भी है।

जैसा कि पहले कहा है, वर्मीकम्पोस्ट उपयोग की पद्धति एवं तौर तरीकों से सम्बंधित शत प्रतिशत प्रयोग किसानों द्वारा स्वयं अपने अनुभव और विवेक के आधार पर किये गये हैं अतः बारानी फसलों में ज्वार, बाजरा, मक्का, तिल, सरसों, मूंग, मोठ, ग्वार, चना, इत्यादि के करीब 1000 से अधिक प्रयोगों के आधार पर निम्न कहा जा सकता है।

• किसी भी मात्रा में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से बारानी फसलों में उत्पादन बढ़ा है।
• ८० प्रतिशत से अधिक किसानों ने वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बुवाई के पहले उचित माना है।
• २० प्रतिशत कृषकों द्वारा वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग फसल के बढ़ने के दौरान मुख्यतः कल्ले फूटने के समय एवं दाना बढ़ने के समय भी किया गया और उन्होंने इसे उपयोगी बताया।
• बारानी खेती में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मिलने वाले महत्वपूर्ण लाभ में अधिक अंकुरण, अधिक कल्ले फूटना, फसल की अच्छी बढ़वार, दानों की अधिक संख्या, आकार तथा वजन में अधिक उत्पादन बताया गया है।
• बड़ी संख्या में किसानों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से दीमक के प्रकोप में कमी और कम खरपतवार कम होना पाया है।
• वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से उपजे अन्न को अधिक पोष्टिक एवं स्वादिष्ट पाया गया है।
• कम वर्षा की स्थिति में (४० प्रतिशत वर्षा में कमी होने तक) किसानों ने सामान्य फसल उत्पादन (सिंचित खेती की तुलना में) लिया है।
• रासायनिक विश्लेषण के आधार पर एन.पी.के. की गणना के अनुसार वर्मीकम्पोस्ट की निर्धारित मात्रा में एक तिहाई कमी कर उसके स्थान पर देशी खाद एवं वर्मीकम्पोस्ट के मिश्रण से सबसे अधिक लाभ मिला है।
• बारानी फसलों में सामान्य रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के साथ वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग भी बहुत लाभदायक रहा है।
• वर्मीकमपोस्ट के उपयोग की एक लिमिटेड मात्रा के बाद अधिक उपयोग करने से कोई खास ज्यादा फायदा नहीं होता है।

5 वर्षों के ऊपरोक्त अनुभवों के आधार पर अब सामान्य सिफारिश के तौर पर औसत 1–1.5 मैट्रिक टन प्रति हैक्टर की दर से वर्मीकम्पोस्ट उपयोग की सलाह को उचित माना गया है। इस प्रकार उपयोग की गई वर्मीकम्पोस्ट में यदि औसत ढ़ाई प्रतिशत नाइट्रोजन मानें तो करीब 40–50 किलो नाइट्रोजन उपलब्ध हो जाती है। ऐसे किसान जो आज अपने उर्वरक प्रबंध में एन.पी.के. आधार पर आदानों का उपयोग करते हैं उनके लिए कहा जाता है कि वे चाहे तो एक तिहाई या दो तिहाई नाइट्रोजन (25 किलो या 30 किलों) रासायनिक उर्वरक के द्वारा या देशी खाद द्वारा या तीनों के मिश्रण से अपनी उर्वरक की जरूरत पूरी कर सकते हैं। अत्यधिक रासायनिक उर्वरक प्रयोग करने वाले क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरक की मात्रा में एक बार में एक तिहाई की कमी करने से बेहतर परिणाम मिलेंगे।

किसी खेत में वर्मीकम्पोस्ट के लगातार उपयोग करने के दौरान पाया गया है कि वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा में भी कमी लाई जा सकती है। कई प्रयोगों में एन.पी.के. के आधार पर बैन्च मार्किंग करने पर देखा गया है कि पहली बार में वर्मीकम्पोस्ट द्वारा 2.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, दूसरी बार में करीब 3–4 प्रतिशत तथा तीसरी बार में 5 प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन की उपलब्धता वर्मीकम्पोस्ट से हुई है।

नाइट्रोजन की इस लगातार बढ़ती हुई उपलब्धता को जब सामान्य रसायन विज्ञान के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया तो इस बात का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं मिल सका। लेकिन जब इसे जैव विज्ञान एवं मिट्टी की संरचना में हुए परिवर्तनों के आधार पर समझने का प्रयास किया तो कई ऐसे परिवर्तन देखे गये जिनसे इसका वैज्ञानिक आधार मजबूत हुआ है।

- **वर्मीकम्पोस्ट में म्यूकस के आवरण वाले बारीक कणों में कारण रेतीली मिट्टी के बिखरे हुए कणों को जोडने की क्षमता है।**
- **वर्मीकम्पोस्ट के कण मृदा के कणों के साथ मिलकर मिट्टी की जलसंधारण क्षमता को बढ़ा देते हैं।**
- **मिट्टी की बढ़ी हुई जलसंधारण क्षमता के कारण मृदा में पहले से मौजूद कार्बनिक तत्वों को लगातार नमी मिलती रहने से उनका अपघटन प्रारम्भ हो जाता है।**
- **वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध सूक्ष्मजीवाणु मृदा में उपस्थित अपघटित ओर्गेनिक मैटर को खाकर लगातार अपनी वृद्धि कर सकते हैं।**

इस प्रकार मिट्टी में पर्याप्त जीवनसंचार होने लगता है। बढ़ा हुआ जीवन संचार मिट्टी में एवं वायुमण्डल में उपस्थित पोषक तत्वों को सोखकर उन्हें घुलनशील अवस्था में लाकर पौधों को उपलब्ध करा देता है।

इस प्रकार हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप उदाहरण के लिए मिट्टी में यदि पहले प्रयोग में 2000 किलो वर्मीकम्पोस्ट डाली जाती है तब उस फसल में नाइट्रोजन की मात्रा ढाई प्रतिशत के आधार पर कुल 50 किलो होगी। लेकिन इसी खेत में दूसरी बार 1000–1200 किलो वर्मीकम्पोस्ट से ही 50 किलो तक नाइट्रोजन उपलब्ध हो जाती है। पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाने के लिये वर्मीकम्पोस्ट के साथ अच्छी तरह से तैयार देशी खाद का उपयोग किया जाना चाहिये। वर्मीकम्पोस्ट मृदा में जैव रासायनिक क्रियाओं की नई शुरूआत करने में सक्षम है जिसके कारण वर्मीकम्पोस्ट से मिलने वाला लाभ लगातार बढ़ता जाता है। गंत् 3 वर्षों में नवलगढ़ ब्लॉक में वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग एवं उससे मिलने वाले उत्पादन का विवरण आगे दिया गया है :–

तालिका 17

वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शनों के परिणामों की सारांश रिपोर्ट

नवलगढ़ पंचायत समिति जिला झुन्झुनू में तीन वर्षों 1998–99, 1999–2000 एवं 2000–2001 में वर्मीकम्पोस्ट उपयोग पर किये गये प्रदर्शनों के परिणाम

मात्रक : मैट्रिक टन प्रति हैक्टर

क्र. स	वर्मीकम्पोस्ट उपयोग की गई फसल	गावो की सख्या जिनमे वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शन लगाये गये	वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शनों में भाग लेने वाले कृषकों की सख्या	कृषकों द्वारा उपयोग की गई वर्मीकम्पोस्ट की औसत मात्रा	वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से प्राप्त औसत उपज	वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से प्राप्त कम/अधिक उपज की रेंज	परम्परागत खेती में रसायनिक उर्वरकों के साथ प्राप्त औसत उपज	रसायनिक उर्वरकों के मुकाबले वर्मीकम्पोस्ट से प्राप्त अधिक उपज का प्रतिशत
अनाज								
1	बाजरा	31	78	1.95	1.83	1.25-2.50	1.20	52.50%
2	गेहू	29	79	2.60	4.52	3.00-6.00	3.54	27.70%
3	जौ	7	12	1.88	3.99	3.40-4.00	2.89	38.00%
दालें								
1	चना	6	6	2.34	1.91	1.60-2.25	1.22	56.55%
2	मोठ	2	6	2.00	1.50	1.00-2.00	0.84	78.58%
3	ग्वार	4	4	1.50	1.45	1.40-2.00	1.00	45.00%
तिलहन								
1	मूगफली	6	9	2.61	2.67	2.00-3.00	2.15	24.19%
सब्जियां								
1	प्याज	11	18	2.87	35.23	24.00-40.00	28.00	25.83%
2	लहसुन	5	5	1.10	10.25	10.00-12.00	8.00	28.13%
3	गोभी	2	3	3.50	11.00	10.00-12.00	7.50	46.67%
4	मिर्च	18	36	2.50	22.17	17.50-25.00	18.00	23.17%
5	बेंगन	2	7	2.66	18.75	12.50-20.00	15.00	25.00%
6	भिंडी	3	3	3.25	11.25	10.00-15.00	8.00	40.63%
चारा								
1	लूर्सन	8	9	2.24	48.95	44.00-50.00	40.50	20.87%

यूनिट 8.3 सिंचित खेती में वर्मीकम्पोस्ट

हरित क्रांति के दौर में सिंचित खेती का व्यापक प्रसार हुआ। हरित क्रांति के तीन प्रमुख सूत्रों – संकर बीज, रसायनिक उर्वरक एवं सिंचाई सुविधा के उपयोग से अन्न उत्पादन बढ़ाने की तकनीक सफलतापूर्वक अपनाई गई। और सब तो इसमें ठीक रहा लेकिन पारिस्थितिकी संतुलन की दृष्टि से कुछ कमियाँ रह गईं। चूंकि संकर बीज एवं रासायनिक उर्वरक का उत्पादन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना संभव था इसलिए सिंचाई क्षमता के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई। परिणाम यह हुआ कि जहां जिस रूप में पानी उपलब्ध हो सकता था वहीं व्यापक पैमाने पर पूंजी निवेश द्वारा सिंचित खेती की जाने लगी। बड़ी – बड़ी नहर परियोजनाएं, डीजल एवं बिजली के उपयोग द्वारा नलकूपों से सिंचाई की सुविधा जुटाई गई। कुछ समय तक पर्यावरणीय, भौगोलिक एवं धरती–मिट्टी की संरचना को नजर अंदाज कर की जाने वाली सिंचित खेती में बहुत तेजी से उत्पादन बढ़ गया।

लेकिन धीरे–धीरे मिट्टी जवाब देने लगी तो उर्वरकों की मात्रा में वृद्धि कर और अधिक सिंचाई से फसल ली जाने लगी। कुछ ही समय में रसायनिक उर्वरकों की मात्रा एवं सिंचाई के पानी का इतना अधिक उपयोग किया जाने लगा कि खेती की लागत उपज के मूल्य की तुलना में अधिक होती गई। दूसरी तरफ अत्यधिक रसायनिक उर्वरकों के उपयोग से जमीन खराब होने लगी। एक अनुमान के अनुसार जमीन में दिये जाने वाले कुल उर्वरक का मात्र 15–30 प्रतिशत ही फसलों के उपयोग में आता है शेष या तो जमीन में नीचे चला जाता है या वातावरण में उड़ जाता है, जो कि खेती में प्रदुषण का सबसे बड़ा कारण है।

आज लगभग हर किसान सिंचित खेती में रसायनिक उर्वरकों की बढ़ती हुई मात्रा की आवश्यकता से चिंतित नजर आ रहा है। हनुमानगढ़ जिले के एक बड़े किसान जगदीश ने एक दिन उदासी भरे लहजे में कहा था कि हम आने वाली पीढ़ी के लिए क्या छोड़कर जायेंगे? यही चिन्ता आज सैंकड़ों नहीं लाखों किसानों को है।

खरीफ एवं रबी दोनों में ही सिंचित खेती की जाती है। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा वाले किसान लगातार एक के बाद एक सिंचित फसलें लेते हैं। अधिक सिंचाई वाले क्षेत्रों में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग भी अधिक मात्रा में होने लगा है। ऐसे क्षेत्रों में जब वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के प्रयोग प्रारम्भ किये गये तब किसानों को यह बात समझाना कि बिना रसायनिक उर्वरकों के उपयोग

के भी फसल पैदा की जा सकती है, असंभव सा लगता था। अतः प्रारम्भ में नवलगढ़ जहां सिंचित खेती में बहुत कम मात्रा में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग होता है, दूसरा सायपुरा जलग्रहण क्षेत्र, भारत सरकार के जल ग्रहण कार्यक्रम के तहत जहां मध्यम स्तर पर एवं तीसरा अलवर जिले (भारत सरकार के बायोटेक्नोलोजी विभाग के सहयोग एवं भारतीय ग्रामीण संस्थान के तत्वावधान में) के कठूमर एवं लक्ष्मणगढ़ क्षेत्र जहां रसायनिक उर्वरकों का बहुत अधिक उपयोग किया जा रहा था, का चयन किया गया।

नवलगढ़ में रसायनिक उर्वरक के उपयोग की जगह सम्पूर्ण पोषण वर्मीकम्पोस्ट एवं अच्छी प्रकार से तैयार देशी खाद (नैडेप, बायो–गैस स्लरी आदि) के साथ दिया गया। दूसरे क्षेत्र में रसायनिक उर्वरकों का उपयोग दो तिहाई कम किया गया। तीसरे क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट के पहले उपयोग के समय रसायनिक उर्वरक के उपयोग में एक तिहाई की कमी की गई।

कुल मिलाकर प्रत्येक स्थान पर बड़ी संख्या में अलग–अलग फसलों, समय, स्थान, मिट्टी के प्रकार इत्यादि की परिस्थितियों में व्यापक पैमाने पर प्रत्येक किसान द्वारा वर्मीकम्पोस्ट का बहुत अच्छा लाभ देखा गया है।

• किसानों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से सिंचाई के पानी में कमी को वर्मीकम्पोस्ट का सबसे बड़ा लाभदायक पहलू माना।

• प्रमुख लाभ की श्रेणी में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि, उपज का अधिक दाम एवं अच्छे स्वाद को अधिक लाभदायक माना।

5 वर्षों के अनुभवों के आधार पर अब सामान्य सिफारिश के तौर पर 1.5–2.0 मैट्रिक टन प्रति हेक्टेयर की दर से वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग की सलाह को उचित माना गया है। जिन किसानों द्वारा एन.पी.के. विश्लेषण के आधार पर उर्वरक उपयोग की मात्रा का निर्धारण किया जाता है उनको सिफारिश के तौर पर पहले उपयोग में वर्मीकम्पोस्ट 2.50 प्रतिशत नाइट्रोजन, दूसरे उपयोग में 3 से 4 प्रतिशत नाइट्रोजन और तीसरे उपयोग में 5 प्रतिशत नाइट्रोजन के आधार पर वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग की सिफारिश की जाती है।

जैसा कि पहले बताया गया है वर्मीकम्पोस्ट मृदा की संरचना में सुधार, जैव–रसायन क्रियाओं की शुरूआत एवं जलसंधारण क्षमता में वृद्धि के द्वारा फसल के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों को उचित मात्रा में उपलब्ध कराने में सक्षम है। रबी की फसलों में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से पाला पड़ने की दशा में भी उसका प्रभाव नहीं हुआ। व्यापक पैमाने पर स्वयं किसानों द्वारा विभिन्न मात्राओं के परिणामों का विवरण सारणी में दिया गया है।

तालिका 19

वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शनों के परिणामों की सारांश रिपोर्ट

वर्मीकम्पोस्ट उपयोग पर किये गये प्रदर्शनों के परिणाम

मात्रक : क्विंटल प्रति हैक्टर

क्र. सं.	वर्मीकम्पोस्ट उपयोग की गई फसल	गावों की सख्या जिनमे वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शन लगाये गये	वर्मीकम्पोस्ट प्रदर्शनों में भाग लेने वाले कृषकों की सख्या	कृषको द्वारा उपयोग की गई वर्मीकम्पोस्ट की औसत मात्रा (क्वि/हैक्टर)	वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से प्राप्त औसत उपज	वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से प्राप्त कम/अधिक उपज की रेंज	परम्परागत खेती में रसायनिक उर्वरको के साथ प्राप्त औसत उपज	रसायनिक उर्वरको के मुकाबले वर्मीकम्पोस्ट से प्राप्त अधिक उपज का प्रतिशत
अ. जलग्रहण क्षेत्र इन्द्रगढ़, जिला जयपुर (वर्ष 2000–2001)								
1	गेहूं	1	10	70	50	40–70	30	67%
2	जौ	1	10	50	40	30–55	30	33%
3	मेथी	1	10	60	20	15–25	15	33%
4	लूर्सन	1	20	65	625	600–650	570	10%
ब. जलग्रहण क्षेत्र सायपुरा, जिला जयपुर (वर्ष 1999–2000)								
1	गेहूं	3	60	32.00	54	40–70	44	21%
2	जौ	1	10	2.50	40	40	40	–
3	टमाटर	1	10	30.00	90	90	78	15%
4	गाजर	1	10	12.50	400	400	240	66%
5	गेंदा	1	5	10.00	60	60	48	25%
स. लक्ष्मनगढ़ जिला अलवर (वर्ष 2000–2001)								
1	गेहूं	2	3	40	66	45–81	45	47%
2	सरसों	1	1	24	26.40	26	16	65%
3	तम्बाकू	1	1	45	36	36	20	80%
4	जौ	2	2	32	32	27–36	27	19%
5	गन्ना	1	1	90	108	108	86	20%

युनिट 8.4 बागवानी में वर्मीकम्पोस्ट

बागवानी को जानने के प्रयास में कई रोचक तथ्य सामने आये। हमने पाया कि बागवानी के तहत सब्जियों के उत्पादन का बहुत बड़ा भाग शहरों के समीप के क्षेत्रों में उगाया जाता है। प्राचीन काल में अधिकतर फलों का उत्पादन प्राकृतिक रूप से उगे हुए जंगलों से प्राप्त होता था। अधिकतर मसाले वाली फसलें मध्यम दर्जे की गुणवत्ता वाली मिट्टी एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में पैदा की जाती है। कई क्षेत्रों में उचित जलवायु एवं पूंजी निवेश के आधार पर बड़े पैमाने पर बागवानी की फसलों के प्रयास किये गये हैं, लेकिन सफलताएं बहुत सीमित रही है।

बागवानी वाली फसलों में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के प्रयोग पारम्परिक एवं गैर पारम्परिक क्षेत्रों में किये गये। इन प्रयोगों में भी किसानों द्वारा अपने अनुभव एवं विवेक के आधार पर वर्मीकम्पोस्ट उपयोग की प्रणाली अपनाई गई। इसके तहत नवलगढ़ क्षेत्र में बड़ी संख्या में किसानों ने सिर्फ वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से (बिना रसायनिक उर्वरकों के) एवं जयपुर एवं अलवर जिले में रसायनिक उर्वरकों के साथ एवं बिना रसायनिक उर्वरकों के उपयोग के सब्जी वाली फसलों के प्रयोग किये हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मिलने वाले उत्पादन की मात्रा में व्यापक अंतर देखा गया, लेकिन सभी किसानों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग को लाभदायक पाया। इन अनुभवों के आधार पर सामान्य तौर पर 2–3 मैट्रिक टन प्रति हैक्टेयर की दर से वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग की सिफारिश की गई है। किसानों द्वारा बताये गये लाभ में सबसे अधिक लाभदायक निम्न को माना गया है :–

• **सभी किसानों का कहना था कि उनके खेत की उपज का रंग–रूप इतना अच्छा रहा कि मंडी में उनकी फसल अलग ही दिखती है जिससे वह शीघ्र बिक जाती है और अधिकतर उसका दाम भी बढ़िया मिला है।**

• **अन्य फसलों में मिलने वाले लाभ बागवानी वाली फसलों में भी मिले हैं। एक अन्य लाभ भी मिला है जिसमें कई किसानों द्वारा कीटनाशक दवाओं की आवश्यकताओं में कमी आने का बताया गया।**

नियंत्रित परिस्थिति में सब्जियों की खेती में किये गये प्रयोगों में पाया गया कि वर्मीकम्पोस्ट द्वारा पैदा की गई सब्जियों को तोडने के पश्चात् बहुत दिनों तक साधारण परिस्थितियों में भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

रसायनिक खाद से पैदा की जाने वाली सब्जियों को 2–3 दिन सुरक्षित रखा जाता है जबकि वर्मीकम्पोस्ट से पैदा की गई सब्जियों को बिना किसी प्रकार का नुकसान हुए 6–7 दिन तक सुरक्षित रखा जा रहा है। पत्ते वाली सब्जियों में इस प्रभाव को बहुत लाभदायक माना गया है।

मसाले वाली फसलों में विशेषतः धनिया, जीरा एवं सौंफ में भी वर्मीकम्पोस्ट के कई लाभ देखे गये हैं। लगभग 2 मैट्रिक टन प्रति हेक्टेयर वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से रसायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में दो तिहाई की कमी की जा सकी है। इन मसालों की सुगन्ध को भी किसानों ने स्वीकारा है। एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ मसालों की गुणवत्ता में भी देखा गया। जिस कन्ट्रोल प्लोट में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मसालों वाली फसलों का उत्पादन किया गया, उनसे प्राप्त फसलों को जब अ,ब,स,द (रंग, रूप, आकार एवं चमक के लिये) श्रेणी में विभाजित किया तब पाया कि 'अ' श्रेणी में 30 प्रतिशत, 'ब' श्रेणी में 30 प्रतिशत, 'स' श्रेणी में 30 प्रतिशत तथा 'द' श्रेणी में 10 प्रतिशत उपज रखी जा सकती है। ठीक इसके विपरीत जब वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से पैदा उपज का अ,ब,स,द श्रेणीकरण किया गया, तब पाया कि 'अ' श्रेणी में 60 प्रतिशत, 'ब' में 30 प्रतिशत एवं 'स' श्रेणी में 10 प्रतिशत उपज मिली है। जिन किसानों के यहां यह प्रयोग किये गये, उन्होने अपनी फसल के लिए 20–60 प्रतिशत तक अधिक दाम मिलने की बात को भी स्वीकार किया है।

चारे वाली फसलों में 2–3 मैट्रिक टन प्रति हेक्टेयर की दर से वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से 50 से 100 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि देखी गई है। इसी के साथ एक प्रमुख उपलब्धता यह रही कि पशुपालकों द्वारा पशुओं के स्वास्थ्य में अच्छे सुधार की बात भी कही गई है।

फूलों की खेती करने वाले कृषकों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग (1–2 मैट्रिक टन प्रति हेक्टेयर की दर) से 25–100 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि, फूलों के रंग में निखार एवं चमक के बारे में बताया है। गुलाब में भण्डारण क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ फूलों की कीमत में भी वृद्धि हुई है।

बागवानी में सबसे बड़ा असर यह देखा गया है कि जहां दीमक की वजह से फलों के पेड़ नहीं लग पा रहे थे, वहां वर्मीकम्पोस्ट ने फलों के बगीचे लगा दिये हैं। फलों वाले बाग में वर्मीकम्पोस्ट के कई प्रकार के प्रयोग किये गये । सबसे पहले वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बहुत पुराने आम के बागों में किया गया। इसमें देखा गया कि ऐसे पेड़ों पर भरपूर मात्रा में आम लगने लगे हैं जिनको पहले काटने की सोची जा रही थी। 5–10 वर्ष पुराने फलों के बागों में नीबूं, अनार, अमरूद, चीकू, आम, आंवला इत्यादि के लिए 5–10 किलो प्रति पेड़ की दर से वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग लाभकारी रहा। फलों के पेड़ में सामान्य वार्षिक छंटाई के पश्चात्

तथा फूल आने के समय वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग को अधिक लाभदायक पाया गया। नये फलों के पौधों की नर्सरी एवं खेत में लगाये जाने के समय ढ़ाई से पांच किलो प्रति पेड़ की दर से वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करने से कम पानी की आवश्यकता हुई एवं वृद्वि भी अच्छी हुई।

फलों के बाग विकसित करने के क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट एवं कुछ अन्य तकनीकों के उपयोग से ऐसी विधि विकसित की गई है जिनके द्वारा अब नये बाग लगाने पर लगभग आधे समय में फलों की पैदावार शुरू की जा सकती है।

बागवानी के क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से ना सिर्फ उत्पादन में वृद्धि किया जाना संभव हुआ है अपितु एक बड़ा फायदा उपज की गुणवत्ता में वृद्धि का रहा है। राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार आज उपभोक्ताओं की सबसे बड़ी शिकायत गुणवत्ता की है। लगभग सभी का कहना है कि फल–सब्जियों में कोई स्वाद नहीं रहा। वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से इस समस्या का निदान किया जाना संभव है।

वर्मीकम्पोस्ट ने गुलाब की खेती में आमदनी बढ़ाई

गांव बेरी के श्री मदन लाल ने अपने 75 बीघे खेत में से 3 बीघा में गुलाब के फूल लगाये। इस फसल में वो अपने यहां उपलब्ध गोबर एवं रसायनिक उर्वरक काम में लेता था। वर्ष 2000 में मदन लाल ने 100 किलो वर्मीकम्पोस्ट खरीद कर, 50 गुलाब के पौधों में निराई–गुड़ाई करके डालदी और पानी दे दिया। 5–7 दिनों बाद उसे इन 50 पौधों की बढ़वार में काफी अन्तर दिखाई दिया। इन पौधों में नई कोपलें निकलना शुरू हो गई। मदन लाल के अनुसार रसायनिक उर्वरकों ने यह प्रभाव कभी नहीं दिखाया।

मदनलाल ने बताया कि मैं तो इसे साधारण गोबर की खाद की तरह ही समझता था परन्तु ये तो इससे कई गुणा अधिक लाभकारी है। पहले इनमें 15 से 20 कलियां आती थी अब 50 के लगभग आने लगी हैं। उसने फिर 500 किलो खाद खरीद कर गुलाब के 3 बीघा खेत में डाली। इन गुलाबों का रंग अच्छा आया एवं बाजार में इनका भाव भी 20 रू प्रतिकिलो अधिक मिला। मदन लाल ने बताया कि पहले गुलाब के एक पौधे में 100 से 150 फूल ही लगते थे किन्तु वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के बाद ये 200 से 250 हो गये। उसने वर्तमान में 10 बीघा खेत में गुलाब की खेती कर रखी है।

मदनलाल ने वर्मीकम्पोस्ट से प्राप्त लाभ को देखते हुए अपने खेत पर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन हेतु 20' X 3' आकार की 8 बेड्स् लगा ली है। उसका कहना है कि भविष्य में वह बागवानी में अधिक से अधिक वर्मीकम्पोस्ट की मात्र का उपयोग करेगा। मदनलाल ने अपने खेत के गुलाब बेच कर इस वर्ष रू 200000 की आमदनी की है। जबकि पिछले वर्ष यह राशि रू 100000 भी नहीं थी।

मदनलाल के द्वारा दिये गये साक्षात्कार का सारांश

वर्मीकम्पोस्ट से तैयार आंवले के पौधों की नर्सरी

नियाम–जयपुर में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से विकसित उद्यान

यूनिट 8.5 बगीचों–वृक्षारोपण में वर्मीकम्पोस्ट

पर्यावरण के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता, शहरी लोगों के घरेलू बगीचे लगाने के शौक एवं बड़े संस्थानिक क्षेत्रों में लगाये जाने वाले बाग–बगीचों ने सही मायने में वर्मीकम्पोस्ट तकनीक के विकास में अहम् भूमिका निभाई है। हमारे देश में ही नहीं अपितू पूरे विश्व में अधिकतर लोगों द्वारा वर्मीकम्पोस्ट का बहुत छोटे स्तर पर उत्पादन किये जाने के कारण वर्मीकम्पोस्ट का सबसे अधिक उपयोग घरेलू बाग–बगीचों के लिए ही किया गया है। खेती की तुलना में इस क्षेत्र में अधिक उपयोगिता का एक अन्य कारण शहरी क्षेत्रों के लोगों द्वारा वर्मीकम्पोस्ट की अधिक कीमत देने की क्षमता का भी रहा है।

प्रारम्भिक दौर में छोटे स्तर पर उत्पादन करने वाले लोगों ने स्वयं अपने उपयोग में लेने हेतु ही वर्मीकम्पोस्ट इकाइयां लगाई और उन्होने वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग भी घरेलू बाग बगीचों के लिए किया। इन्हीं में से कुछ लोगों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मिलने वाले लाभ से प्रोत्साहित होकर जब कुछ अधिक उत्पादन प्रारम्भ किया तब उसकी बिक्री अपने आस–पड़ौस में एवं बड़े शहरों में करने लगे। आज भी वर्मीकम्पोस्ट के कुल उत्पादन का लगभग 80–85 प्रतिशत भाग का उपयोग बाग–बगीचों के लिए ही होता है।

वाणिज्यिक स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन का प्रारम्भ गत् 2–3 वर्षों में ही हुआ है। इन इकाईयों के उत्पादन का बड़ा भाग बाग–बगीचों के लिए ही उपयोग में लाया जा रहा है। स्वयं मोरारका फाउण्डेशन द्वारा गत् 5 वर्षों में उत्पन्न वर्मीकम्पोस्ट का 50 प्रतिशत से अधिक उपयोग बाग–बगीचों एवं वृक्षारोपण कार्यों के लिए ही किया गया है।

बाग–बगीचों, नई एवं पुरानी लॉन आदि में 100–200 ग्राम वर्मीकम्पोस्ट प्रति वर्गफुट की दर से काम में लेने पर किसी भी प्रकार की खरपतवार नहीं होती। लॉन की बढ़वार एवं रंग अच्छा हो जाता है। नियंमित रूप से दिये जाने वाले पानी की आवश्यकता में भी 30–40 प्रतिशत तक कमी की जा सकती है।

फुलवारी, झाड़ीनुमा वृक्ष, सजावटी पौधे, गुलाब, चमेली, चंपा इत्यादि में 200 ग्राम प्रति पौधे की दर से वर्ष में एक बार वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करने से बाग–बगीचों की रौनक बढ़ जाती है। वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से फूलों के आकार, रंग एवं चमक में अप्रत्याशित सुधार होता है। पेड़ों की पत्तियां सघन हो जाती हैं और कई नई डालियां फूटने लगती हैं।

सामान्य उपयोग के अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विपरीत परिस्थतियों में बाग–बगीचों के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। जयपुर में राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान के 55 एकड क्षेत्र का विकास पूर्णतया वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से ही किया जा सका है। इस क्षेत्र में पहले सिर्फ मूंज एवं कंटीली झाड़ियां के अलावा और कोई भी वनस्पति नहीं उगती थी। एकदम रेतीली जमीन, अत्याधिक क्षारीयता एवं अमानीशाह नाले के पास स्थित इस क्षेत्र में पानी के खारेपन के कारण पहले 3 वर्षों तक बागवानी विकास के सभी प्रयास असफल सिद्ध हुए। जब इस क्षेत्र में 20 मैट्रिक टन प्रति वर्ष उत्पादन क्षमता की नैडेप खाद एवं 40 टन प्रति वर्ष उत्पादन क्षमता की वर्मीकम्पोस्ट इकाई लगाई गई तो मात्र दो वर्षों में ही 55 एकड़ केम्पस का सम्पूर्ण विकास एक उदाहरण बन गया। 300 से अधिक प्रजातियों के 10,000 वृक्ष, 500 से अधिक प्रजातियों के फूल एवं करीब 3,00,000 वर्ग फुट क्षेत्रफल में लॉन से सुसज्जित केम्पस आज किसी का भी मन मोहने लायक बन गया है।

ठीक इसी प्रकार रीको के सीतापुरा औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य तकनीकों से किये गये वृक्षारोपण के सभी प्रयास विफल रहे। इस क्षेत्र की एकदम खारी एवं गाढ़ी जमीन में दीमक का अत्यधिक प्रकोप एवं खारेपन की समस्याएं थीं। इन समस्याओं को देखते हुए वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से नर्सरी विकास करते हुए एक ऐसी तकनीक का विकास किया गया जिसके कारण मात्र 2 वर्षों में एक लाख से अधिक विभिन्न प्रजातियों के वृक्ष 15–30 फुट की ऊंचाई में लहलहा रहे हैं।

सूखा संभावित क्षेत्रों में चारागाह विकास एवं एग्रो फोरेस्ट्री के तहत भी अब तक लगभग 300 स्थानों पर वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से सघन वृक्षारोपण एवं चारे के उत्पादन में वृद्धि के उदाहरण विद्यमान है।

शहरों में घरेलू स्तर पर लगाये गये बगीचों में कई वर्षों तक पुरानी मिट्टी का उपयोग किया जाता है। इस मिट्टी में जागरूक लोग गोबर की खाद अवश्य डालते रहते हैं, लेकिन फिर भी कुछ ही वर्षों बाद पेड़–पौधों की रौनक कम हो जाती है। गोबर की खाद के साथ खरपतवार एवं कई प्रकार के नुकसान करने वाले जीवाणु, विशेषतः दीमक इत्यादि का प्रकोप होने लगता है। इन घरेलू बगीचों में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बहुत लाभदायक होता है। बगीचे के कुल क्षेत्रफल के आधार पर प्रतिवर्ग फुट एक किलो वर्मीकम्पोस्ट पौधों के लिये आवश्यक सभी पोषक तत्व उपलब्ध करा देती है। वर्मीकम्पोस्ट फूलों के पौधों के लिये आवश्यक सभी अणुपोषक तत्व उपलब्ध करा कर उनमें नई जान डाल देती है।

सैंकड़ों लोगों ने वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से गुलाब के पौधों में आये परिणाम देख कर अब इसके अलावा किसी भी अन्य खाद को काम में न लेने की कसमें खा रखी हैं।
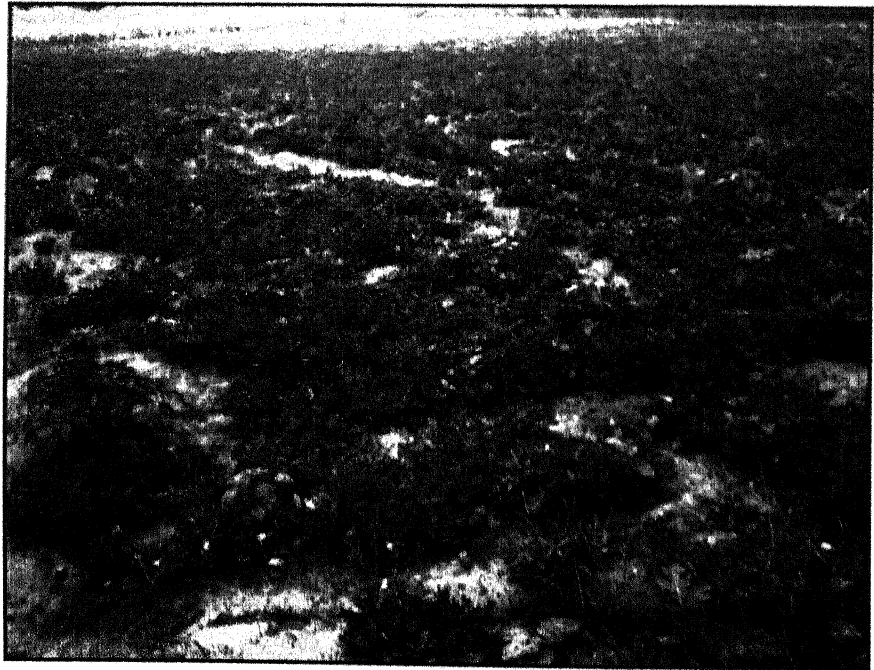
बिना वर्मीकम्पोस्ट एवं वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से
मूंगफली की फसल का तुलनात्मक चित्र
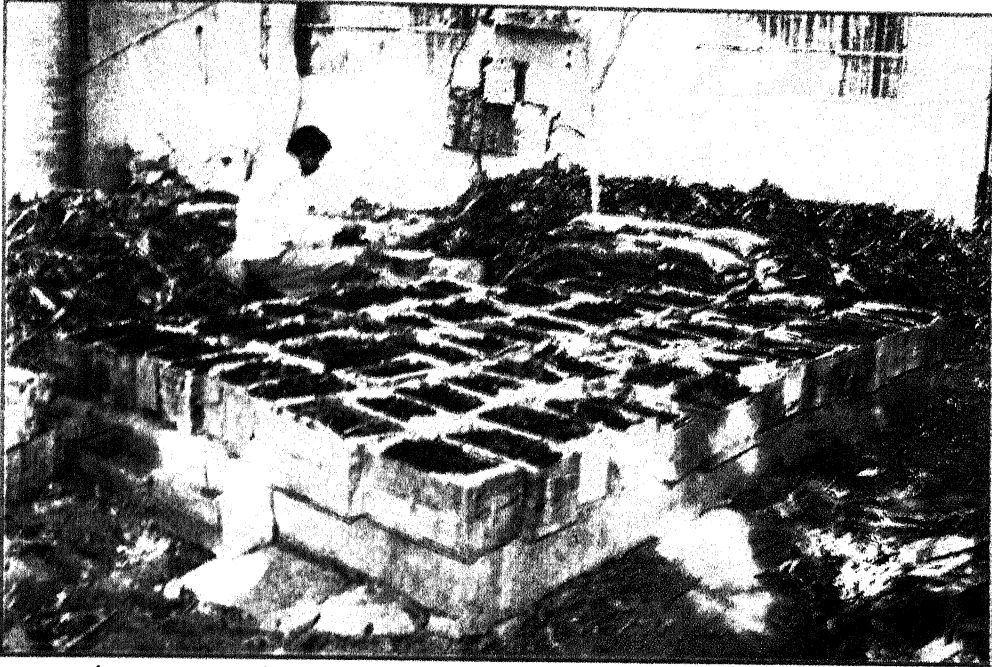
मोरारका फाउण्डेशन के दुर्गापुरा रिसर्च सेन्टर से केचुओं को बाहर भेजने के लिये की गई पैकिंग–लकड़ी के डिब्बों में केचुओं एवं गोबर का मिश्रण

यूनिट 8.6 वर्मीकम्पोस्ट उपयोग के मार्गदर्शक सिद्धांत

गत् 25–40 वर्षों से किसानों द्वारा लगातार रसायनिक खाद इस्तेमाल की जाती रही है, अतः जैसे ही किसान वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग प्रारम्भ करना चाहेंगे, उन्हें नये सिरे से रसायनिक खादों के उपयोग की मात्रा, विधि एवं लागत की तुलना वर्मीकम्पोस्ट से करनी होगी। जैसा कि पहले लिखा गया है कि हम जितनी रसायनिक खाद खेत में डालते हैं, उसमें से कुछ भाग ही पेड़–पौधों द्वारा काम में ली जाती है, शेष वातावरण में ही नष्ट हो जाती है। पेड़–पौधों द्वारा उपलब्ध पोषक तत्वों में से काम में लिये जाने वाले पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता के आधार पर ही वर्मीकम्पोस्ट की उपयोगिता देखी जानी चाहिये।

हम यहां सबसे पहले सामान्य तौर पर काम में लिये जाने वाले रसायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता के आधार पर लागत का आंकलन दे रहे हैं।

यूरिया

- किसी खेत में 100 किलो यूरिया प्रति हैक्टर डाला गया।
- यूरिया में 46 प्रतिशत नाइट्रोजन पोषक तत्व के रूप में होती है।
- यूरिया की सामान्य बाजार कीमत रू. 4.50 प्रतिकिलो है।
- इसलिये यूरिया में उपलब्ध पोषक तत्व नाइट्रोजन की कीमत रू. 9.80 प्रतिकिलो हुई।
- खेत में रसायनिक रूप में उपलब्ध कराये जाने वाले नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता यानि पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाली नाइट्रोजन की मात्रा 15 से 40 प्रतिशत और औसत 20 प्रतिशत होती है।
- अतः पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाली **नाइट्रोजन की कीमत रू. 49.00 प्रतिकिलो** आती है।

डी.ए.पी.

- किसी खेत में 100 किलो डीएपी प्रति हैक्टर डाला गया।
- डीएपी में 18 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 46 प्रतिशत फॉस्फोरस पोषक तत्व के रूप में होते हैं।
- डीएपी की सामान्य बाजार कीमत रू. 8.50 प्रतिकिलो है।
- इसलिये डीएपी में उपलब्ध पोषक तत्व नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की सम्मिलित कीमत रू. 13.30 प्रतिकिलो हुई।
- खेत में रसायनिक रूप में उपलब्ध नाइट्रोजन की औसत उपयोग क्षमता 20 प्रतिशत तथा फास्फोरस की 15 प्रतिशत होती है।
- अतः पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाले पोषक तत्व (**नाइट्रोजन एवं फास्फोरस**) **की कीमत रू. 81.10 प्रतिकिलो** आती है।

सिंगल सुपर फास्फेट (एस.एस.पी.)

• किसी खेत में 100 किलो एस.एस.पी. प्रति हैक्टर डाला गया।
• एस.एस.पी. में 16 प्रतिशत फास्फोरस पोषक तत्व के रूप में होता है।
• एस.एस.पी. की सामान्य बाजार में कीमत रू. 2.65 प्रतिकिलो है।
• इसलिये एस.एस.पी. में उपलब्ध पोषक तत्व फास्फोरस की कीमत रू. 16.25 प्रतिकिलो हुई।
• खेत में रसायनिक रूप में उपलब्ध फास्फोरस की उपयोग क्षमता 10 से 25 प्रतिशत एवं औसत 15 प्रतिशत होती है।
• अतः पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाले पोषक तत्व **फास्फोरस की कीमत रू.108.22 प्रतिकिलो** आती है।

कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट (सी.ए.एन.)

• किसी खेत में 100 किलो सी.ए.एन. प्रति हैक्टर डाला गया।
• सी.ए.एन. में 20 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है।
• सी.ए.एन. की सामान्य बाजार कीमत रू. 4.20 प्रतिकिलो है।
• इसलिये सी.ए.एन. में उपलब्ध पोषक तत्व नाइंट्रोजन की कीमत रू. 21.00 प्रतिकिलो हुई।
• भूमि में रसायनिक रूप में सी.ए.एन. से उपलब्ध नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता औसत 20 प्रतिशत होती है।
• अतः पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाले **नाइट्रोजन की कीमत रू. 105.00 प्रतिकिलो** आती है।

म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम.ओ.पी.)

• किसी खेत में 100 किलो एम.ओ.पी. प्रति हैक्टर डाला गया।
• एम.ओ.पी. में 60 प्रतिशत पोटाश पोषक तत्व के रूप में होता है।
• एम.ओ.पी. की सामान्य बाजार कीमत रू. 4.60 प्रति किलो है।
• इसलिये एम.ओ.पी. में उपलब्ध पोटाश की कीमत रू. 7.60 प्रति किलो हुई।
• भूमि में उपलब्ध पोटाश की उपयोग क्षमता औसत 70 प्रतिशत होती है।
• अतः पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाले **पोटाश की कीमत रू. 10.90 प्रतिकिलो** आती है।

जिस प्रकार हमने रसायनिक उर्वरकों की औसत उपयोग क्षमता के आधार पर पेड़–पौधों द्वारा काम में लिये जाने वाले पोषक तत्वों की लागत के बारे में जाना। इसी प्रकार हमें वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं उपयोग क्षमता के आधार पर लागत के बारे में आंकलन करना होगा। इस सन्दर्भ में एक बड़ी समस्या वर्मीकम्पोस्ट की बाजार कीमत का आंकलन करने की है। चूंकि रसायनिक उर्वरक स्वयं किसानों द्वारा नहीं बनाये जाते हैं, और उनके मूल्य नियंत्रण एवं छूट की व्यवस्था स्वयं सरकार द्वारा की गई है इसलिये उनकी एक

निश्चित सामान्य बाजार दर प्रचलित है। लेकिन वर्मीकम्पोस्ट का अभी न तो इतना उत्पादन है और न ही इसकी मूल्य नियंत्रण की कोई प्रणाली विकसित की गई है।

स्वयं किसानों द्वारा वर्मीकम्पोस्ट खाद बनाने पर सभी खर्चे जोड़ने से भी अधिकतम लागत रू. 1.00 प्रतिकिलो से अधिक नहीं आती है। अब वर्मीकम्पोस्ट बाजार में भी बिक्री की जा रही है। 50 किलो की पैकिंग के दाम रू. 2000 से 2500 प्रतिटन तक लिये जा रहे हैं। अतः इस अध्याय में किये गये विश्लेषण के लिये हमने औसत रू. 1500 प्रतिटन की कीमत को आधार माना है।

वर्मीकम्पोस्ट

- किसी खेत में 1000 किलो वर्मीकम्पोस्ट प्रति हैक्टर डाली गई।
- वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा निम्न प्रकार है।

  नाइट्रोजन – 1.50 से 2.50 प्रतिशत तक (औसत 2.00 प्रतिशत)
  फास्फोरस – 1.25 से 2.25 प्रतिशत तक (औसत 1.75 प्रतिशत)
  पोटाश – 1.00 से 3.00 प्रतिशत तक (औसत 1.50 प्रतिशत)
- वर्मीकम्पोस्ट में अणु एवं सूक्ष्म पोषक तत्व (सभी प्रकार के मिलाकर) – 0.50 से 1.50 प्रतिशत तक (औसत 1.00 प्रतिशत) होते हैं।
- इसलिये वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध सभी पोषक तत्वों की मात्रा 62.50 किलो हुई।
- खेत में वर्मीकम्पोस्ट के रूप में उपलब्ध कराये जाने वाले पोषक तत्वों में निरन्तर वृद्धि होती है। फसल के 90–120 दिनों के अन्तराल में जीवाणुओं द्वारा उपलब्ध कराये गये पोषक तत्वों की मात्रा भी 1.50 से 2.50 प्रतिशत (औसत 2.00 प्रतिशत) तक होती है।
- इस प्रकार वर्मीकम्पोस्ट द्वारा कुल पोषक तत्वों की उपलब्धता 82.50 किलो हुई।
- अब तक प्राप्त परिणामों के आधार पर वर्मीकम्पोस्ट द्वारा उपलब्ध कराये गये पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता 60 से 70 प्रतिशत तक होती है, अतः पौधों द्वारा उपयोग किये गये पोषक तत्वों की मात्रा 53.60 किलो हुई।
- औसत 1500 रू. प्रति टन की लागत से वर्मीकम्पोस्ट द्वारा उपलब्ध एवं पौधों द्वारा उपयोग किये गये **पोषक तत्वों की कीमत रू. 28.00 प्रतिकिलो** आती है।

हमें वर्मीकम्पोस्ट द्वारा कुछ अन्य लाभ भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं।

- वर्मीकम्पोस्ट खेत में दीमक एवं अन्य नुकसान करने वाले जीवाणुओं को नष्ट कर देती है, इससे कीटनाशक की लागत में कमी आती है।
- वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खरपतवार की समस्या पर नियंत्रण होता है और मजदूरी की लागत में कमी आती है।

- वर्मीकम्पोस्ट इस्तेमाल के बाद 2–3 फसलों तक पोषक तत्वों की उपलब्धता बनी रहती है, इससे अगली फसल में काम में लिये जाने वाले पोषक तत्वों की मात्रा एवं लागत में कमी होती है।
- वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मिलने वाली उपज की गुणवत्ता के बेहतर होने के कारण उसका दाम अधिक मिलता है, इससे किसानों को मिलने वाले शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है।
- वर्मीकम्पोस्ट पूर्ण रूप से पर्यावरण मित्र विधि है, जबकी रसायनिक उर्वरकों के निर्माण में उर्जा के उपयोग से लेकर इस्तेमाल तक हर स्तर पर प्रदूषण की समस्या पैदा होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसायनिक उर्वरकों के रूप में पोषक तत्वों के उपयोग की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग किसी भी दृष्टि से अधिक लाभदायक है। लेकिन क्या सभी किसानों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लायक वर्मीकम्पोस्ट की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है? शायद नहीं, अतः यह जरूरी है कि वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग की एक ऐसी विधि का विकास किया जाये जिससे किसानों के लिए अपने वर्तमान उत्पादन के स्तर को बनाये रखना संभव हो सके और सीमित उपलब्धता के होते हुए भी अधिक से अधिक किसान इसका लाभ ले सकें। इसके लिये दो प्रकार के विकल्प हमारे सामने हैं।

विकल्प - 1 अधिकतर प्रगतिशील किसानों द्वारा रसायनिक खाद एवं कूड़े–कचरे की देशी खाद (सम्मिलित तरीके से) का उपयोग किया जा रहा है। पहले विकल्प में किसान अपनी देशी खाद के स्थान पर वर्मीकम्पोस्ट उपयोग को अपना सकते हैं। सामान्य तौर पर बनाई जाने वाली देशी खाद में सभी प्रकार के पोषक तत्वों का योग मिलाकर करीब एक प्रतिशत होता है। अतः किसी खेत में 1000 किलो देशी खाद डालने पर अधिकतम् 10 किलो पोषक तत्व उपलब्ध हो सकते हैं। अब यह किसान यदि इस कूड़े–कचरे से वर्मीकम्पोस्ट बना लें तो उसके पास करीब 600 से 700 किलो वर्मीकम्पोस्ट उपलब्ध हो जायेगी जिसके द्वारा वह करीब 30 किलो पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध करा सकता हैं। अतः किसान रसायनिक खाद के उपयोग को बनाये रखकर अधिक क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट उपयोग कर सकता हैं।

अब तक किये गये प्रयोगों में रसायनिक उर्वरक के उपयोग को समान रखकर देशी खाद एवं वर्मीकम्पोस्ट के मिश्रण के उपयोग से मिले परिणाम सबसे अधिक लाभदायक रहे हैं।

विकल्प - 2 : कई जगहों पर रसायनिक खाद के अत्यधिक उपयोग के कारण अब कई प्रकार की समस्याऐं खड़ी हो गई हैं। ऐसे स्थानों पर वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग को बढ़ावा देने पर किसान बहुत लाभदायक स्थिति में लाये जा सकते हैं। इन स्थानों पर किसान को सबसे पहले अपनी कुल रसायनिक उर्वरकों की मात्रा के उपयोग को पोषक तत्वों की मात्रा एवं उसके बाद पौधों द्वारा उपयोग की गई मात्रा की गणना करनी होगी। अब किसानों द्वारा इसमें से करीब एक तिहाई मात्रा के बराबर पोषक तत्वों के लिये वर्मीकम्पोस्ट उपयोग करने पर बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार वर्तमान स्थिति में भी वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेती में एक नई क्रांति की शुरूआत हो सकती है।

अभ्यास 8

1. क्या आप अपने स्तर पर की जाने वाली कृषि की वार्षिक योजना बनाते हैं? हाँ/नहीं कृपया खरीफ की फसलें, उनका क्षेत्रफल एवं गत् वर्ष काम में लिये गये रसायनिक उर्वरक एवं देशी खाद की मात्रा का विवरण लिखें।

1. ....

....

2. ....

....

3. ....

....

4. ....

....

5. ....

....

2. क्या आप इस वर्ष काम में ली जाने वाली रसायनिक खाद की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट काम में लेना चाहेंगे? हाँ/नहीं, यदि हाँ तो क्या आप वर्मीकम्पोस्ट की आवश्यक मात्रा की गणना कर सकते हैं? ....

....

....

....

....

3. अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

मोड्यूल – 9
र्मी कल्चर – नई दिशाऐं

युनिट ९.१ सूखा निवारण-जलग्रहण क्षेत्र विकास

युनिट ९.2 शहरी ठोस कचरा प्रबंध

युनिट ९.3 ओर्गेनिक फार्मिंग

युनिट ९.4 स्वरोजगार

युनिट ९.5 गौशालाओं के लिए वरदान

गुलाब के पौधों की कतार के बीच वर्मीकम्पोस्ट बेड

युनिट 9.1 सूखा निवारण–जलग्रहण क्षेत्र विकास

कम वर्षा वाले क्षेत्र हमेशा से ही पारिस्थितिक संतुलन के हिसाब से कमजोर रहते आये है। पहले कम आबादी होने से इन क्षेत्रों में प्रकृति पर दबाव कम था। सामान्यतया पैदा होने वाली वस्तुओं एवं पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखनी वाली दिनचर्या, खानपान, रहन–सहन एवं जीवनयापन के तौर तरीकों के बीच सामंजस्य बना रहा। धीरे–धीरे विज्ञान के विकास के साथ मानव ने अपना विकास बहुत तेज गति से कर डाला। इसी के साथ उसने अपने वातावरण एवं पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड दिया। विज्ञान के विकास ने हमें ऐसी कई सुविधाएं उपलब्ध करा डाली जिनके द्वारा हम प्रकृति का अधिकाधिक दोहन करते चले गये। धीरे धीरे हमारी मांगे जमीन की उत्पादन क्षमता से कई गुणा अधिक हो गई। विज्ञान की मदद से जब सब कुछ ठीक ठाक हो यानि उस क्षेत्र में वर्षा औसत या उससे अधिक हो तो कोई समस्या नहीं होती है। लेकिन मात्र 20 प्रतिशत की कमी होने पर ही सारी उत्पादन योजना फेल हो जाती है। 20–40 प्रतिशत वर्षा में कमी होने पर अन्न उपजाना तो बहुत दूर की बात है खेतों से चारा भी नहीं मिल पाता। चारे की कमी पशुपालन के व्यवसाय पर विपरीत प्रभाव डालती है जिसका असर कम वर्षा वाले क्षेत्रों के हर प्राणी पर अकाल के रूप में देखा जा सकता है।

विज्ञान ने बिजली उपलब्ध कराई और भूमिगत जल के दोहन के मार्ग को दिखाया। परिणामस्वरूप भूमिगत जल का इतना दोहन होने लगा कि अब पानी पीने के लिए भी मिलना मुश्किल हो गया है। एक अध्ययन के मुताबिक राजस्थान के 11 मरूस्थलीय जिलों में रहने वाली कुल आबादी का मात्र 3 प्रतिशत तबका कुल भूमिगत जल के 90 प्रतिशत से अधिक जल का उपयोग कर रहा है। खेती के लिए उपलब्ध कुल जमीन में से 10 प्रतिशत जमीन का उपयोग सिंचित फसलों को पैदा करने में किया जा रहा है। सिंचित खेती में वैज्ञानिकों द्वारा कोई ऐसी खोज नहीं की जा सकी है जिससे पानी की बहुत अधिक मात्रा में बचत की जा सके। स्प्रिंकलर सिस्टम द्वारा पानी की कुछ बचत जरूर की जा रही है लेकिन ड्रिप सिस्टम अब भी कामयाब होता दिखाई नहीं दे रहा।

वर्मीकम्पोस्ट खेती की सभी समस्याओं को हल करने में सक्षम हैं। तीन वर्षो के लगातार प्रयास द्वारा मोरारका फाउण्डेशन ने कम वर्षा वाले क्षेत्रों की सिंचित एवं असिंचित दोनो ही प्रकार की खेती से विपरीत परिस्थितियों में भी भरपूर लाभ लिये जा सकने वाली कई खोजें की है। आज झुंझुनू, जयपुर, अलवर इत्यादि के बहुत बड़े क्षेत्र में किसानों द्वारा बहुत कम वर्षा तथा सिंचित फसलों में 2 से 3 सिंचाई की कमी के बावजूद भी भरपूर फसल ली जा रही है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में आमतौर पर कम पानी में पैदा की जा सकने वाली लम्बी अवधी की फसलों की किस्म ही बोयी जाती थी। लेकिन गत् कुछ वर्षों में वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी कम अवधि की फसलों का विकास किया गया जिनसे यह उम्मीद बनी कि इन फसलों को उगाने से एक या दो वर्षा होने पर भी उत्पादन लिया जा सकेगा। विचार तो बहुत अच्छा था लेकिन कुछ ही वर्षों बाद यह देखने में आया कि इन फसलों द्वारा बहुत शीघ्र जमीन के सभी पोषक तत्व सोख लिये गये। इस स्थिति में यदि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अपने पास उपलब्ध सभी प्रकार के कचरे/गोबर इत्यादि से वर्मीकम्पोस्ट बना ली जाये तो वर्मीकम्पोस्ट ना सिर्फ सभी पोषक तत्व उपलब्ध करायेगी अपितु जमीन की जल-संधारण क्षमता को बढाकर वर्षा में 40 प्रतिशत तक कमी होने पर भी फसलों का सुनिश्चित उत्पादन दे सकेगी।

पौधों द्वारा जल ग्रहण करने की प्रक्रिया पर दृष्टि डालें तो पायेगें कि पौधों की जड़ों द्वारा पानी को ग्रहण करने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। बारानी खेती में जहां सिर्फ वर्षा से मिलने वाले जल पर आधारित फसल ली जाती, वहां एक वर्षा से दूसरी वर्षा के बीच बहुत अधिक अन्तराल होने पर फसलों को झटका लगता है और उनकी वृद्धि रूक जाती है। ठीक इसी प्रकार दाना बनने के दौरान पानी की कमी हो तब भी पैदावार पर विपरीत प्रभाव पडता है। इन दोनों ही स्थितियों में जमीन में उचित मात्रा में ओर्गेनिक मैटर हो तो जमीन में पानी की उपलब्धता बनी रहने से फसलों पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

वर्मीकास्टिंग जब खेत में डाली जाती है तो रेतीली जमीन में मिट्टी के कणों को आपस में बांधकर जमीन की पानी सोखने की क्षमता को बढ़ा देती है। चिकनी मिट्टी में वर्मीकम्पोस्ट के कण मिट्टी के कणों के बीच में स्थान बनाकर जल निकास क्षमता को बढ़ा देते हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की जमीन में वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से जमीन की जल संधारण क्षमता बढाई जा सकती है।

केचुएं द्वारा बनाई गई वर्मीकास्टिंग केचुएं के शरीर में इस प्रकार पीसी जाती है कि कोई भी कचरा हो, एकदम बारीक कणों के रूप में बाहर आता है। वर्मीकास्टिंग के प्रत्येक कण पर केचुएं के पेट में पाये जाने वाले म्यूकस का आवरण चढ़ा होता है। इस आवरण के कारण कास्टिंग के प्रत्येक कण में बहुत बड़ी मात्रा में पानी सोखने की क्षमता आ जाती है। कई प्रयोगों के पश्चात् यह देखा गया है कि वर्मीकास्टिंग अपने आयतन से कई गुणा अधिक पानी सोख सकती है।

वर्मीकास्टिंग न सिर्फ लगातार नमी बनाये रखती है बल्कि जमीन में सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधि को भी बढ़ा देती है। यह सूक्ष्म जीवाणु जमीन में पहले से उपलब्ध ओर्गेनिक मैटर को खाकर जमीन में फसल के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों को घुलनशील अवस्था में उपलब्ध करा देते हैं। कई वर्षो के लगातार प्रयोग से जमीन की नैसर्गिक उपजाऊ क्षमता लौट आती है और धीरे-धीरे कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सूखे की समस्या से आसानी से निपटा जा सकता है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अन्न, दलहन एवं तिलहन की फसलों के साथ चारे वाली फसलों, ईंधन एवं पशुचारे वाले वृक्षों एवं फलदार पेड़ों के विकास में भी वर्मीकम्पोस्ट बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चरागाह की जमीनों में घास के बीज को वर्मीकम्पोस्ट के साथ पेलाटाइज करने से चारे की फसल के अंकुरण में 200–300 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है। इसका प्रभाव बाद में चारे की बढ़वार में भी देखा गया है। निचले स्थानों पर जहां भी पानी भरता है (चाहे वह कुछ ही दिनों के लिए क्यों न हो) वहां पानी के तालाब के चारों तरफ की मेड पर इस प्रकार से घास का बीज लगाकर भरपूर चारे की फसल ली जा सकती है।

रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहां वाटरशेड डवलपमेंट के तहत खेतों की मेड़, कन्टूर बंडिग इत्यादि की जाती है वहां रेतीली मिट्टी होने के कारण बन्ड की लाइफ बहुत कम रहती है और थोड़े समय पश्चात् ही यह बन्ड ढ़ह जाते हैं। इन बन्डों पर किसी भी प्रकार की वनस्पति उपजाना एक टेड़ी खीर साबित होता है। इसलिए यदि इन बन्डों पर बनने के साथ वर्षा के पहले यदि घास का बीज या मूंजा वर्मीकम्पोस्ट के साथ लगा दिया जाये तो वह बहुत जल्दी अपनी जडें जमाकर बन्ड को मजबूती प्रदान कर देगा। जयपुर जिले के जमवारामगढ़ के सायपुरा वाटर शेड में इस प्रयोग के तहत देखा गया कि कंट्रोल की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट के पेलेटाइजेशन से कम से कम 10 गुना अधिक अंकुरण एवं वृद्वि हुई है।

रेगिस्तानी एवं सूखा प्रभावित क्षेत्रों में एक बड़ी समस्या वृक्षारोपण की होती है। इतनी बरसात होती नहीं कि प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वर्षा के पानी से पेड़ अपनी जड़े जमा सकें। कृत्रिम तरीके से दिया गया पानी बहुत खर्चीला साबित होता है। एक अन्य समस्या वृक्षारोपण को सुरक्षा प्रदान करने की भी होती है। मोरारका फाउण्डेशन द्वारा इन सभी समस्याओं को हल करने के लिये नर्सरी विकास की एक ऐसी विधि विकसित की गई है जिसमें वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से (रूट ट्रेनिंग व शूट प्रुनिंग के साथ) ऐसे पौधे विकसित किये जा सकते है जिनकी नर्सरी में ही 6–8 फुट तक की ऊंचाई प्राप्त कर ली जाती है। इन पौधों को उचित नाप के खड्डे एवं खाद के मिक्सचर द्वारा इस प्रकार लगाया जाता है कि मात्र दो या तीन महिनों में पेड़ अपनी जडें जमा लेते हैं। अच्छी ऊंचाई के कारण पेड़ों की सुरक्षा का समय एवं खर्च दोनों में बचत होती है। बहुत अधिक विपरीत परिस्थितियों में भी एक वर्ष में 4–5 बार पानी देने से ये पेड़ अपनी जगह पर मजबूती से स्थान बना लेते हैं।

शुरूआत में ही अधिक पत्तियों वाले पेड़ लगाने से एक अन्य फायदा वातावरण की नमी को हार्वेस्ट किये जाने का भी मिलता है। रेगिस्तानी इलाकों में वर्षा ऋतु के पश्चात बहुत कडाके

की ठंड पडती है। इस शीत ऋतु में वातावरण में आद्रता का प्रतिशत बढ़ जाता है। जमीन से 6–10 फुट की ऊंचाई तक पेड़ों की पत्तियों का तापमान एवं वातावरण के तापमान के फर्क से वायु की आद्रता पिघल कर पानी के रूप में पेड़ों को उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार रेगिस्तानी क्षेत्रों में वृक्षारोपण कार्य सुगमता से कराया जा सकता है।

इसी के साथ वर्मीकम्पोस्ट तकनीकी का उपयोग बागवानी में भी किया जा सकता है। फलदार पेड़ों (रेगिस्तानी इलाकों के लिये उपयुक्त प्रजातियां) की बहुत उच्च गुणवत्ता की नर्सरी वर्मीकम्पोस्ट द्वारा इस प्रकार तैयार की जा सकती है कि फल लगने के समय में आधी बचत की जा सके। अनार, अमरूद, आंवला, करौंदा, नींबू, बेर, बील, पपीता इत्यादि के ऐसे हजारों पौधे अब तक तैयार किये जा चुके हैं जिन्हें खेत/घर/बाड़े में लगाने के बाद आधे समय में ही फल लगने लगे हैं। पेड़ों को लगाने में भी वर्मीकम्पोस्ट एवं कुछ विशेष प्रकार की खल एवं बजरी के मिक्सचर से खड्डे भरने पर मात्र 150–200 लीटर कुल पानी (एक वर्ष में) में फलों के 8–10 पेड़ तैयार किये जा सकते हैं।

घरेलू स्तर पर मात्र 15 लीटर पानी प्रतिदिन के उपयोग से 100 वर्ग फुट जगह में प्रतिवर्ष रूपये 300/– के खर्च से 250 दिन तक लगातार आधा किलो औसत से सब्जी का उत्पादन किया गया है। इस थोड़े से क्षेत्र में विभिन्न नाप की प्लास्टिक की थैलियों में खाद+मिट्टी भर कर जमीन में बेड बनाकर उनमें सब्जी का उत्पादन लिया जा सकता है। सबसे पहले छोटी थैलियों में पत्ते वाली सब्जियां लगाई जाती हैं जैसे पालक, मेथी, धनियां, बथुआ इत्यादि। पत्ते वाली सब्जियों की 10–12 कटिंग लेने के बाद इन्हीं थैलियों में दूसरी सब्जियां जैसे प्याज, लहसुन, अदरक इत्यादि लगायी जा सकती हैं। सबसे अन्त में इन्हीं थैलियों में कटिंग से तैयार होने वाले पेड़ पौधों की कलम रोप कर नये पौधे तैयार कर लिये जाते हैं जिन्हें वर्षा ऋतु में अन्य स्थानों पर लगाया जा सकता है। थोड़ी बड़ी थैलियों में पहले गाजर, मूली, शकरकंद इत्यादि से प्रारम्भ कर बाद मे बेलों वाली सब्जीयां लगाई जा सकती है। इन थैलियों में अन्त में छायादार या फलों के बीज से तैयार होने वाले पौधे तैयार करे जाते हैं। तीसरे प्रकार की थैलियों में टमाटर, मिर्च, बैंगन गोभी इत्यादि की फसलें लेकर अन्त में बाजरा का बीज डालकर उसकी पौध तैयार की जा सकती है। बाजरे की इस पौध को पहली वर्षा के बाद खेत में लगाने से बहुत अच्छी फसल तैयार होती है।

वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से राजस्थान के कई सूखा प्रभावित क्षेत्रों में किसानो द्वारा अब तक जिस प्रकार के प्रयोग किये गये हैं उनसे यह साबित हो जाता है कि इस विषय में थोड़ी सी शोध के द्वारा बहुत बड़े स्तर पर अकाल प्रभावित लोगों को राहत मिल सकती है।

वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के लिये स्थापित सामुदायिक सुविधा केन्द्र

किसानों के साथ वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि पर चर्चा

युनिट 9.2 शहरी ठोस कचरा प्रबंध

वर्मीकम्पोस्ट के लिए कच्चे माल के बारे में लिखे गये अध्याय में शहरी क्षेत्रों में वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए मिलने वाले कचरे के बारे में लिखा है। कई लोगों का मानना है कि जब तक ठोस शहरी कचरे से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन नहीं किया जाता तब तक बड़े पैमाने पर वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन एवं प्रयोग करने की संभावनाएं नहीं बनेगी। शहरों से ना सिर्फ वर्मीकम्पोस्ट के लिए कचरा मिल सकता है अपितु ठोस शहरी कचरे के प्रबंध के लिए आवंटित बजट से वर्मीकम्पोस्ट इकाइयों की स्थापना के लिए आवश्यक पूंजी निवेश भी जुटाया जा सकता है।

सभी छोटे–बड़े शहरों में ठोस शहरी कचरा प्रबंध स्थानीय निकायों की एक बड़ी समस्या है। स्थानीय निकायों के कुल बजट का बड़ा भाग (80 प्रतिशत तक) इस व्यवस्था में खर्च किया जा रहा है फिर भी आज शहर में रहने वाला प्रत्येक नागरिक असंतुष्ट है। निरन्तर बिगडती हुई परिस्थितियों के चलते देश के सर्वोच्च न्यायालय ने इसे एक जन सुनवाई के तहत एक गंभीर समस्या माना और ठोस–शहरी कचरे के वैज्ञानिक प्रबंध के लिए समयबद्ध कार्यक्रम लागू करने के स्पष्ट निर्देश दिये हैं। इन निर्देशों के तहत 10 लाख से अधिक आबादी वाले सभी शहरों के स्थानीय निकायों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि वे अपने शहर में उत्पन्न कार्बनिक कचरे की कम्पोस्ट/वर्मीकम्पोस्ट बनाने की शीघ्र व्यवस्था करें। इस संदर्भ में यदि आज उपलब्ध तकनीकों एवं ठोस–शहरी कचरा निस्तारण की प्रचलित विधियों का विश्लेषण करे तो पायेंगे कि कोई भी ऐसी विधि नहीं है जिससे कचरा प्रबंधन का संतोषजनक हल निकाला जा सके।

ठोस शहरी कचरा प्रबंध के क्षेत्र में कई मूलभूत समस्याएं आती हैं। उनमें से पहली समस्या निचले स्तर पर विभिन्न प्रकार के कचरों के आपस में मिल जाने की है। दूसरी समस्या कचरे को बार–बार उठाने, खाली करने एवं कई बार परिवहन करने की है। एक अन्य छोटी समस्या कचरे के निष्पादन में लोगों के स्वभावगत विरोध की भी आती है। वर्मीकम्पोस्ट ही एकमात्र ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा इन सभी समस्याओं को हल किया जा सकता है। तीन वर्षों तक लगातार प्रयोग करने के पश्चात् पाया गया कि वर्मीकम्पोस्ट द्वारा ठोस शहरी कचरे (कार्बनिक पदार्थ) का इस तरह उपयोग किया जा सकता है कि एक बार के पूंजीगत् व्यय के पश्चात् उसके प्रबंधन का खर्च स्वयं वर्मीकम्पोस्ट इकाई निकाल सकती है। यदि ऐसा हो जाये तो किसी भी स्थानीय निकाय द्वारा किये जा रहे प्रबंधन में कचरे की मात्रा में आधी कमी लाई जा सकेगी और उसका खर्च भी आधा रह जायेगा।

अब तक शहरों में कचरा प्रबंधन की जो समस्याएं हैं उनके तहत कचरा उत्पादन के समय से लेकर उसके उठाने तक के समय में 2–5 दिन का अंतर होता है। परिणामतः कचरे का आयतन एवं वजन दोनों ही एक तिहाई रह जाते हैं। लेकिन जब शहरों में कचरा प्रबंधन की माकूल व्यवस्था कर दी जायेगी तब उत्पादन वाले दिन ही कचरा उठाया जायेगा तो वर्तमान में उपलब्ध कचरे की मात्रा में 3 गुणा तक वृद्धि हो जायेगी।

जयपुर शहर के लिए किये गये एक अध्ययन के अनुसार शहर में प्रतिदिन कुल 713 टन वर्मीकम्पोस्ट बनाये जाने लायक कचरा होता है जिसमें प्रमुखतया 200 टन पशुओं का गोबर, 168 टन फल सब्जी मंडी एवं बाजारों से, 164 टन होटल, रोस्टारेंट एवं उद्योगों से, 80 टन बाग–बगीचों एवं वृक्षों से तथा 101 टन घरेलू कचरे के रूप में उत्पन्न होता है।

किसी भी शहर के ठोस शहरी कचरे के प्रबंधन में पहली आवश्यकता कचरे को स्त्रोत पर अलग–अलग छटांई एवं इसके संग्रहण करने की होगी। आज भी ठोस शहरी कचरे के निष्पादन में होने वाले कुल खर्च में से आधा खर्च उसके परिवहन (300 रू प्रति मैट्रिक टन) पर किया जा रहा है। अतः यह जरूरी है कि कचरे का कम से कम परिवहन हो। इसके लिए क्षेत्रवार कचरा प्रोसेसिंग की जानी आवश्यक है (वर्मीकम्पोस्ट इकाई लगाने से कचरे को उत्पादन स्थल से सीधे ही वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ले जाया जा सकता है।) जयपुर शहर के वार्ड अनुसार किये गये कचरे की उपलब्धता एवं उसके लिए आवश्यक इकाईयों की गणना करने पर पाया गया कि पूरे शहर में कुल 23 इकाईयां जिसमें 10–30 टन प्रतिदिन एवं 400 इकाईयां जिनमें 1 टन प्रतिदिन कचरे का उपयोग कर वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सकती है।

इस प्रकार की इकाईयों में बहुत कम लागत पर उदाहरण के लिए 10 टन प्रतिदिन कचरे से वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए लगभग 11.47 लाख रू के पूंजी निवेश से 8 व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा। एक बार निवेश करने के पश्चात् इस प्रकार के कचरे की समस्या से हमेशा के लिए निजात पाई जा सकेगी। एक टन प्रतिदिन कचरे के उपयोग के लिए मात्र रू. 70 हजार का निवेश करना होगा और यह एक व्यक्ति के लिए रोजगार भी बनेगा।

सफाईकर्मी, उनके परिवार एवं समुदाय के लोगों के पास अभी तक अपना स्वरोजगार करने के बहुत अधिक विकल्प नहीं हैं। इस प्रकार की योजना लागू करने से सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों की पालना में शहरी कचरे के निष्पादन की समस्या हल होगी, अनुसूचित जाति के गरीब एवं बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलेगा एवं किसानों को उच्च गुणवत्ता की वर्मीकम्पोस्ट उचित दामों पर उपलब्ध हो जायेगी।

तालिका 20

जयपुर शहरी ठोस कचरा प्रबंधन–वर्मीकल्चर/कम्पोस्ट
कचरा निस्तारण संयत्र

S. No	Location and Area- Ward No. and Details	Waste Availability Per Day in Metric Ton	Main Processing Facility (Capacity)	Decentralized units		Remarks
				Number	Capacity per unit in MT	
1	22, 23 – Sanganer	8	10	Nil		Only one main unit
2	13 – Mansarovar	18	10	10	1	Main unit only for difficult material.
3	14, 21 –Durgapura, Jai Ambey , Mahaveer Nagar, Gopalpura	15	10	10	1	----do-----
4	25, 26 – Malviya Nagar, Jhalana	15	10	10	1	----do-----
5	28 – Jagatpura	6	10	Nil	-	Only one main unit
6	15, 19, 20 – Barkat Nagar, Tonk Phatak, Vasundhara, Mahesh Nagar,Kartarpura	17	10	10	1	Main unit only for difficult material.
7	11 – Shyam Nagar, Vivek Vihar, Devi Nagar, Govindpuri, Sodala some Part	18	10	10	1	------do-----
8	17 – Bais Godown, Civil lines, Ram Nagar	10	10	Nil	-	Only one main unit.
9	6, 35, 16 – Hathroi, Ashok Nagar, S-scheme, Lal Kothi	60	30	20	1	Bulk processing of Mandi waste at Durgapura (MF).
10	18, 27 – Bapu Nagar, Bajaj Nagar, Part of Gandhi Nagar	30	20	10	1	Bulk processing in Jhalana.
11	30, 32 – Tilak Nagar, Moti Doongari	27	10	20	1	Main unit for difficult material.
12	31, 32 – Rajapark, Sindhi Colony	45	10	40	1	-------do------
13	33, 34 – Adarsh Jagar,, Janta Colony	30	10	20	1	-------do------
14	4, 5 – Hasanpura, Gopalbari, Shanti Nagar, Laxmi Nagar	30	10	20	1	-------do------
15	3 – Vaishali Nagar, Vidyut Nagar, Sanjay Nagar, Hanuman Nagar	35	20 + 10	20	1	Bulk processing by main unit.
16	9 – Khatipura, Jhotwara	35	-	20	1	Bulk processing in above unit(15).
17	7, 8 – Bani Park, Subhash Nagar, Sindhi Camp	16	-	10	1	Bulk processing in unit (18).

S. No	Location and Area-Ward No. and Details	Waste Availability Per Day in Metric Ton	Main Processing Facility (Capacity)	Decentralized units		Remarks
				Number	Capacity per unit in MT	
18	1, 10, 68 – Vidyadhar Nagar, Ambabari	30	10 + 10	20	1	Bulk processing.
19	36, 37 – M.I.Road, Jalupura	10	-	10	1	Difficult material to be taken out.
20	62 – Chandpole gate.	15	-	15	1	-------do-----
21	63, 64 – Shastri Nagar	26	10	20	1	Bulk processing in main unit.
22	66, 67 – Ram Nagar, Tulsi Nagar, Sanjay Colony	20	10	10	1	-------do-----
23	60, 61 –Purani Basti	18	-	10	1	Difficult material to be take out.
24	39, 40, 41 – Chandpole	23	-	20	1	------do-----
25	42, 43 - Kishanpole, Chaura Rasta	20	-	20	1	------do-----
26	44, 45 – Johari Bazar	23	-	20	1	------do----
27	46, 47 – Ghatgate, Ramganj	21	-	20	1	------do-----
28	54, 58 – Brahmpuri, Kanwar Nagar	22	-	20	1	------do-----
29	51, 52 part– Govind Nagar, Jalmahal, Gangapole	14	30 from other areas also	20	1	Bulk processing of difficult material.
30	55, 52 part – Jaleb Chouk	20	-	20	1	Difficult material to be taken out.
31	56, 57 – Hawa Mahal	13	-	15	1	-------do-----
32	49, 50 – Transport Nagar	10	10 from other areas also	10	1	Bulk processing of difficult material.
33	Amer	13	10	10	1	-----do----
	TOTAL	713	290	490	30	

इस कार्य का एक अन्य पहलू और भी है। हमेशा से ही गावों में उत्पन्न भोजन पदार्थ शहरी उपयोग के लिए लाये जाते रहे हैं। इन भोजन पदार्थों के रूप में भूमि के पोषक तत्व भी शहरों तक पहुंच जाते हैं। शहरी कचरे से वर्मीकम्पोस्ट बनाकर उसके गांवों में उपयोग करने से पोषक तत्व पुनः गांव की भूमि को दिये जा सकेगें।

सभी जगहों पर ऐसे उद्योग बड़ी संख्या में पाये जाते हैं जिनमें खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार की सभी उत्पादन इकाइयों में किसी ना किसी रूप में खाद्य पदार्थों का कचरा भी निकलता है। कई फूड–प्रोसेसिंग उद्योग इस प्रकार के भी हैं जिनमें मुख्य उत्पादन से अधिक कचरा निकलता है, जैसे फलों के ज्यूस, टमाटर सॉस, शुगर मिल में प्रेस मड इत्यादि। कई बड़ी औद्योगिक इकाईयों में कई हजारों की संख्या में मजदूरों के काम करने के कारण उनकी केन्टीन्स में भी बड़ी मात्रा में ऐसा कचरा निकलता है जिसके निष्पादन के लिए इन इकाईयों को बहुत खर्च करना पड रहा है। ऐसी सभी इकाईयों एवं संस्थानों द्वारा थोड़े से पूंजी निवेश से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन इकाईयां लगाई जा सकती है। इस प्रकार कचरे के उपयोग के लिए स्थापित इकाईयां यदि कुछ कमा कर ना भी दे सके तो कचरे के निष्पादन में होने वाले खर्च को अवश्य समाप्त कर सकती है।

गत् दिनों मोरारका फाउण्डेशन को डेयरी प्लान्ट में से निकलने वाले सोलिड वेस्ट का वर्मीकमपोस्ट द्वारा ट्रीटमेंट करने की विधि विकसित करने का सुझाव मिला था। जब इस विषय पर काम करना शुरू किया तो पाया कि करीब 1.00.000 लीटर दूध प्रोसेस करने वाली डेयरी में इतनी ही मात्रा में वेस्ट वाटर निकलता है जिसमें करीब 100 कि.ग्रा. सोलिड वेस्ट भी होता है। हमने अब इस वेस्ट वाटर एवं सोलिड वेस्ट दोनों को प्रोसेस और ट्रीटमेन्ट की पूरी पद्धति विकसित कर ली है। इस विधि में तथाकथित आधुनिक तकनीक की तुलना में मात्र एक दसवां हिस्सा पूंजी निवेश कर प्रोसेस का अपना खर्च निकालने लायक बचत भी हो जाती है।

वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन एक पूर्णतः साफ–सुथरा, हानिकारक प्रभाव रहित एवं पर्यावरण के अनुकूल व्यवस्था है। इससे ना सिर्फ गंदगी एवं होने वाले दुष्प्रभाव समाप्त होंगे अपितु वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से वृक्षारोपण द्वारा पर्यावरण भी सुधरेगा।

एक सफल उदाहरण

"दूध के साथ गोबर को भी लाभ का जरिया बनाया"

झुन्झुनू जिले की पंचायत समिति चिड़ावा के ग्राम नूनियां गोठड़ा के एक नौजवान युवक विजयपाल ने जीवनयापन करने हेतु गांव के एक–दो परिवारों से दूध खरीदकर चिड़ावा शहर में बेचने का काम शुरू किया। उसने धीरे–धीरे अपनी स्वयं की डेयरी शुरू कर दी एवं दूध उत्पादन को एक व्यवसाय के रूप में करने लगा। धीरे–धीरे उसके पास करीब 60 पशु हो गये।

विजयपाल एक दिन मोरारका फाउण्डेशन के झाझड. कार्यालय में आया। वहां उसने केंचुए से वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन होते हुए देखा, परन्तु उस समय उसने इस सम्बंध में ज्यादा जानकारी नहीं की। कुछ समय बाद विजयपाल के मन में इस सम्बंध में और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हुई अत: उसने दुबारा झाझड. कार्यालय में आकर विस्तार से जानकारी प्राप्त करनी चाही। संस्था अधिकारी द्वारा उसके पास उपलब्ध साधनों की जानकारी लेने के बाद उसे बताया गया कि उसके पास उपलब्ध गोबर (करीब 600 किलो प्रतिदिन) उसके लिये आमदनी का एक अतिरिक्त स्त्रोत बन सकता है।

विजयपाल सिंह द्वारा अधिक रूचि दिखाने पर उसे विस्तार से जानकारी दी गई तथा वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन की इकाई स्थापित करने हेतु सलाह एवं उत्पादित वर्मीकम्पोस्ट का एक रूपये प्रति किलो की दर से पुन: खरीद (यदि वह चाहे) का आश्वासन भी दिया।

यह सब सुनकर विजयपाल ने अगस्त 1999 में अपने खेत में 50' X 12' का एक कच्चा शेड़ बनाया तथा वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन शुरू कर दिया। वर्मीकम्पोस्ट हेतु केंचुए मोरारका फाउण्डेशन द्वारा उपलब्ध कराये गये। कुछ प्रारम्भिक परेशानियों के बाद उसने अपनी सहायता के लिये एक मजदूर रख लिया तथा प्रतिदिन करीब 400 किलो वर्मीकम्पोस्ट का सफलतापूर्वक उत्पादन करने लगा। इससे उसे करीब 260 रूपये प्रतिदिन का लाभ होने लगा। अब विजयपाल इस प्रयास में है कि वह दिल्ली के बड़े फार्म हाऊसों में वर्मीकम्पोस्ट को 3 रू. प्रतिकिलो की दर से बेचे। इस प्रकार विजयपाल करीब 1000 रूपये प्रतिदिन का मुनाफा कमाने की आशा रखता है। वर्तमान में वह 100 गुणा 15 फीट लम्बाई का बड़ा पक्का छप्पर बनाकर उसमें सफलता पूर्वक उत्पादन कार्य कर रहा है।

मार्च 2001 में श्री हरीसिंह कुम्हेर, पशुपालन मंत्री, राजस्थान सरकार ने विजयपाल के खेत पर जाकर वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन होते हुए देखा । इससे उसमें नई स्फूर्ति का संचार हुआ तथा वह अधिक दृढ़ता के साथ इस कार्य को करने लगा। विजयपाल ने कहा कि कहां तो वह एक साईकिल पर दूध ढ़ोने वाला युवक था और कहां आज खाद की बदौलत मंत्री तक उसके घर आने लगे हैं। विजयपाल ने वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन को एक व्यवसाय के रूप में अपनाकर गांव के बेरोजगार लोगों के सामने एक उदाहरण प्रस्तूत किया है। अब वह दूसरे बेरोजगारों को भी इसे रोजगार के रूप में अपनाने की सलाह देने लगा है।

युनिट 9.3 ओर्गेनिक फार्मिंग

नोट: प्रथम संस्करण के छपने के एक माह बाद ही लेखक द्वारा लिखित एक और पुस्तक 'ओर्गेनिक फार्मिंग–एक नई शुरूआत' का प्रकाशन किया गया है। अतः पाठकों को इस विषय की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये इस पुस्तक को भी अवश्य पढ़ना चाहिये।

आज पूरे विश्व में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से उपजे भोजन पदर्थों की गुणवत्ता को लेकर व्यापक बहस छिडी हुई है। कई देशों में खेती में रसायन के उपयोग को कम करने के लिए नये नियम बनाये जा रहे हैं। रासायनिक खेती के दुष्परिणामों से चिंतित किसानों एवं उपभोक्ताओं द्वारा रसायन विहीन खेती की नई परम्परा का जन्म हुआ है। इस प्रकार की खेती को ओर्गेनिक फार्मिंग (कार्बनिक खेती अथवा जैविक खेती भी) कहा जाता है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, जर्मनी इत्यादि कई ऐसे देश हैं जहां ओर्गेनिक फार्मिंग के नाम पर कई बड़े आन्दोलन खडे हो गये हैं। इन देशों में सरकारी मान्यता प्राप्त मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण के नियम बनाये गये हैं। भारत में भी इस दिशा में सरकार के स्तर पर सोचना प्रारम्भ कर दिया गया है। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा इस दिशा में नए प्रयासों की शुरूआत करने के लिए श्री कुंवर जी भाई, राजकोट की अध्यक्षता में एक ग्यारह सदस्यी समिति का गठन किया गया है। इस समिति में श्री नानाजी देशमुख, श्री टी.जी. कुट्टीमेन्न्, श्री अजीत ग्रेवाल, श्री पंजाब सिंह, श्री जे.एन.एल. श्रीवास्तव जैसे सांसद, कृषक, वैज्ञानिक एवं उच्च अधिकारी हैं। इस समिति का सचिव भारत सरकार के कृषि आयुक्त को बनाया गया है। ओर्गेनिक फार्मिंग के क्षेत्र में उत्पादन एवं विपणन का एक व्यापक कार्यक्रम राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, भारत सरकार द्वारा मोरारका फाउण्डेशन के सहयोग से गत् 3 वर्षों से चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत ओर्गेनिक फार्मिंग के प्रचार–प्रसार की संभावनाओं का जो आंकलन किया गया है उसके अनुसार 21 वीं सदी सही मायने में भारतीय किसानों के लिए एक स्वर्ण अवसर लेकर आई है। सम्पूर्ण विश्व में विशेषकर विकसित देशों में आज ग्राहक रसायन विहीन खेती से उपजे प्रमाणित भोजन पदार्थों के लिए सामान्य बाजार भाव की तुलना में 20–200 प्रतिशत तक अधिक कीमत देने को तैयार है। यहां विकसित देशों की तुलना में भारत एक विशेष लाभ की स्थिति में खड़ा है।

विकसित देशों में आधुनिक खेती के नाम पर भारत से कई वर्षों पहले खेती में रसायनों का उपयोग प्रारम्भ हुआ था और आज उन देशों में रसायन विहीन खेती करने की ना तो तकनीकें हैं और यदि ऐसी खेती की भी जाये तो उत्पादन में इतनी कमी आ रही है कि उनके लिए इस प्रकार की खेती करना घाटे का सौदा साबित हो रहा है। ठीक इसके विपरित भारत जैसे देश में राजकीय स्तर पर किये गये समस्त प्रयासों के बावजूद रसायनों का उपयोग कुल 20–30 प्रतिशत भूमि में ही प्रारम्भ किया जा सका है। इसमें से भी अधिकतर सिंचित खेती में एवं बड़े किसानों द्वारा ही किया गया है।

छोटे किसान एवं असिंचित खेती में आज भी रसायनों का उपयोग नहीं किया जाता इसलिए ओर्गेनिक फार्मिंग के नए अवसरों का लाभ लेने की सबसे उपयुक्त परिस्थितियां इन कृषकों के लिए ही साबित हो रही हैं। ओर्गेनिक फार्मिंग का एक अन्य रोचक पहलू यह भी है कि ओर्गेनिक फार्मिंग के तहत उपजाये जाने वाले भोजन पदार्थों की मांग में उपभोक्ताओं द्वारा सबसे पहले मोटे अनाज, दलहन, तिलहन एवं मसालों को प्राथमिकता दी जा रही है जो कि हमारे देश में छोटे किसानों द्वारा असिंचित खेती में ही उपजाये जा रहे हैं। बस जरूरत इस बात की है कि हम इन फसलों को पैदा करने वाले कृषकों को संगठित करें और उनके द्वारा उपजाये गये भोजन पदार्थों के मानकीकरण एवं प्रमाणीकरण की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य व्यवस्था स्थापित कर दें।

गत् एक वर्ष में ही कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। राजकीय स्तर पर अभी इस दिशा में कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनाये गये हैं। लेकिन आशा है कि शीघ्र ही राज्यों द्वारा भी इस क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। गुजरात के कच्छ जिले में भारत सरकार के जैव–प्रोघौगिकी विभाग द्वारा रोजगार के रूप में वर्मीकल्चर द्वारा जिस कार्यक्रम को प्रारम्भ किया है उसके तहत लगभग 20000 हेक्टेयर क्षेत्र में छोटे किसानों द्वारा ओर्गेनिक फार्मिंग किये जाने का कार्य प्रारम्भ हो चुका है।

बहुत छोटे स्तर पर किये गये प्रयोगों के अनुसार यदि सामान्य खेती के रूप में एक हेक्टेयर बाजरे की खेती में लगभग 60 मानव दिवस रोजगार उत्पन्न होता है तो ओर्गेनिक फार्मिंग के तहत ली जाने वाली कई अतिरिक्त गतिविधियों के कारण इसमें तीन गुणा, 200 मानव दिवस रोजगार की जरूरत होती है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस अतिरिक्त रोजगार के अवसर का 90 प्रतिशत लाभ उत्पादकों को और उसमें भी महिलाओं को मिलेगा। इस प्रकार के कार्यक्रम के लिये मुख्य रूप से निम्न गतिविधियां की जा रही हैं।

1. **पहचान, रजिस्ट्रेशन एवं संगठन**
2. **उत्पादन की विधि का रिकार्ड**
3. **प्रसंस्करण**
4. **प्रमाणीकरण**
5. **भण्डारण**
6. **ओर्गेनिक मार्केटिंग**

मोरारका फाउण्डेशन द्वारा इस कार्यक्रम की झुन्झुनू जिले से शुरूआत की गई है। एक वर्ष के दौरान ही यह कार्यक्रम अब राजस्थान के 15 जिलों में फैल गया है। जैसे–जैसे इस कार्यक्रम का प्रचार–प्रसार हो रहा है, कई व्यापारिक संस्थाऐं भी आगे आ रही हैं। अब तक जितनी मांग सामने आई है उसके आधार पर करीब 10,000 हैक्टर क्षेत्रफल में ली गई उपज को ओर्गेनिक मार्केटिंग के रूप में बेचा जा सकता है। इससे गरीब एवं छोटे किसान अब 30 प्रतिशत लागत में कमी कर सकेंगे और 30 प्रतिशत अधिक कीमत भी ले सकेंगे।

वर्मीकम्पोस्ट खाद के उपयोग से लहलहाता गेहूँ का खेत

वर्मीकम्पोस्ट कार्यक्रम का फील्ड में निरिक्षण एवं लाभार्थियों से चर्चा

यूनिट 9.4 स्वरोजगार

आज तक वर्मीकम्पोस्ट के जितने भी उपयोग विकसित किये गये हैं उनमें वर्मीकम्पोस्ट की कुल मांग का आंकलन करें तो उसके एक प्रतिशत मांग की आपूर्ति के लिए आवश्यक वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की क्षमता स्थापित करने में भी 10–20 साल का समय लगेगा। इसका प्रमुख कारण है वर्मीकम्पोस्ट के लिए आवश्यक केचुओं का सीमित मात्रा में उपलब्ध होना। अभी भी बमुश्किल 2 या 3 प्रजातियों के केंचुओं के उपयोग से वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा रही है, इसमें भी ऐसिनिया फटिडा जिन्हें लाल केंचुओं के नाम से भी जाना जाता है, सबसे अधिक उपयोग में ली जा रही है।

केंचुआ जीवित प्राणी है और उसके बढ़ने की दर केचुएं के प्राकृतिक जीवन–चक्र पर निर्भर है। किसी भी प्रकार के कृत्रिम उपायों द्वारा आवश्यकतानुसार उनकी संख्या चाहे जितनी नहीं बढ़ाई जा सकती। सामान्य रूप से अब तक केचुओं के बढ़ने की मौजूदा दर प्रतिवर्ष एक केचुएं से 20 केचुएं तक मानी जाती है। कुछ वैज्ञानिकों द्वारा इस विषय में शोध के पश्चात् इस दर को 1:100 तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त की गई है। मोरारका फाउण्डेशन के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये गहन शोध के परिणामस्वरूप प्रायोगिक परिस्थितियों में 1:1000 से अधिक की वृद्धि दर प्राप्त की जा चुकी है लेकिन बड़े स्तर पर इस प्रकार की दर प्राप्त करने के लिए बहुत बड़े पूंजी निवेश एवं नियंत्रित परिस्थितियों की आवश्यकता होती है।

आज की तारीख में वर्मीकम्पोस्ट के लिए उपयोगी केचुओं का हमारे देश में कुल उत्पादन करीब 50000 किलो प्रतिमाह के लगभग है। इसमें से लगभग आधे 25000 किलो प्रतिमाह केंचुओं का उत्पादन अकेले मोरारका फाउण्डेशन एवं उसकी सहयोगी इकाइयों द्वारा किया जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार मोरारका फाउण्डेशन विश्व में केचुआ खाद का सबसे बड़ा उत्पादक माना जाने लगा है।

केचुओं की वृद्धि ज्यामितिय अनुपात में हो रही है और जिस प्रकार अनेक वैज्ञानिकों ने इसे शोध के लिए चुना है उसके कारण कुछ ही समय में इस क्षेत्र में एक बड़ी क्रांति प्रारम्भ होने जा रही है।

वर्मीकल्चर तकनीक का विकास गत् 10–20 वर्षों में हुआ है, इसमें भी वाणिज्यिक उत्पादन की शुरूआत एकदम नई है। लेकिन आजतक कृषि के क्षेत्र में विकसित किसी भी तकनीक

की तुलना में जितना प्रचार इस क्षेत्र में हुआ है, उतना प्रचार किसी अन्य क्षेत्र में नहीं हुआ। एकदम नई तकनीक (जैव–विज्ञान आधारित) होने के बावजूद आज कृषि के क्षेत्र से सम्बंधित लगभग सभी व्यक्ति इस तकनीक के उपयोग, हानि एवं लाभ की चर्चा कर रहे हैं।

अब तक हमारे देश में एवं विदेशों में जहां भी इस तकनीक पर कार्य हुआ है उसमें सभी ने इसे लाभदायक एवं उपयोगी माना है। इस तकनीक के विकास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि इस बात की भी रही है कि अब तक जितने भी लोगों ने वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन किया है, उन्होंने लागत (औसत 1 रू प्रति किलो) की तुलना में बहुत अधिक मूल्य (3–5 रू प्रति किलो) वसूलने में सफलता पाई है। अतः इस प्रकार से कई गुणा लाभ मिलने के कारण वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग के साथ–साथ इसके उत्पादन के प्रति भी बड़े पैमाने पर लोगों में उत्सुकता जागी है और लोग इसे स्वरोजगार के रूप में अपनाने लगे हैं।

अकेले राजस्थान में अब तक मोरारका फाउण्डेशन द्वारा 200 से अधिक स्वरोजगार इकाईयां स्थापित करा दी गई हैं। इन लोगों द्वारा 1000–30000 रू प्रति माह तक कमाये जा रहे हैं। उत्तरप्रदेश में गत् 6 महीनों के प्रयासों से लगभग 100 बड़ी इकाईयां (2–10 टन प्रतिदिन) स्थापित हो चुकी है। गुजरात के भूकम्प प्रभावित कच्छ जिले में भारत सरकार के जैव–प्रोद्योगिकी विभाग के सहयोग से भारतीय ग्रामीण विकास संस्थान द्वारा आगामी 1 वर्ष में 1000 वर्मीकम्पोस्ट इकाईयां स्थापित करने का कार्यक्रम जारी है।

वर्मीकम्पोस्ट इकाई लगाने के अब तक हुए अनुभवों के आधार पर हमारा मानना है कि यह कार्य छोटी पूंजी से लेकर बहुत बड़े स्तर पर भी किया जा सकता है। कई किसानों द्वारा शुरूआत में स्वयं अपने उपयोग के लिये 10–20 क्विंटल प्रतिवर्ष उत्पादन क्षमता की इकाईयां लगाई गईं। इन इकाईयों को लगाने में प्रशिक्षण के खर्च सहित औसत 3000 से 5000 रूपये तक का खर्चा किया गया। कुछ समय पश्चात् केंचुओं की संख्या बढ़ने के साथ इन्हीं किसानो ने अपनी उत्पादन क्षमता कई गुना कर ली। अब ये किसान रोजगार के रूप में केंचुए एवं वर्मीकम्पोस्ट बेच कर अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के आसान तरीके एवं कम पूंजी निवेश के कारण अब कई प्रकार के अन्य लोग जैसे बुजूर्ग, विकलांग इत्यादि भी इस कार्य को कर रहे हैं। शहरों के आस–पास रहने वाले लोगों द्वारा करीब 100–200 वर्गफुट जगह में औसत 2 टन प्रतिमाह उत्पादन करने पर करीब 1000 रूपये प्रतिमाह की शुद्ध आमदनी की जा रही है। कुल मिलाकर वर्मीकम्पोस्ट सभी प्रकार के लोगों के लिये एक बहुत अच्छे स्वरोजगार के रूप में सामने आ रहा है। विभिन्न स्तर के निवेश द्वारा लगाई जा सकने वाली इकाईयों का विवरण आगे दिया गया है।
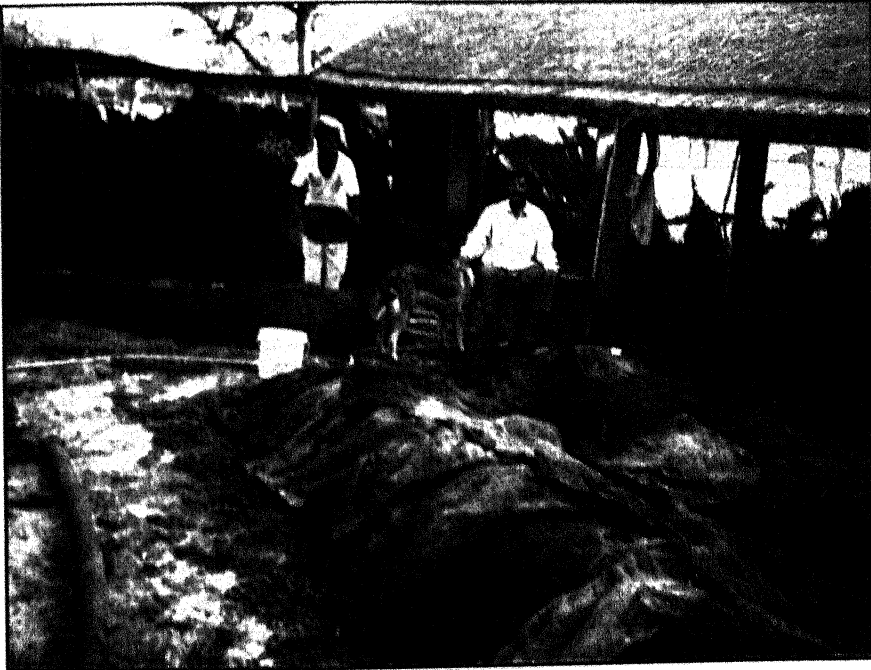
वर्मीकम्पोस्ट के वाणिज्यिक उत्पादन की इकाईयाँ

गुजरात के भुकम्प प्रभावित क्षेत्रों में वर्मीकम्पोस्ट तकनीक का प्रचार–प्रसार
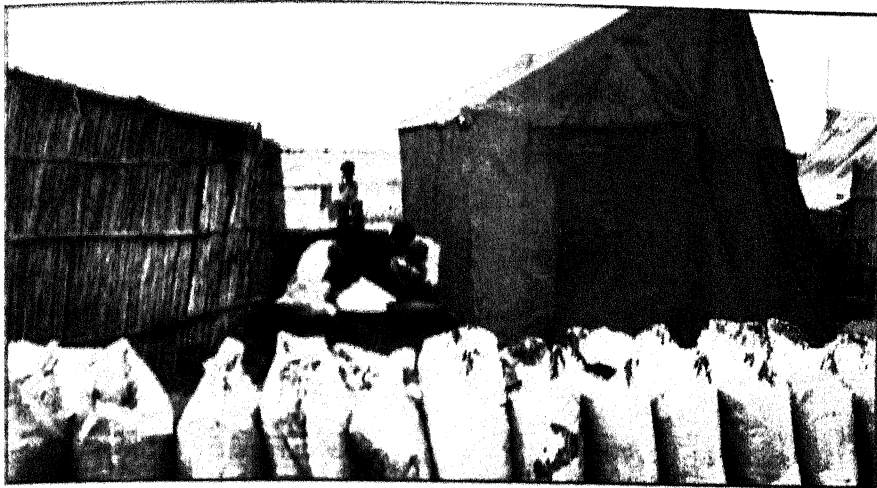
कच्छ जिले में स्थापित वर्मीकम्पोस्ट इकाईयाँ

बहुत छोटे स्तर (रू. 5000 के निवेश से) पर लाभार्थी द्वारा वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की स्वरोजगार योजना

क्र. सं.	विवरण	निवेश स्तर (रू. 5000)
I	योजना का विवरण	
1	उत्पादन क्षमता	15 से 20 टन प्रति वर्ष
2	अनुमानित कार्यस्थल का नाप	कुल 300 वर्गफुट
3	कार्य हेतु आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	एक व्यक्ति प्रतिदिन एक घंटे के लिये
4	पानी की आवश्यकता	10 लीटर प्रतिदिन
5	छायादार क्षेत्र की आवश्यकता	करीब 100 वर्गफुट (उपलब्ध साधनों से
6	छप्पर लगाने का खर्चा	रू. 1000
7	मशीन एवं औजार (केवल, हस्त चालित)	रू. 500 (पंजे, दंताली, फावड़ा, परात इत्यादि)
8	केंचुए, 500 रू. प्रति किलो की दर से–कुल 4 किलो	रू. 2000/-
9	कार्यशील पूंजी (तीन माह के लिये)	रू. 1500/-
10	कुल पूंजीगत् ऋण/व्यय	रू. 5000/-
II	योजना का आर्थिक विश्लेषण (वार्षिक)	
1	कच्चा माल,–गोबर 250 रू. प्रति टन की दर से	30 टन–रू. 7500/-
2	कृषि/शहरी जैविक कचरा रू. 200 प्रति टन की दर	2.5 टन–रू. 500/-
3	अनुपातिक मजदूरी रू. 2500 प्रतिमाह की दर से	रू. 6000/-
4	पूंजीगत व्यय पर ब्याज 14 प्रतिशत वार्षिक दर से	रू. 700/-
5	बिजली एवं पानी	रू. 500/-
6	परिवहन	रू. 1000/-
7	बिक्री खर्च	रू. 2000/-
8	अन्य खर्चे	रू. 2000/-
9	कुल उत्पादन लागत	रू. 20200/-
10	बिक्री से प्राप्त राशी, रू. 1500 प्रतिटन की दर से	रू. 30000/-
11	लाभ	रू. 9800/-
12	शुद्ध आय मजदूरी सहित	रू. 15800/-

इस प्रकार की इकाईयां पार्ट टाइम कार्य करने वालों के लिये उचित हैं।

बहुत छोटे स्तर (रू. 10,000 के निवेश से) पर लाभार्थी द्वारा वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की स्वरोजगार योजना

क्र. सं.	विवरण	निवेश स्तर (रू. 10000)
I	योजना का विवरण	
1	उत्पादन क्षमता	30 से 40 टन प्रति वर्ष
2	अनुमानित कार्यस्थल का नाप	कुल 500 वर्गफुट
3	कार्य हेतु आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	एक व्यक्ति प्रतिदिन
4	पानी की आवश्यकता	40-50 लीटर प्रतिदिन
5	छायादार क्षेत्र की आवश्यकता	करीब 300 वर्गफुट (उपलब्ध साधनों से
6	छप्पर लगाने का खर्चा	रू. 2000/-
7	मशीन एवं औजार (केवल हस्त चालित)	रू. 500 (पंजे, दंताली, फावड़ा, परात इत्यादि)
8	केंचुए, 500 रू. प्रति किलो की दर से कुल 8 किलो	रू. 4000/-
9	कार्यशील पूंजी (तीन माह के लिये)	रू. 3500/-
10	कुल पूंजीगत ऋण / लागत	रू. 10000/-
II	योजना का आर्थिक विश्लेषण (वार्षिक)	
1	कच्चा माल- गोबर 250 रू. प्रति टन की दर से	50 टन- रू. 12500/-
2	कृषि / शहरी जैविक कचरा रू. 200 प्रति टन की दर	10 टन–रू. 2000/-
3	मजदूरी रू. 2500 प्रतिमाह की दर से	रू. 30000/-
4	पूंजीगत लागत पर ब्याज 14 प्रतिशत वार्षिक दर से	रू. 1400/-
5	बिजली एवं पानी	रू. 1000/-
6	परिवहन	रू. 2000/-
7	बिक्री खर्च	रू. 3000/-
8	अन्य खर्च	रू. 3000/-
9	कुल उत्पादन लागत	रू. 54900/-
10	बिक्री से प्राप्त राशी, रू. 1500 प्रतिटन की दर से	रू. 60000/-
11	लाभ	रू. 5100/-
12	शुद्ध आय मजदूरी सहित	रू. 35100/-

यह इकाई एक व्यक्ति के लिये पूर्ण स्वरोजगार रहेगी।

बहुत छोटे स्तर (रू. 25,000 के निवेश से) पर लाभार्थी द्वारा वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की स्वरोजगार योजना

क्र. सं.	विवरण	निवेश स्तर (रू. 25000)
I	योजना का विवरण	
1	उत्पादन क्षमता	80 से 100 टन प्रति वर्ष
2	अनुमानित कार्यस्थल का नाप	कुल 1500 वर्गफुट
3	कार्य हेतु आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	एक व्यक्ति प्रतिदिन एवं 2 व्यक्ति पार्ट टाइम
4	पानी की आवश्यकता	150–200 लीटर प्रतिदिन
5	छायादार क्षेत्र की आवश्यकता	करीब 600 वर्गफुट (उपलब्ध साधनों से
6	छप्पर लगाने का खर्चा	रू. 5000/-
7	मशीन एवं औजार (केवल हस्त चालित)	रू. 1000 (पंजे, दंताली, फावड़ा, परात इत्यादि)
8	केंचुए, 500 रू. प्रति किलो की दर से–कुल 20 किलो	रू. 10000/-
9	कार्यशील पूंजी (तीन माह के लिये)	रू. 9000/-
10	कुल पूंजीगत् ऋण/व्यय	रू. 25000/-
II	योजना का आर्थिक विश्लेषण (वार्षिक)	
1	कच्चा माल,–गोबर 250 रू. प्रति टन की दर से	100 टन–रू. 25000/-
2	कृषि/शहरी जैविक कचरा रू. 200 प्रति टन की दर	20 टन–रू. 4000/-
3	मजदूरी रू. 2500 प्रतिमाह की दर से	रू. 42000/-
4	पूंजीगत व्यय पर ब्याज 14 प्रतिशत वार्षिक दर से	रू. 3500/-
5	बिजली एवं पानी	रू. 3000/-
6	परिवहन	रू. 5000/-
7	बिक्री खर्चा	रू. 10000/-
8	अन्य खर्चे	रू. 10000/-
9	कुल उत्पादन लागत	रू. 102500/-
10	बिक्री से प्राप्त राशी, रू. 1500 प्रतिटन की दर से	रू. 150000/-
11	लाभ	रू. 47500/-
12	शुद्ध आय मजदूरी सहित	रू. 89500/-

यह इकाई एक परिवार के लिये पूर्ण स्वरोजगार रहेगी।

मध्यम स्तर पर (रू. 50,000 के निवेश से) लाभार्थी द्वारा मजदूरों से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की स्वरोजगार योजना

क्र. सं.	विवरण	निवेश स्तर (रू. 50,000)
I.	योजना विवरण	
1	योजना का प्रकार (संस्थागत/सहकारी)	संस्थागत
2	वार्षिक उत्पादन क्षमता	150 से 160 टन
3	अनुमानित कार्यस्थल	3000 वर्गफुट
4	कार्य हेतु आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	2 व्यक्ति पूर्ण एवं 2 पार्ट टाइम के लिये
5	पानी की आवश्यकता	200 से 300 लीटर प्रतिदिन
II	योजना की लागत	
1	जमीन	स्वयं की
2	छायादार क्षेत्र	1000 वर्गफुट
3	छप्पर लगाने का खर्चा	रू. 10000/-
4	मशीन एवं औजार (केवल हस्त चालित)	रू. 5000/-
5	केंचुए, 500 रू. प्रति किलो की दर से–40 किलो	रू. 20000/-
6	कार्यशील पूंजी	रू. 15000/-
7	कुल पूंजीगत् व्यय	रू. 50000/-
III	वित्त के साधन	
1	स्वयं का योगदान 10 प्रतिशत	जगह एवं शेड के द्वारा
2	पूंजीगत् ऋण	रू. 50000/-
IV	योजना का आर्थिक विश्लेषण (वार्षिक उत्पादन)	
अ)	कच्चा माल (प्रतिवर्ष)	
1	कच्चा माल गोबर 250 रू. प्रति टन की दर से	200 टन– रू. 50000/-
2	कृषि/शहरी जैविक कचरा 200 रू. प्रति टन की दर से	20 टन– रू.4000/-
ब)	वेतन/मजदूरी	
1	सुपरविजन	रू. 30000/-
2	2 कुशल मजदूर 2500 रू. प्रतिमाह की दर से	रू. 60000/-
3	2 अर्द्धकुशल मजदूर पार्ट टाइम के लिये	रू. 12000/-
स)	अन्य खर्चे	
1	पूंजीगत् व्यय पर ब्याज 14 प्रतिशत वार्षिक दर से	रू. 7000/-
2	बिजली एवं पानी	रू. 5000/-
3	परिवहन	रू. 10000/-
4	बिक्री खर्च	रू. 15000/-
5	अन्य खर्चे	रू. 10000/-
(द)	कुल उत्पादन लागत	रू. 203000/-
(अ)	बिक्री से प्राप्त राशी, रू. 1500 प्रतिटन की दर से	रू. 240000/-
र)	शुद्ध लाभ	रू. 37000/-
ल)	शुद्ध आय सुपरविजन सहित	रू. 67000/-

यह इकाई शिक्षित बेरोजगार युवकों एवं संस्थाओं के लिये स्थाई आमदनी का जरिया रहेगी।

मध्यम स्तर पर (रू. 100,000 के निवेश से) लाभार्थी द्वारा मजदूरों से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन की स्वरोजगार योजना

क्र. सं.	विवरण	निवेश स्तर (रू. 100,000)
I.	योजना विवरण	
1	योजना का प्रकार (संस्थागत / सहकारी)	संस्थागत्
2	वार्षिक उत्पादन क्षमता	250 से 300 टन
3	अनुमानित कार्यस्थल	5000 वर्गफुट
4	कार्य हेतु आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	3 व्यक्ति पूर्ण एवं 2 आधे समय के लिये
5	पानी की आवश्यकता	300 से 500 लीटर प्रतिदिन
II	योजना की लागत	
1	जमीन	स्वयं की
2	छायादार क्षेत्र	3000 वर्गफुट
3	छप्पर लगाने का खर्चा	रू. 25000/-
4	मशीन एवं औजार (केवल हस्त चालित)	रू. 10000/-
5	केंचुए, 500 रू. प्रति किलो की दर से–70 किलो	रू. 35000/-
6	कार्यशील पूंजी	रू. 30000/-
7	कुल पूंजीगत् व्यय	रू. 100000/-
III	वित्त के साधन	
1	स्वयं का योगदान 10 प्रतिशत	जगह एवं शेड के द्वारा
2	पूंजीगत् ऋण	रू. 100000/-
IV	योजना का आर्थिक विश्लेषण (वार्षिक उत्पादन)	
अ)	कच्चा माल (प्रतिवर्ष)	
1	कच्चा माल गोबर 250 रू. प्रति टन की दर से	300 टन – रू. 75000/-
2	कृषि / शहरी जैविक कचरा 200 रू. प्रति टन की दर से	100 टन – रू. 20000/-
ब)	वेतन / मजदूरी	
1	सुपरविजन (एक सुपर वाईजर एवं एक मैनेजर)	रू. 60000/-
2	3 कुशल मजदूर 2500 रू. प्रतिमाह की दर से	रू. 90000/-
3	2 अर्द्धकुशल मजदूर पार्ट टाइम के लिये	रू. 12000/-
स)	अन्य खर्चे	
1	पूंजीगत् व्यय पर ब्याज 14 प्रतिशत वार्षिक दर से	रू. 14000/-
2	बिजली एवं पानी	रू. 10000/-
3	परिवहन	रू. 25000/-
4	बिक्री खर्चे	रू. 25000/-
5	अन्य खर्चे	रू. 20000/-
(द)	कुल उत्पादन लागत	रू. 351000/-
(अ)	बिक्री से प्राप्त राशी, रू. 1500 प्रतिटन की दर से	रू. 450000/-
र)	शुद्ध लाभ	रू. 99000/-
ल)	शुद्ध आय सुपरविजन सहित	रू. 159000/-

यह इकाई बड़े स्तर पर शिक्षित बेरोजगार युवकों एवं संस्थाओं के लिये स्थाई आमदनी का जरिया रहेगी।

अन्तरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित प्रदर्शनियों में वर्मीकल्चर तकनीक का प्रदर्शन

युनिट 9.5 वर्मीकल्चर – गौशालाओं के लिये वरदान

हमारे देश में सदा से गाय आधारित अर्थव्यवस्था के सुखद अनुभवों के बावजूद आज न जाने ऐसा क्या हो गया है कि किसानों ने व्यक्तिगत स्तर पर गाय को करीब–करीब अनुपयोगी करार दिया है। आज लाखों की संख्या में किसानों द्वारा गाय छोड़ी जा रही हैं। परिणामस्वरूप आज गाय मात्र गौशालाओं में ही शरण पा रही हैं। अधिकतर गौशालाऐं समाज के गौभक्तों के योगदान से चल रही हैं। राजकीय सहायता का अनुपात बहुत कम हैं। ऐसी स्थिति में गोपालन एवं गोवंश को बचाए रखना बहुत बड़ी चुनौती बनता जा रहा है। अकाल प्रभावित क्षेत्रों में तो गाय को बचाना बहुत मुश्किल का काम है। इस समस्या को दूर करने के लिये हमने गौशालाओं द्वारा वर्मीकम्पोस्ट को अपना कर गाय का पालन करने लायक खर्च निकालने के प्रयास प्रारम्भ किये हैं। लगभग तीन वर्षों के अनुभवों से हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अब वह समय दूर नहीं है जब गौशालाओं की बिना दूध देने वाली गाय न सिर्फ अपना खर्च निकाल सकेगी अपितु वह ग्रामीण/खेती आधारित अर्थव्यवस्था में भी आमूल चूल परिवर्तन लाने में कामयाब होगी। इसके लिये हमें निम्न उपयों पर विचार करना होगा।

एटिट्यूड/रूख – कई वर्षों से गौशालाओं के पदाधिकारियों से चर्चा करने पर हमने देखा है कि न जाने क्यों गौशाला प्रबन्धन कुछ भी नया करने में झिझकते हैं। जिस गौशाला द्वारा आज सालाना 25000 से 30000 रूपये का गोबर बेचा जा रहा है उन्हें इसका दस गुना अधिक लाभ मिलने की संभावना के बाद भी वह कुछ भी नया प्रयास करने में आनाकानी करते रहे हैं। एक दूसरी समस्या और भी है, कई गौशालाओं के प्रबन्धन में जैन समुदाय के पदाधिकारी हैं। वर्मीकल्चर की बात करने पर उनकी आपत्ति है कि इससे जीव हत्या होगी। जबकि वर्मीकल्चर सही मायने में जीव वृद्धि को बढ़ावा देने में सक्षम हैं। किसी भी प्राणी का जीवन चक्र निर्धारित है। वर्मीकल्चर में भी केचुओं को उनका जीवन चक्र पूर्ण करने लायक साधन–सुविधाऐं दी जाती हैं ताकि अधिक से अधिक वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सके। अतः यदि केचुए भी किसी अन्य प्राणी की ही तरह अपना जीवन चक्र पूरा कर रहे हैं तो इसमें जीव हत्या कदापि नहीं होती है।

प्रोफेशनल मेनेजमेन्ट – बहुत समझाने के बाद यदि कुछ गौशालाओं के प्रबन्धन वर्मीकल्चर को अपनाने के लिये तैयार हुए हैं तो उनका आमतौर पर यह कहना होता है कि हम कोई झंझट मोल नहीं लेना चाहते हैं। वह गोबर एवं साधन सुविधाओं की एवज में हमेशा कुछ निश्चित राशि की बात करने लगते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट/कलचर अभी नया विषय है। इसलिये इसको जानने वाले लोगों की भी कमी है। लेकिन जैसे–जैसे इस विषय की जानकारी बढ़ेगी उस रोज पहले शुरूआत करने वाले सबसे अधिक फायदा उठा सकने वालों की पहली पंक्ति में खड़े होंगे। अब गौशाला यदि खुद यह कार्य नहीं करेगी तो सारा फायदा कोई और ले जायेगा और गौशालाऐं हाथ मलती रह जायेंगी। इसके लिये गौशालाओं को प्रोफेशनल मेनेजमेंट अपनाना चाहिये। यदि रू. 10 लाख के एक बारे के पूंजी निवेश से हमेंशा के लिये रू. 10 लाख या अधिक सालाना आमदनी की संभावना है तो क्यों न पढ़े लिखे काबिल लोगों को नौकरी पर रखकर यह कार्य किया जाय। लायक लोग न सिर्फ अपना खर्च निकालेंगे अपितु गौशाला की आमदनी में भी वृद्धि करने के नये–नये रास्ते खोज लेंगे।

वर्मीकम्पोस्ट काई कोमोडिटी नहीं है। इसको बेचने में विशेषज्ञ सेवाओं को जोड़ने से आमदनी में कई गुना बढ़ोतरी की जा सकती है। अतः गौशालाओं को वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के साथ अपनी रिसर्च करते हुए वेल्यू एडिशन का प्रयास करना होगा। यह प्रोफेशनल मेनेजमेंट अपनाने से ही संभव हो सकेगा।

पोलिसी – गत् कुछ दिनों में ओर्गेनिक फार्मिंग एक बहुत बड़ी क्रांति की शुरूआत करने का जरिया बनी है। ओर्गेनिक फार्मिंग की अनिवार्य शर्तों में सर्टिफाइड प्रोडक्शन के लिये सर्टिफाइड इनपुटस् का होना भी जरूरी है। यदि भारत सरकार सभी गौशालाओं को कुछ प्रारम्भिक जांच एवं निश्चित प्रक्रिया द्वारा सर्टिफाइड ओर्गेनिक इनपुट प्रोडयूसर का दर्जा दे तो इससे इन गौशालाओं के दिन फिर जायेंगे। इसी के साथ यदि भारत सरकार वर्मीकास्ट व अर्थवर्म का आई.टी.सी. कोड व क्वालिटी स्टेण्डर्ड बना दे तो सभी गौशालाऐं शत् प्रतिशत निर्यात इकाइयां भी बन सकती हैं। एक अनुमान के अनुसार एक दूध न देने वाली गाय से 5–6 किलो वर्मीकम्पोस्ट प्रतिदिन प्राप्त की जा सकती है और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वर्मीकम्पोस्ट के दाम यदि 5–6 रूपये प्रति किलो मिलने लगे तो प्रत्येक गाय प्रतिदिन रू. 25–30 तक आसानी से कमा लेगी। गायों के प्रति हमारी भावना आधार विहीन नहीं है। हमारे पूर्वजों ने गाय के गुणों को देखकर ही उसे पूजनीय माना था। आज आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर बायोटेक्नोलोजी के उपयोग से गाय की प्रासंगकिता फिर से स्थापित करने का समय आ गया है। गाय अपने आप में एक ऐसी सजीव बायोटेक्नोलोजी की फैक्टरी है जिसकों इन्सानों द्वारा रेप्लीकेट करने में शायद अभी 200–300 वर्ष और लगेंगे।

दूसरी तरफ हमारा मानना है कि भारत के सामने विशाल गौधन के कारण आज एक बहुत बड़ा अवसर आया है और हमें इसका लाभ लेने से चूकना नहीं चाहिये। हम यहाँ गौशालाओं के साथ मोरारका फाउण्डेशन द्वारा जोइन्ट कोलोब्रेशन में वर्मीकम्पोस्ट तथा अन्य बायोटेक्नोलोजी आधारित गतिविधियां प्रारम्भ करने के एक मोडल प्रस्ताव का विवरण दे रहे हैं। हमें आशा है कि इस आधार पर आने वाले समय में गौशालाऐं न सिर्फ स्वावलम्बी बन सकेंगी अपितु कई नये रोजगारों को भी जन्म देंगी।

M.R.MORARKA-GDC RURAL RESEARCH FOUNDATION

RIICO GEM STONE PARK, TONK ROAD, JAIPUR-302011

PHONE & FAX No:0141-720202, 720574 Email:morarkafl@datainfosys.net

VERMICULTURE KNOW-HOW TRANSFER TO GAUSHALLAS

S. No.	Project Location and Unit (Beneficiary)	Sponsoring/ Partner Organizations	Remarks
1.	Nawalgarh Gaushalla	Morarka Foundation and Local Gaushalla Management.	The unit was set up in 1999 and has annual production capacity of 1000 MT of vermicompost.
2.	Lunkaransar Gaushalla	Urmul-Setu	The unit was set up in 2000 and has annual production capacity of 500 MT of vermicompost.
3.	Nunia Gothda, Chirawa	Private Dairy Farm	The unit was set up in 2000 and has annual production capacity of 1500 MT of vermicompost.
4.	Chirawa Gaushalla	Morarka Foundation and Local Gaushalla Management.	The unit was set up in 2001 and has annual production capacity of 1000 MT of vermicompost.
5.	Pilani Gaushalla	Morarka Foundation and Local Gaushalla Management.	The unit was set up in 2001 and has annual production capacity of 1500 MT of vermicompost.
6.	Ahmedabad, Vidhyapeeth Gaushalla	Online Biogenetics and Local Gaushalla Management.	The unit was set up in 2001 and has annual production capacity of 500 MT of vermicompost.

Note:

1. The above units have already started utilizing cow dung from 3000 cows.
1. The proposals are under consideration with about ten more Gaushallas covering 7000 cows.

The commercial units set up by The Foundation are also utilizing cow dung covering about 25000 cows and 10000 buffalos in over 100 different places.

M.R. MORARKA GDC RURAL RESEARCH FOUNDATION

RIICO GEM STONE PARK, TONK ROAD, JAIPUR-302011
Ph: 0141-720202, 720574, E-mail: morarkafl@datainfosys.net

MODEL SCHEME FOR GAUSHALLAS/DAIRY FARMS

S. No.	Particulars	Details and Investments (Rs.)
	Model Scheme for 500 Cows	**5,00,000/-**
I.	**Project Details**	
1	Name of the Project	**Vermiculture-Biotechnology Based**
2	Name of unit (Ind/Instt/Coop)	Joint collaboration with Gaushallas
3	Annual Production Capacity	1200 MT
4	Estimated area of work place	20000 Sq. feet.
5	No. of persons/Employment	8 person full time.
II	**Cost of Project**	
(a)	Land	Own
(b)	i) Shed Area	5000 Sq. feet
	ii) Shed Expenses	100000/- (Normally available)
(c)	Machinery/Equipments (only hand tools)	50000/-
(d)	Earthworms 1000 kgs @ Rs. 500/- per Kg.	250000/- (Fifty percent by Morarka)
(e)	Working capital for 3 months	100000/-
III	**Means of Finance**	
(a)	Own fund 10%	Material Contribution
(b)	Margin Money Component	Not Required
(c)	Capital Expenditure loan/assistance	500000/-
IV	**WORKING OF ECONOMICS (per year production)**	
A.	**Raw Material (per anum)**	
1	Cowdung Material @Rs. 250/MT	1800 MT, 450000/- (At market value)
2	Agriculture/municipal waste @ 200/MT	200 MT, 40000/- (From outside)
B.	**Salary/Wages (Workers)**	
(i)	**Wages**	
	Skilled worker @ Rs. 2500 per month	240000/-
	Semi skilled worker (part time)	120000/-
C. (i)	**Overhead Charges**	
(a)	Interest/financial costs on CE @ 14% per annum	70000/-
(ii)	**Indirect Expenses**	
(a)	Electricity & Water	35000/-
(b)	Transport	100000/-
(c)	Selling Expenses	100000/-
(d)	Other Expenses	50000/-
D.	**Cost Analysis (Cost of production)**	
(a)	Total cost of production including all inputs.	1205000/- (At market value of inputs)
E.	**Sales**	
(a)	Sales realization @ Rs.1500/MT	1800000/-
F.	**Net profit**	
(a)	Profit per year	595000/-
G.	**Net Earning per year (Plus market value of cowdung)**	**1045000/-**
H.	**Net income from each cow per year.**	**2090/-**

Note: Morarka Foundation can take up this programme on turn key basis.

राष्ट्रीय पशुकल्याण आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों द्वारा वर्मीकल्चर तकनीक का अवलोकन

THE TIMES OF INDIA, NEW DELHI FRIDAY, SEPTEMBER 14, 2001

Organic farming gaining popularity

Times News Network

NAWALGARH (JHUNJHUNU): Organic farming programme is gaining popularity in the Shekhawati region. Vermi compost units have not only been successful in maintaining the ecological balance, but also proved to be an effective replacement for chemical fertilisers. Vermi culture (use of earthworms in manufacturing compost) has paved the way for organic farming and cultivation of farm produce without the use of any chemicals. Soon the farms of the arid Shekhawati region may start producing organic food.

Morarka Foundation, with about 10 million earthworm production in just one month last year, has become a big player in this field.

The farmers in some parts of the Shekhawati region have found vermi compost as suitable means to raise the agriculture production by 20 to 25 per cent. The farmers have been using vermi compost for a variety of crops such as coarse cereals, oilseed, fodder and vegetables.

The M R Morarka-GDC Rural Research Foundation, headed by former Union minister Kamal Morarka as a part of its commitment to rural upliftment started the vermi-compost culture among the farmers of Jhunjhunu and Sikar districts. The foundation's work on vermi culture began in 1995 when many experiments were conducted to explore its potential to raise average land productivity.

"Earthworms were known to be beneficial to living creatures, but not much was done to artificially breed these worms and take advantage of their contribution to mankind. We worked at grassroot level to develop understanding of organic farming, identify farmers willing to take up organic farming and study the present status," said project director Mukesh Gupta.

The project was started with just ten worms. After various experiments, the project got World Bank assistance and then 15 vermi compost units were set up in the semi-desert Jhunjhunu districts," said Morarka Foundation's executive director Rajendra Sharma.

राजस्थान पत्रिका

सीकर, 5 सितम्बर 2001

झुंझुनूं जिले में नूनिया गोठड़ा गांव में सोमवार को आयोजित किसान मेले में किसान व अधिकारी। फोटो -देवेन्द्र सैनी।

किसान मेले का आयोजन

झुंझुनूं, 4 सितम्बर [नि.सं.]। फाउंडेशन की ओर से जिले के नूनिया गोठड़ा में प्रगतिशील किसान विजयपाल सिंह के खेत पर कृषि विभाग के तत्वावधान में सोमवार को किसान मेले का आयोजन किया गया।

इस मेले में भी फाउंडेशन के अध्यक्ष कमल मोरारका ने सम्बोधित किया। इस सम्मेलन में कृषि विज्ञान केन्द्र के मुख्य वैज्ञानिक डॉ. हनुमान प्रसाद, कृषि विस्तार उपनिदेशक जगपाल सिंह तथा अनेक सहायक निदेशकों ने किसानों को सम्बोधित किया। जनसंघर्ष समिति के संयोजक चौधरी नंदलाल ने किसानों की समस्याएं सामने रखी।

पिछड़ापन वरदान साबित हो रहा है किसानों के लिए

-मुकेश पाण्डे-

नवलगढ़, 4 सितम्बर। छोटे व गरीब किसान 'जैविक खाद्य उत्पादों' की बढ़ती मांग का लाभ उठा दुनिया भर के बाजारों में पैठ बना सकते हैं। इन किसानों को रासायनिक खाद व कीटनाशकों तक पहुंच नहीं होने के कारण पिछड़ा करार दिया जाता था। यही पिछड़ापन इन्हें अब स्वतः ही 'जैविक खाद्य उत्पादकों' की वैश्विक परिभाषा के दायरे में ले आया है। उपभोक्ता इन उत्पादों के लिए ज्यादा कीमत देने को भी तैयार हैं।

एम.आर. मोरारका -जी.डी.सी. रूरल रिसर्च फाउण्डेशन 'वर्मी कम्पोस्ट', आईएसओ 9002 जैसे अन्तरराष्ट्रीय मानकों, मूल्य संवर्द्धित गुणवत्ता और समेकित विपणन तंत्र के माध्यम से राज्य व विशेष रूप से नवलगढ़ पंचायत समिति में किसानों को इस बारे में जागरूक कर रहा है। इस प्रयास से राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान [एनआईएएम] भी जुड़ा हुआ है। फाउण्डेशन ने इन्टरनेशनल फेडरेशन फार ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट [आईएफएओएम] से सम्बद्धता के लिए आवेदन भी कर दिया है।

फाउण्डेशन के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने बताया कि पिछले साल नवलगढ़ ब्लॉक में करीब ढाई हजार किसानों को प्रोत्साहित कर दो हजार हैक्टेयर में गेहूं व अन्य जिन्सों की 'जैविक खेती' की गई। इस साल करीब दस हजार किसानों को इससे जोड़ने का लक्ष्य है। साथ ही खेत में ही अनाज की सफाई कर इसकी ग्रेडिंग व पैकिंग भी की जा रही है। गरीब व पिछड़े किसान पहले भी रासायनिक खाद व कीटनाशकों का इस्तेमाल ज्यादा नहीं कर पाते थे। ऐसे किसानों को एक-दो बीघा में जमीन सुधारने से लेकर जुताई, खाद, अनाज की सफाई, पैकिंग व विपणन तक का ब्यौरा दर्ज करने की सलाह दी जाती है। गुप्ता के अनुसार आईएसओ 9002 जैसे अन्तरराष्ट्रीय मानकों पर खरा उतरने के लिए यह प्रक्रिया जरूरी है। इस सिलसिले में नवलगढ़ पंचायत समिति के तहत झारडा वाली ढाणी में आयोजित किसान गोष्ठी में बताया गया कि यदि उत्पादक खेत पर ही अनाज की सफाई, ग्रेडिंग व पैकिंग कर दे तो इसका ज्यादा मूल्य मिलता है। गुप्ता ने दिल्ली, जयपुर, बीकानेर, अलवर व कुछ प्रमुख शहरों में कराए गए सर्वे से सामने आया है कि उपभोक्ता इसके लिए बीस प्रतिशत अधिक कीमत चुकाने तक को तैयार हैं। मोरारका फाउण्डेशन ने इस साल करीब हजार घरों तक सीधी आपूर्ति के लिए होम लाइन संस्था से करार किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया है कि रासायनिक खाद व कीटनाशकों के इस्तेमाल से पैदा उपज में कचरा करीब 10-12 प्रतिशत निकलता है, जबकि जैविक खाद के इस्तेमाल से पैदा उपज में कचरा पांच फीसदी होता है। साथ ही इस कचरे का करीब आठ [illegible] हिस्सा खेत पर पशु आहार के रूप में काम आ जाता है। यह जरूर है कि सिडबी जैसे संगठन अभी तक खेतों पर अनाज की सफाई व पैकिंग आदि को खाद्य प्रसंस्करण की श्रेणी में मानकर किसान को ऋण देने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे में किसानों के स्वयं सहायता समूह बनाने पर जोर दिया गया है। विशेषज्ञों के मंच पर 'जैविक खेती' के बारे में चर्चा होने पर सबसे पहले फल-सब्जियों पर जोर दिया जाता है, लेकिन झुन्झुनू जिले में खेती से जुड़ी महिलाओं के सर्वे में 80 फीसदी ने गेहूं, ज्वार, बाजरा, मक्का, दालें व मसालों पर जोर दिया। फिलहाल इन्हीं जिन्सों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है।

जैविक खेती

गुप्ता ने बताया कि 'जैविक खेती' में उत्पादों के प्रमाणीकरण को लेकर देश में अभी सरकारी स्तर पर प्रयास नहीं हुए हैं। ऐसे में फाउण्डेशन अपनें स्तर पर आईएसओ 9002 व आईएफओएएम जैसे संगठनों के दिशानिर्देशों की पालना कराने के प्रयास कर रहा है। इन संगठनों से सम्बद्धता व मान्यता प्राप्त करने के बाद फाउण्डेशन अपने स्तर पर किसानों के उत्पादों को प्रमाणित कर सकेगा। इससे इन किसानों की दुनिया भर के बाजार तक पहुंच बन सकेगी। इस दिशा में राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान जैविक खेती उत्पादन व विपणन विकास कार्यक्रम में प्रायोजक की भूमिका निभा रहा है। फाउण्डेशन ने आईएसओ 9002 प्रमाणीकरण की प्रक्रिया भी शुरू कर दी है।

राजस्थान पत्रिका

सीकर, बुधवार, 5 सितम्बर 2001 वर्षः 2, अंकः 24

संजीवनी बन गया वर्मी कम्पोस्ट

[कार्यालय संवाददाता]

नवलगढ़, 4 सितम्बर। 'वर्मी कम्पोस्ट' यानी केंचुए के प्रयोग से कचरे को जैविक खाद में तब्दील करना। इस जैविक खाद से उपज के साथ जमीन की उर्वरा क्षमता में इजाफा होता है। सिंचाई के लिए कम पानी की जरूरत के कारण भी राजस्थान जैसे राज्य में इसकी उपयोगिता ज्यादा है। रासायनिक खाद की तुलना में वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से राज्य में बाजरे, चने व ग्वार में करीब पचास फीसदी और मोठ की उपज में करीब 80 फीसदी वृद्धि दर्ज की गई है। 'वर्मी कम्पोस्ट' रोजगार का वैकल्पिक साधन साबित हो रहा है।

एम.आर. मोरारका -जी डी सी रूरल रिसर्च फाउण्डेशन ने झुंझुनूं, जयपुर, बीकानेर व अलवर में करीब पांच हजार किसानों को 'वर्मी कम्पोस्ट' की तकनीक सिखाकर सालाना एक लाख टन खाद की उत्पादन क्षमता विकसित कर ली है। अगले मार्च तक ढाई लाख टन की क्षमता का लक्ष्य रखा गया है। इसे 'किसान मृदा संजीवनी' नाम दिया गया है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के बिना की जाने वाली 'जैविक खाद' में 'वर्मी कम्पोस्ट' की अहम भूमिका है।

फाउण्डेशन के ओमप्रकाश ढाका ने नवलगढ़ में संस्थान के कृषि सेवा केन्द्र में बताया कि 'किसान मृदा संजीवनी' के लिए 'एपीगीज' प्रजाति के केंचुओं का इस्तेमाल किया जाता है। इसके लिए क्यारियां बना गोबर, खेत, घर या शहरी कचरे को व्यवस्थित कर 15 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान व करीब चालीस प्रतिशत आर्द्रता लगातार बनाए रखी जाती है। इन परिस्थितियों में केंचुओं की संख्या तीन माह में पांच गुणा तक बढ़ती है और ये करीब चालीस से साठ फीसदी कचरे को खाद में तब्दील कर देते हैं। ढाका के अनुसार शेखावटी क्षेत्र में किसानों को इस बारे में तकनीकी जानकारी तथा केंचुए मुफ्त मुहैया कराए जाते हैं। दूसरी जगह इन केंचुओं को पांच सौ रुपए किलो की दर से दिया जाता है। इस खाद का मूल्य 1500 से तीन हजार रुपए टन तक मिल जाता है। परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने बताया कि बीकानेर जिले में 'उरमूल सेतु' के तहत शुरू की गई 'वर्मी कम्पोस्ट' परियोजना से एक साल में गौशाला का पूरा खर्च खाद की बिक्री से निकलने लगेगा। इसके परिणामों को देखते हुए कई जगह व्यावसायिक उत्पादन भी शुरू किया गया है।

गुप्ता ने बताया कि सामान्यतः गेहूं, जौ, मक्का, चना व बाजरे के लिए प्रति हेक्टेयर दो-तीन टन वर्मी कम्पोस्ट पर्याप्त होता है। साथ ही इसके लगातार इस्तेमाल से हर बार कम खाद की जरूरत पड़ती है। दूसरी तरफ गोबर या यूरिया के इस्तेमाल के बाद सिंचाई की जरूरत बढ़ती है, जबकि वर्मी कम्पोस्ट से सिंचाई की जरूरत में 40 फीसदी तक कमी आती है। वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन अगस्त से अप्रेल तक किया जा सकता है। उन्होंने बताया कि वर्ष 2000-2001 में भंयकर सूखे व बिजली में 40 फीसदी तक कटौती की स्थिति के बावजूद वर्मी कम्पोस्ट के परिणाम बेहतर रहे हैं।

दैनिक भास्कर
उदयपुर. सोमवार, 27 अगस्त 2001

'उपभोक्ता खुद वरीयता देगा जैव कृषि उत्पादों को'

■ नगर संवाददाता

उदयपुर, 26 अगस्त। राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान (नियाम) कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रायोजित एवं मोरारका फाउंडेशन जयपुर तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के क्षेत्रीय कार्यालय की ओर से आयोजित आर्गेनिक फार्मिंग उत्पादन एवं विपणन विकास कार्यक्रम के अंतिम दिन रविवार को क्रेता-विक्रेता विचार गोष्ठी हुई। कृषि महाविद्यालय में विस्तार निदेशालय सभागार में हुई गोष्ठी में मृदा एवं विज्ञान विभाग के डा. एस.सी. भंडारी ने किचन गार्डन के लिए आर्गेनिक विधि की जानकारी दी।

विस्तार निदेशालय के डा. वी.पी. शर्मा ने बताया कि जैसे ही उपभोक्ताओं को आर्गेनिक उत्पाद मिलेंगे, उपभोक्ता जैव कृषि के महत्त्व को स्वयं पहचान पाएंगे। राजस्थान विद्यापीठ के प्रबंध संस्थान के नवनीत शर्मा ने कहा कि जैव कृषि के टिकाऊपन के लिए विपणन व्यवस्था मजबूत की जानी चाहिए। कार्यक्रम में मोरारका फाउंडेशन के वी.के. लोढ़ा ने बताया कि जैव कृषि में एकीकृत विकास कार्यक्रम द्वारा छोटी जोत वाले किसानों को लाभान्वित किया जा सकता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की परियोजना अधिकारी श्रीमती रूपा पारीक ने बताया कि जैव कृषि उत्पादों के कारण इनके प्रति रूझान में वृद्धि हो रही है। महाराणा प्रताप कृषि विवि के नव निर्वाचित छात्रसंघ अध्यक्ष गुरुमनप्रीतसिंह ने बताया कि जैव कृषि क्षेत्र के अनुसंधानों एवं बुजुर्गों की आजमाई स्वदेशी तकनीकों में सामंजस्य आवश्यक है। नव निर्वाचित छात्रसंघ महासचिव मनोज मंडोरा ने जैव कृषि क्षेत्र में प्राकृतिक कीट व्याधि से शुद्ध उत्पादन प्राप्त करने के लिए चर्चा की आवश्यकता बताई। कार्यक्रम संयोजक एवं अनुसंधान अधिकारी गिरधारीलाल गर्ग ने कहा कि ग्रामीण युवाओं को जैव कृषि की वर्तमान आवश्यकता को देखते हुए इसे उद्यम के रूप में अपनाकर गांव को खुशहाल करना चाहिए, जिससे शहरीकरण पर अंकुश लगे। मोरारका फाउंडेशन की दीप कौर, ए.के. मिश्रा, लक्ष्मीकांत चतुर्वेदी ने प्रतिभागियों से क्रेता-विक्रेता से चर्चा कर विपणन एवं वितरण विक्रय व्यवस्थाओं की रूपरेखा तैयार करने के तरीकों की योजना तैयार की, ताकि जैव कृषि के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्य योजना प्रस्तावित की जा सके।

दैनिक नवज्योति

अजमेर, बुधवार 22 अगस्त 2001

रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव के खिलाफ जैव कृषि क्रांति की जरूरत

उदयपुर, 21 अगस्त (न्यूज सर्विस)। राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार, जयपुर व मोरारका फाउण्डेशन, जयपुर तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित ऑर्गेनिक फार्मिंग उत्पादन एवं विपणन विकास कार्यक्रम प्रसार शिक्षा निदेशालय के सभागार में प्रारम्भ हुआ। उद्घाटन करते हुए डॉ. जे.एस. पंवार निदेशक प्रसार शिक्षा निदेशालय ने कहा कि स्वतन्त्रता के बाद बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्न आपूर्ति हेतु हमने हरित क्रान्ति को अपनाया और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से भरपूर अन्न उत्पादन किया।

लगभग तीन दशकों बाद उन्हीं रासायनिक ऊर्वरकों के दुष्प्रभावों को प्रकट होने से अब दूसरी जैव कृषि क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। हमें आवश्यक खाद्यान्न आपूर्ति के साथ-साथ मृदा संरक्षण के लिए आवश्यक तकनीक का प्रयोग कर सन्तुलन बनाना होगा।

एम.आर. मोरारका, जीडीसी रूरल रिसर्च फाउण्डेशन जयपुर से आए बी.के. लोढ़ा ने सम्भावित कृषि विकास कार्यक्रमों का विवरण देते हुए बताया कि राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारत कृषि द्वारा आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त कर सकता है। हमें नव उद्यमियों को कृषि क्षेत्र के लिए जागृत करना होगा। विभाग की परियोजना अधिकारी रूपा पारीक ने बताया कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य ऑर्गेनिक फार्मिंग के प्रति जागरूकता बढ़ाना और भ्रान्तियों को दूर करना है ताकि उत्पादन और विपणन में वृद्धि हो।

तकनीकी सत्र में डॉ. बी.एल. पोरवाल ने जीवांश खाद और रासायनिक खाद की गुणवत्ता का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। एक और रासायनिक ऊर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी के प्राकृतिक गुणों पर विपरीत प्रभाव देखे गए है तो दूसरी और जैविक खाद को मिट्टी के लिए संजीवनी कहा जा सकता है। इसके प्रयोग से बंजर भूमि भी धीरे-धीरे उर्वरा हो सकती है। प्राणवान मृदा में अच्छे उत्पादन के लिए पानी की आवश्यकता में भी कमी आती है।

सहायक निदेशक, कृषि विभाग गणेशलाल सेठ ने कहा कि हमारे कृषि वैज्ञानिकों के ज्ञान का उपयोग कर किसान राजस्थान को बंजर होने से बचा सकता है। इसके लिए वर्मी कम्पोस्ट खाद का प्रयोग वायु मण्डल की स्वतन्त्र नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपयोग करने की कल्चर तकनीक, तपती गर्मी में जमीन की गुड़ाई और खेत का पानी खेत में विधि से रासायनिक ऊर्वरकों की आवश्यकता पर अंकुश लगाया जा सकता है।

मोरारका फाउण्डेशन से आए ए.के. मिश्रा ने वर्मी कम्पोस्ट खाद, कल्चर व उसके उत्पादन की विधि का विवरण प्रस्तुत किया, राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किसान संगठन बनाकर ऑर्गेनिक कृषि उत्पाद व जैव खाद्य के विपणन की जानकारी दी। कार्यक्रम प्रभारी व अनुसन्धान अधिकारी गिरधारीलाल गर्ग ने कार्यक्रम का उद्देश्य नई पीढ़ी के उद्यमियों को प्रोत्साहन करना और जैव खाद्य उत्पादन को उद्यमिता के रूप में अपनाने का आह्वान किया। मोरारका फाउण्डेशन के लक्ष्मीकान्त चतुर्वेदी एवं रणदीप कौर ने प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी एकत्र कर उनकी जिज्ञासाओं का प्रारूप तैयार किया।

पत्रिका

बंगलौर से एक साथ प्रकाशित	सीकर, सोमवार, 18 जून 2001	वर्ष: 2, अंक: 16।

कृषि मंत्रालय के दल ने केंचुआ खाद निर्माण की गतिविधियां देखी

राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाने के प्रयास

झुंझुनूं, 17 जून [नि.सं.]। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय में अतिरिक्त आयुक्त [उर्वरक] डॉ. एम.आर. मोटसरा का मानना है कि जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए हमें जैविक खाद की ओर मुड़ना होगा। रासायनिक खाद व केंचूआ खाद के सम्मिश्रण से खेती में आमूल परिवर्तन लाना होगा। इसके लिए केंचूआ खाद किसानों तक पर्याप्त मात्रा में पहुंचाने तथा इसके निर्माण की तकनीक से आम किसान को अवगत कराने की आवश्यकता है। डॉ. मोटसरा भारत सरकार द्वारा जैविक खेती के संबंध में विभिन्न स्तरों पर जानकारी दी। एकत्र करने को गठित ग्यारह सदस्यीय टीम के सदस्य के रूप में गुरुवार व शुक्रवार को अपनी सहयोगी उप आयुक्त [उर्वरक] वंदना द्विवेदी के साथ झुंझुनूं जिले के दो दिवसीय दौरे पर आए थे।

उन्होंने नवलगढ़ पंचायत समिति के विभिन्न गांवों में एम.आर. मोरारका जी.डी.सी. ग्रामीण अनुसंधान संस्थान के सौजन्य से केंचूआ खाद निर्माण के चल रहे काम को देखा तथा समझा। डॉ. मोटसरा ने नेहरों की ढाणी में अग्रणी किसान मोदूराम के खेत पर 'पत्रिका' से बातचीत में कई महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की।डॉ. मोटसरा का कहना था कि रासायनिक खादों के अंधाधुंध उपयोग से हमने कृषि उत्पादन में तो खूब बढ़ोतरी कर ली है लेकिन इसका दुष्परिणाम जमीन की उर्वरा शक्ति के ह्रास के रूप में सामने आया है। इसके अलावा खाद्य पदार्थों के स्वाद में भी कमी आई है और मनुष्य को कई रोगों ने भी घेरना शुरू कर दिया है। इसलिए रासायनिक खाद के साथ केंचूआ खाद का निश्चित मात्रा में सम्मिश्रण कर खेती की जाए तो काफी लाभ मिल सकता है। इसके लिए उन्होंने सुझाव दिया कि सरकार ऐसी कोई व्यवस्था करें ताकि किसानों को केंचूआ मुफ्त मिल सकें और सम्बन्धित जानकारी का प्रशिक्षण दिया जाए। उन्होंने माना कि किसान प्रति एक टन खाद के उत्पादन पर दो हजार रुपए तक तो खर्च कर सकता है। यह भी सही है कि केंचूआ खाद का अभी इतनी मात्रा में उत्पादन नहीं हो पा रहा है लेकिन इसे प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इस दल ने मोरारका फाउंडेशन के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता व परियोजना समन्वयक ओमप्रकाश ढाका के साथ मोहनबाड़ी में सेठों की प्याऊ के समीप दुर्गा देवी के खेती में केंचूआ खाद निर्माण की प्रक्रिया देखी तथा उससे इसके लाभों के बारे में जाना।

दल ने नवलगढ़ में बनवारी लाल सैनी के यहां केंचूआ खाद से उगाई जा रही सब्जी के बारे में जानकारी ली। सैनी ने दल को बताया कि वे जैविक खेती से उगाई सब्जी के नाम से अपना उत्पादन बेचेंगे। इस दल ने फाउंडेशन द्वारा नवलगढ़ में नव विकसित मोरारका एग्रो रिसर्च एंड सर्विस सेन्टर को भी देखा तथा उसकी सराहना की। फाउंडेशन के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने बताया कि देश भर में जैविक खेती को लेकर हो रही चर्चा के बीच भारत सरकार ने गैर परंपरागत ढंग से खाद के निर्माण के बारे में सच्चाई पता लगाने के लिए इस दल देश के विभिन्न इलाकों का भ्रमण कर रहा है। इस दल की सिफारिशों से केंचूआ खाद को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाने का मार्ग प्रशस्त होने की उम्मीद है। फाउंडेशन ने इस दल को दो दिवसीय दौरे में दस किलो प्रतिदिन से लेकर दस टन केंचूआ खाद के उत्पादन की इकाइयों का अवलोकन करवाया गया। अब फाउंडेशन यह भी चाहता है कि केंचूआ खाद स्वरोजगार का भी माध्यम बने।

उम्मीद की जा रही है कि अब कोई नीतिगत निर्णय हो सकेगा।इस दल के साथ फाउंडेशन के बसंत लोका, कृषि विभाग के अतिरिक्त निदेशक गोपालसिंह, कृषि विज्ञान केन्द्र आबूसर के मुख्य वैज्ञानिक डॉ. हनुमान प्रसाद, जिला पर्यावरण सुधार समिति के अध्यक्ष राजेश अग्रवाल भी थे जिन्होंने दल को विभिन्न जानकारी दी। कृषि मंत्रालय से आई वंदना द्विवेदी ने फाउंडेशन द्वारा जिन ग्रामीणों को रसोई गैस कनेक्शन दिलवाए हैं, उन परिवारों में जाकर यह जानने की कोशिश की कि क्या इससे अब उन्होंने ईंधन के रूप में लकड़ी जलाना बंद कर दिया है? इसके अलावा सुपरवाइजर श्रीमती सुभीता ने श्रीमती वंदना द्विवेदी को उन ग्रामीण महिलाओं से बातचीत करवाई जिन्होंने स्वयं सहायता समूह बनाकर अपना आर्थिक स्तर ऊंचा उठाने का प्रयास किया है। इस मौके पर फाउंडेशन के जनसंपर्क अधिकारी चौधरी सुरताराम भी मौजूद थे।

जयपुर, 7 जून 2001

साग-सब्जियों में न पहले जैसा स्वाद, न सुगंध

[कार्यालय संवाददाता]

जयपुर, 6 जून। कई गुणा कीमतें बढ़ने के बावजूद साग-सब्जियों का स्वाद जाता रहा। पालक, धनिया, पुदीना समेत अनेक पत्तेदार सब्जियों में कसैलापन आ गया है। रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के कारण टमाटर, बैंगन, गोभी, मटर, भिण्डी आदि देखने में तो बेहतर नजर आते हैं, लेकिन स्वाद और सुगन्ध के मामले में

रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का असर

अब वे पहले की तुलना में आधे भी नहीं रहे। मानव स्वास्थ्य पर भी इन सब का विपरीत असर पड़ा है।

जयपुर, अलवर और झुन्झुनू जिलों में करवाए गए एक सर्वेक्षण में करीब पांच सौ लोगों ने यह राय व्यक्त की। गैर-सरकारी संगठन एम. आर. मोरारका जी. डी. सी. रूरल रिसर्च फाउण्डेशन और राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, भारत सरकार की ओर से करवाए गए इस सर्वेक्षण में बाजार में उपलब्ध अनाज, दालों, फल-सब्जियों और मसालों की गुणवत्ता पर लोगों ने अनेक सवालिया निशान लगाए। ज्यादातर लोगों का कहना था कि आधुनिक विज्ञान के नाम पर प्रकृति से जो छेड़छाड़ की गई है, उसी के कारण पिछले कुछ दशकों के दौरान पेट व शरीर के अन्य रोगों में बढ़ोतरी हुई है। सर्वेक्षण के अनुसार ज्यादा उपज के चक्कर में पिछले कुछ वर्षों के दौरान जो उर्वरकों और कीटनाशकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया है, उसी से भोज्य पदार्थों की गुणवत्ता में यह गिरावट आई है। सर्वे में शामिल किए गए 91 से 93 प्रतिशत लोगों का स्पष्ट तौर पर मानना था कि कीटनाशकों, रासायनिक उर्वरकों और गटर के पानी से जो खेती की जा रही है, उसे तत्काल रोका जाना चाहिए। जबकि सिर्फ एक से तीन प्रतिशत लोगों ने कीटनाशकों, रासायनिक उर्वरकों और सीवरेज के पानी के उपयोग से होने वाली खेती को उचित बताया। करीब अस्सी प्रतिशत लोगों ने राय व्यक्त की कि खेती के तरीकों में जो तब्दीली आई है उसकी वजह से खाद्य पदार्थों की पोषण क्षमता में भी गिरावट आई है। इसी वजह से शारीरिक तकलीफों में भी इजाफा हुआ है। सर्वे में जयपुर के 72, अलवर के 48 तथा झुंझुनूं जिले के 111 लोगों को शामिल किया गया। इसमें से 58 प्रतिशत लोगों को जैविक कृषि [आर्गेनिक फार्मिंग] के बारे में जानकारी थी।

बिना रासायनिक खाद और कीटनाशकों के की जाने वाली इस खेती को ज्यादातर लोगों ने उचित बताया। करीब 73 प्रतिशत लोग इस बात के लिए भी तैयार थे कि वे आर्गेनिक फार्मिंग के जरिए पैदा हुए कृषि उत्पादों को खरीदने के लिए कुछ पैसा अतिरिक्त भी व्यय कर सकते हैं।

पिछले कई वर्षों से आर्गेनिक फार्मिंग के क्षेत्र में कार्यरत मोरारका फाउण्डेशन के निदेशक मुकेश गुप्ता ने बताया कि शेखावाटी सम्भाग के दर्जनों गांवों के किसान रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग बन्द कर के वापस परम्परागत खेती को अपना चुके हैं। उन्होंने कहा कि जैविक तकनीक से खेती करने के लिए केंचुए की खाद [वर्मी कम्पोस्ट] का अपना विशेष महत्व है।

कोई भी किसान इसे अपना कर कम खर्च में उत्पादन बढ़ा सकता है। गुप्ता ने बताया कि सभी तरह के कार्बनिक कचरे से यह खाद तैयार की जा सकती है। केंचुआ इस कचरे को भोजन के रूप में प्रयोग करता है। बदले में जो मल त्याग करता है उसका उपयोग खाद के रूप में किया जाता है। इस खाद में नाइट्रोजन के अलावा केंचुए की म्यूकस के लाखों सूक्ष्म जीव भी होते हैं जो फसलों को विशेष पोषण प्रदान करते हैं। इसके अलावा केंचुएं की खाद के लगातार उपयोग से भूमि की उर्वरक क्षमता में बढ़ोतरी होती है, वह अलग।

पत्रिका
रविवारीय

3 जून 2001

गत 26 जनवरी को गुजरात की भूकंप त्रासदी ने लाखों लोगों को प्रभावित किया था। अपनी जान से हाथ धो चुके लोगों के लिए तो कोई कर भी क्या सकता था, लेकिन जो जीवित बच गए, अपाहिज हो गए, परिजनों के छिन जाने पर अकेले रह गए, ऐसे लोगों की आंखों में फिर से रोशनी लाने का अनूठा प्रयास किया है झुंझनूं जिले में कार्यरत स्वयंसेवी संस्था एम.आर. मोरारका जी.डी.सी. ग्रामीण अनुसंधान संस्थान ने।

इस संस्थान के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने भूकंप त्रासदी से प्रभावित कच्छ इलाके का दौरा किया तथा इस बाबत चिंतन किया कि इस हादसे में हमेशा के लिए विकलांग हो चुके लोगों, विधवा हो चुकी महिलाओं तथा ऐसे बुजुर्गों, जिनका कोई सहारा नहीं रहा, की मदद कैसे की जाए। फौरी सहायता उनकी ताजिन्दगी सहारा नहीं बन सकती। गुप्ता के मन में अचानक एक विचार आया कि ऐसे लोगों को क्यों न रोजगार का ऐसा जरिया दे दिया जाए, जिसमें उनकी उम्र, विकलांगता कहीं आड़े न आए। इस पर

केंचुआ खाद ढेर में गोबर खाद डालते श्रमिक

कोशिश रोशनी लाने की

तैयार खाद की पैकिंग करते हुए

गुप्ता ने संस्थान द्वारा वर्मी कम्पोस्ट [केंचुआ खाद] विकसित कर इसे ही स्वरोजगार का जरिया बनाने की सोची। पूरी परियोजना की जानकारी देते हुए मुकेश गुप्ता ने बताया कि आजकल जैविक खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। रासायनिक खाद के अंधाधुंध उपयोग से चौतरफा नुकसान हो रहा है। एक ओर तो जमीन बंजर होती जा रही है, दूसरे, इस तरह उपजाया अन्न खाने से मानव शरीर रोगों का घर बन रहा है। संस्थान ने इस दृष्टि से केंचुआ खाद का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू कर रखा है। इस प्रकार की खाद की मांग भी दिनोंदिन बढ़ रही है।

भूकंप प्रभावित दो हजार लोगों को लाभान्वित करने के लिए संस्थान ने भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग से सम्पर्क किया। बुजुर्गों, विधवाओं व विकलांगों का चयन कर उनके यहां केंचुआ खाद का उत्पादन शीघ्र ही प्रारंभ किया जा रहा है। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज गोबर होती है क्योंकि इसी से यह खाद बनती है। संस्थान ने प्रस्तावित परिवारों को उनके आस-पास की गौशालाओं से अनुबंधित कराया है। इन्हें नाममात्र की राशि में गोबर मिलेगा। संस्थान इन लोगों को केंचुआ खाद निर्माण की तकनीक, देखरेख का प्रशिक्षण भी मुहैया करा रहा है, जो बहुत आसान है। प्रतिदिन मात्र आधा घंटे की देखरेख से एक परिवार प्रतिमाह इतना कमा लेगा कि उसकी दो जून की रोजी-रोटी चल सके। गोबर से इस तरह बनी खाद के विक्रय के लिए भी संस्थान ने ऐसे किसानों से इन परिवारों को जोड़ दिया है जो जैविक खेती करते हैं, रासायनिक खाद काम में नहीं लेते।

गुप्ता बताते हैं कि यह अपने आप में एक अनूठा प्रयोग है। वर्मी कम्पोस्ट के प्रति बढ़ते रुझान को देखते हुए उन्होंने राजस्थान से बाहर कदम बढ़ाए हैं। संस्थान ने उत्तर प्रदेश सरकार के यू.पी. एग्रो से तालमेल कर हापुड़ में बड़े पैमाने पर केंचुआ खाद बनाने व उसके मार्केटिंग का काम हाथ में लिया है। वे बताते हैं- 'कोई व्यक्ति 50,000 से 100,000 रुपए का निवेश कर इस काम से प्रतिवर्ष 50,000 रुपए कमा सकता है।' संस्थान ने इस खाद के व्यावसायिक विपणन के लिए 'किसान मृदा संजीवनी' नाम से पंजीकरण भी करवा लिया है। इसके अलावा हमने छुटपुट खाद बनाने वाले से लेकर वृहद स्तर पर उत्पादन करने वालों को एक छत के नीचे लाने के लिए 'वर्मी कम्पोस्ट फाउंडेशन' भी बना दिया है। आज करीब 1700 लोगों की राजस्थान में वर्मी कम्पोस्ट की इकाइयां लग चुकी हैं। इन लोगों को फाउंडेशन से जोड़ा जा रहा है। खुद संस्थान के जयपुर तथा झाझड़ [झुंझुनूं] स्थित कार्यालयों पर बने सैकड़ों ट्रेन्चेज में प्रतिमाह टनों खाद का उत्पादन हो रहा है। कहां तो गोबर को सिर्फ जलाने के काम में लिया जाता रहा जबकि यहां उसकी कीमत पशुपालक को मिल रही है। संस्थान तो सब्जी मंडी आदि से फलों, सब्जी आदि का कचरा भी लाकर काम में ले रहा है।

गुजरात की भूकंप-त्रासदी

केंचुआ खाद की मांग खाड़ी देशों से

एम.आर. मोरारका जी.डी.सी. ग्रामीण अनुसंधान संस्थान ने केंचुआ खाद के मामले में भौगोलिक सीमाएं भी पार कर ली हैं। देश के विभिन्न राज्यों से तो उनके पास पूछताछ आती ही रहती है और अब तो इससे भी एक कदम आगे दुबई से इस खाद की मांग आई है।

संस्थान के जनसम्पर्क अधिकारी चौधरी सुरताराम ने बताया- 'हाल ही दुबई से एक संस्थान ने प्रति सप्ताह 18 टन वर्मी कम्पोस्ट की मांग की है। हमने पूछा कि वे इतनी खाद का क्या करेंगे? तो उस संस्था के प्रतिनिधि ने बताया कि दुबई में एक शेख के पास काफी संख्या में अरबी घोड़े हैं। इन घोड़ों को हरी घास [चारा] उपलब्ध कराने का काम उनकी संस्था करती है। अब यह संस्था वर्मी कम्पोस्ट से हरा चारा उगाना चाहती है। यह चारा उन घोड़ों की खुराक का हिस्सा बनेगा।'

– माणक मोट 'मणि'

राजस्थान
पत्रिका
सीकर, 15 मार्च 2001

पशुपालन राज्यमंत्री हरिसिंह कुम्हेर झुंझुनू जिले के नूनिया गोठड़ा गांव में केंचूआ खाद देखते हुए। पत्रिका फोटो

केंचूआ खाद किसानों के लिए लाभ का सौदा-हरि सिंह

नूनिया गोठड़ा में व्यावसायिक उत्पादन शुरू

झुंझुनू, 14 मार्च (नि.सं.)। एम.आर.मोरारका जी.डी.सी ग्रामीण अनुसंधान संस्थान के सौजन्य से जिले के नूनिया गोठड़ा गांव में केंचूआ खाद का व्यावसायिक उत्पादन प्रारम्भ हो गया है। पशुपालन राज्य मंत्री हरिसिंह कुम्हेर ने मंगलवार को यहां केंचूआ खाद की उत्पादन गतिविधियों को देखा तथा वहां मौजूद किसानों को सम्बोधित करते हुए कहा कि केंचूआ खाद किसानों के लिए लाभ का सौदा है। इससे रासायनिक खाद के दुष्परिणामों से बचा जा सकेगा।

कुम्हेर ने कहा कि किसान केंचूआ खाद के उत्पादन के साथ ही अपने खेतों में इसे ही काम में लें। उन्होंने कहा कि केंचूआ खाद के बारे में अधिकाधिक लोगों को जानकारी देकर उन्हें इसके लिए प्रेरित करना आवश्यक है। कुम्हेर ने इस खाद के निर्माण के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। मोरारका फाउंडेशन के परियोजना समन्वयक ओमप्रकाश ढाका ने कुम्हेर को बताया कि फाउंडेशन ने मात्र 10 केंचूए लाकर शुरूआत की थी। आज संस्था केंचूआ खाद उत्पादन में विश्व की प्रमुख संस्था बन चुकी है। इसके साथ ही फाउंडेशन ने विभिन्न स्थानों पर किसानों को प्रेरित कर वहां केंचूआ खाद निर्माण के लिए ट्रेंच बनाए है। फाउंडेशन किसानों को प्रशिक्षित भी कर रहा है। झुंझुनू जिले के अलावा भी राज्य में अनेक स्थानों पर बड़े पैमाने पर केंचूआ खाद बनाई जा रही है। फाउंडेशन ने उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा में भी इस जानकारी का हस्तांतरण किया है। पशुपालन विभाग के उपनिदेशक डॉ. राजेश मान ने मंत्री को विभाग की गतिविधियों से अवगत कराया। इस अवसर पर नूनिया गोठड़ा के अमृत डेयरी के विजयपाल ने बताया कि उनके यहां 100 फीट लम्बे तीन ट्रेंच बनाकर खाद का उत्पादन किया जा रहा है। इसके अलावा दस और ट्रेंच भी शुरू किए हैं। फाउंडेशन के जन सम्पर्क अधिकारी चौधरी सुरताराम, बख्तावरपुरा गांव के निहालसिंह तथा फाउंडेशन की एड्स नियंत्रण अधिकारी श्रीमती सरोज ने प्रारम्भ में पशुपालन मंत्री का स्वागत किया। पशुपालन मंत्री ने ट्रेंच में से केंचूए निकालकर स्वयं उनका अवलोकन किया। इन केंचूओं की विशेषता यह है कि ये दिन दूने, रात-चौगुने की संख्या में बढ़ते जाते हैं। फाउंडेशन ने इन केंचूओं को भी बेचने की व्यवस्था की है। ताकि किसान अपने यहां ले जाकर खाद बना सकें।

दैनिक भास्कर

भारत का सबसे तेज बढ़ता अखबार ■ उदयपुर, सोमवार 29 जनवरी 2001

'वर्मीखाद डालें तो फसल को पानी कम चाहिए'

प्लस संवाददाता

उदयपुर, 28 जनवरी। सूखे से लड़ने का सबसे आसान तरीका वर्मीकल्चर हो सकता है। यदि बारानी भूमि में वर्मी खाद का उपयोग किया जाए तो 40 से 50 प्रतिशत पानी की कम आवश्यकता पड़ेगी।
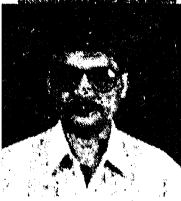
यह बात मोरारका फाउंडेशन (जयपुर) के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने भास्कर से हुई एक भेंट में कही। उन्होंने कहा कि उदयपुर के वातावरण को देखते हुए उक्त परियोजना उपयुक्त मानी जा रही है। गुप्ता के अनुसार शहर के आसपास से निकलने वाले कचरे से लगभग 250 छोटे खाद बनाने के प्लांट तथा 15 से 20 बड़े प्लांट लगाए जा सकते हैं। इससे जहां कचरे की समस्या दूर हो जाएगी, वहीं रोजगार भी उपलब्ध हो सकेगा।

उन्होंने बताया कि मोरारका फाउंडेशन ने स्वयं इसका उत्पादन प्रारंभ किया है, जहां 20 हजार टन खाद प्रतिवर्ष बनाई जा रही है। अब तक 250 व्यक्तियों को रोजगार के लिए निर्माण कार्य से जोड़ा है तथा 2000 किसानों को निजी उपयोग के लिए प्रेरित किया है।

गुप्ता के अनुसार क्षमता के अनुरूप प्लांट लगाकर इसे घरेलू स्तर पर भी तैयार किया जा सकता है। यदि नगर की संस्थाएं, किसान इसमें रुचि ले तो उन्हें केंचुए उपलब्ध कराए जा सकते हैं, वहीं आवश्यक तकनीकी जानकारी भी दी जाएगी। गुप्ता के अनुसार वर्मीकल्चर एक पर्यावरण पद्धति है, जिसमें घर के कार्बनिक कचरे का उपयोग कर खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। वर्मी खाद में देशी खाद की तुलना में पांच गुना नाइट्रोजन, आठ गुना फास्फोरस, 11 गुना पोटेशियम व तीन गुना मैग्नीशियम अधिक पाया जाता है। उनके अनुसार इस खाद में एंटीबायोटिक पदार्थ होते हैं, जो पौधों में कीट व बीमारी से बचाव की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

गुप्ता ने बताया कि खाद की विशेषताओं में यह भी देखा गया कि ये खाद फसल के किसी भी समय (बुआई के पूर्व से लेकर कटाई के पहले तक) डालकर भरपूर लाभ दे सकती है। रबी फसलों में इस खाद के उपयोग के बाद पाला पड़ने की समस्या से भी बहुत हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक स्वयं इस तरह की खाद तैयार करने लगे हैं, तो कुछ कृषक खाद खरीदकर भी उपयोग में ला रहे हैं।

वर्मीकल्चर तकनीक पर कार्यशाला

नगर संवाददाता

उदयपुर, 28 जनवरी। वर्मीकल्चर तकनीक द्वारा कूड़े-कचरे, गोबर आदि से न केवल उपयोगी खाद प्राप्त की जा सकती है, बल्कि आमदनी भी बढ़ाई जा सकती है।

यह बात जयपुर के मोरारका फाउंडेशन के मुकेश गुप्ता ने रविवार को पैसिफिक महाविद्यालय सभागार में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग तथा अरावली अनुसंधान एवं विकास सोसायटी के तत्वावधान में आयोजित वर्मीकल्चर तकनीक कार्यशाला में मुख्य वक्ता के रूप में कही। गुप्ता ने कहा कि वर्मीकल्चर तकनीक को वर्तमान में व्यवसाय के रूप में अपनाया जा रहा है, जिसमें वर्मी खाद तथा केंचुओं को बेचकर अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि वर्मी खाद आम देशी खाद से आठ गुणा गुणवत्ता वाली होती है, इसमें पोषक तत्वों की मात्रा कहीं अधिक होती है। इस कारण खाद का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस अवसर पर गृह विज्ञान महाविद्यालय की सहआचार्य डा. सुमनसिंह ने कहा कि घरेलू स्तर पर भी वर्मीकल्चर तकनीक को आसानी से अपनाया जा सकता है। उन्होंने बताया कि रसोईघर व घरों से निकले कचरे को वर्मी कम्पोस्ट में बदलकर इस खाद का उपयोग किचन गार्डन तथा नर्सरी में किया जा सकता है। कार्यक्रम के आरंभ में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की परियोजना अधिकारी श्रीमती रूपा पारीक ने कहा कि वर्मीकल्चर तकनीक से वर्मी खाद बनाने की प्रक्रिया इतनी सरल तथा कम लागत की है कि इसका लाभ आम किसान भी उठा सकता है। अरावली अनुसंधान एवं विकास सोसायटी के मानद अध्यक्ष डा. विनोद अग्रवाल ने बताया कि जिले के चार गांवों पडूणा, पालड़ी, लोयरा तथा बड़गांव में उक्त तकनीक का प्रसार एक पायलट परियोजना के तहत किया जा रहा है। कार्यशाला के खुले सत्र में इंदुशेखर व्यास, डा. के.एल. कोठारी, शांतिलाल भंडारी ने भी विचार रखे।

कार्यशाला में शुचि अभियान से जुड़े डा. अरविंद भटनागर ने वर्मी खाद बनाने की तकनीक को सफल एवं व्यावहारिक बताया। कार्यशाला में विभिन्न संगठनों के लगभग 54 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

THE HINDUSTAN TIMES

FRIDAY, JANUARY 12, 2001

Good news for health junkies, organic food is here

ANJUL TOMAR
JAIPUR, JANUARY 11

WHAT METROS eat today, the rest of the country eats tomorrow! So, though organic food may take some time to catch on in the city, organic farming, which does not use chemical fertilisers or pesticides, is fast spreading in the State.

It may soon open new export opportunities for farmers in the State, provided they get hybrid seeds and professional support for production, post-production.

"We are trying to make projections for the market and identify the area under organic production. Many small and marginal farmers are traditionally growing crops without using any synthetic material," says Rakesh Gupta, project director MR Morarka Rural Research Foundation.

The company is planning to make it a big-time business. About 500 farmers have already been identified for organic farming.

Organically grown crops are sold at 20-30 per cent higher prices than those grown non-organically, says Gupta. The agriculturists use traditional seeds, natural (organic) manure, including vermi compost that is prepared using earthworms.

Says Gupta, "We are planning to enrol more than 1,000 farmers by the end of this year, to whom the company would provide technical assistance for producing organic crops."

Food grown organically is rich in vitamins and minerals, says an agriculture specialist. The crops under organic agriculture include wheat, mustard, barley, pulses, cereals and about 150 varieties of vegetables. Presently, about 100 local families are consuming organic food in the city. It would soon be available through an outlet by next month, Gupta disclosed.

The Morarka Foundation has tied up with the National Institute of Agricultural Marketing of India (NIAM) for the marketing of its produce nationally and internationally.

Presently, NIAM is trying to evolve indigenous standards for the marketing of organic food. About 1,000 hectares of land is under organic cultivation in the State, says Sharma. The entire process of cultivating organic crops does not incur any extra cost. It only requires skill development, says Rajendra Sharma, executive director of the Foundation. The company is trying to standardise the crop by introducing quality control parameters such as uniform seeds, uniform procedure for production so that the produce is of high quality, he says. NIAM is working on isolating and identifying the produce for its branding.

The company is holding workshops in Jaipur, Jodhpur, Alwar, Churu and Jhunjhunu to promote organic food. The potential customers -housewives, chefs, hoteliers and retailers — would be invited to give their suggestions. ✦

THE TIMES OF INDIA

SATURDAY, JANUARY 13, 2001

Vermi compost gaining in popularity

The Times of India News Service

JAIPUR: Vermi compost units in Rajasthan have not only been successful in maintaining the ecology,but have been proving to be an effective replacement for chemical fertilisers. It has paved the way for organic farming and cultivation of farm produce without the use of any chemicals.

The farmers in some parts of the state have found vermi compost suitable for raising agricultural production by 20 to 25 percent. The farmers have been using vermi compost on crops such as coarse cereals, oilseeds, fodder and vegetables etc.

M.R. Morarka-GDC Rural Research Foundation, headed by former Union minister Kamal Morarka started the vermi compost culture among the farmers of Jhunjhunu and Sikar districts.

The Morarka Foundation's romance with vermi culture began in 1995 by initiating experiments to demystify technology and evolve a solution with the potential to raise average land productivity.

"Earthworms were known to be beneficial living creatures, but not much was done to artificially breed these worms. The Foundation was encouraged by the then joint director of agriculture of Rajasthan government in 1995 to use Eisina Foetida (red worms). We started with just ten worms and with various experiments and World Bank assistance set up 15 vermi compost units in semi desert Jhunjhunu districts," said Rajendra Sharma, executive director of the Foundation.

There are now over 250 such units in Jaipur, Jhunjhunu, Sikar and Alwar districts.

Each unit is producing on an average 10 metric tonnes of vermi compost. Over 50 commercial units producing an average of 400 MT vermi compost per unit per year have also been installed in the state. The Centre's department of bio- technology has adopted the Morarka Foundation's technology for teaching the farmers how to set up a vermi compost plant.

THE HINDUSTAN TIMES

NEW DELHI THURSDAY JANUARY 11, 2001
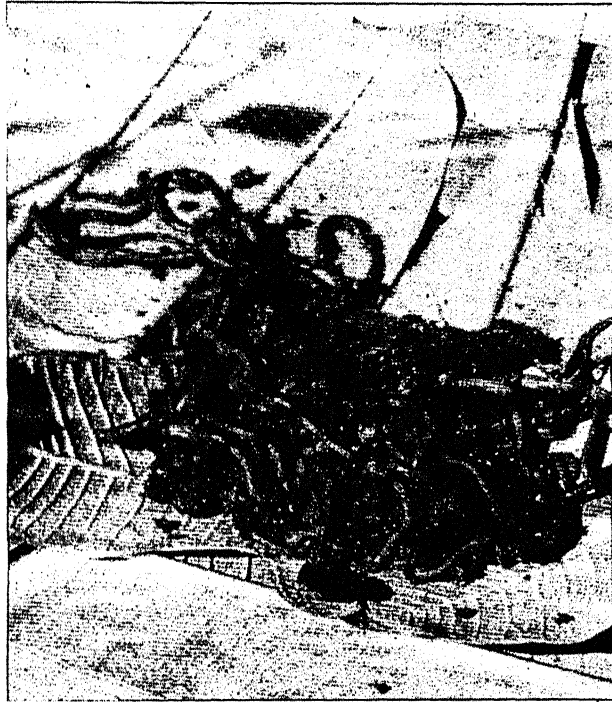
ECO-FRIENDLY MANURE PRODUCERS: Earthworms used for preparing manure at the M R Morarka foundation

New vermiculture technique developed

HT CORRESPONDENT
JAIPUR, JANUARY 10

AGRICULTURAL ENGINEERS in the State claim to have developed a technique for rapid multiplication of earthworms, enabling farmers to get organic compost at an economical price, even under drought conditions.

Using the vermi culture technique, the manure produced is good in moisture content and is known to increase productivity up to 30 per cent, said Mukesh Gupta, Project Director of a private rural research foundation.

The multiplication rate of earthworms has been standardised at 1:1000 per year as against the standard reproduction of 1:20 in a year, said Gupta. The artificial conditions for rapid multiplication of earthworms, regarded as beneficial for agricultural land, is achieved 400-500 times more in an year through this technique as compared to the other ones, he said.

Based on the new vermiculture technique, so far 250 farm units have been established in Jaipur, Jhunjhunu, Sikar and Alwar districts which are producing on an average, 10 metric tonnes of vermi compost per unit per year, he said.

More than 50 commercial units producing an average of 400 tonnes of vermi compost per unit per year have also been installed, he added. The Department of Biotechnology (DBT) also took up a programme to scientifically document the vermi compost knowhow transfer to farmers, Gupta said. The company has plans to set up three units in the city to convert urban solid organic waste into vermi compost, which would be used as manure.

Half of the total waste produced in the city was organic in nature. Gupta said that the company would take care of all the steps involved— right from transportation to marketing. The company is planning to tie up with hotels, restaurants and hospitals, which produced most of the organic waste. The programme would later be extended to other cities. ✦

दैनिक नवज्योति

जयपुर, गुरुवार, 11 जनवरी, 2001

अकाल व पाले से निपटने में वर्मी कम्पोस्ट खाद कारगर

नवज्योति ब्यूरो

जयपुर, 10 जनवरी। अकाल से निपटने में वर्मी कम्पोस्ट खाद कारगर साबित हो सकता है। इससे रबी फसलों को पाले की चपेट से भी बचाया जा सकता है।

एम.आर. मुरारका फाउण्डेशन के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने बुधवार को यहां पत्रकारों को बताया कि वर्मी कम्पोस्ट खाद के उन क्षेत्रों में भी अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं, जहां तीस प्रतिशत तक बारिश कम हुई हो। इस खाद से खाद्यान्नों की गुणवत्ता में भी सुधार आ सकता है। उनके अनुसार एक हजार यूनिट कृषि तथा वाणिज्य क्षेत्र में पचास यूनिट वर्मी कम्पोस्ट खाद बना रही है। प्रदेश में जयपुर के साथ ही अलवर, सीकर और झुंझुनूं जिलों में वर्मी कम्पोस्ट खाद तैयार की जा रही है। गुप्ता ने बताया कि प्रदेश के छह बड़े शहरों के कचरा प्रबंधन के लिए एशियन विकास बैंक की ओर से आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जा रही है, जिसके तहत शहरी कचरे से वर्मी कम्पोस्ट खाद बनाने का प्रस्ताव दिया गया है। अब तक किए गए परीक्षणों के अनुसार वर्मी कम्पोस्ट से सभी खाद्यान्न फसलों में 20 से 30 प्रतिशत तथा फल-सब्जियों के उत्पादन में 150 से 200 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। फाउण्डेशन ने केंचुओं के उत्पादन में भी कीर्तिमान कायम किया है। गत वर्ष दिसम्बर माह में फाउण्डेशन ने अपनी सहयोगी इकाइयों के माध्यम से दस करोड़ केंचुओं का उत्पादन किया। इससे वर्मी कम्पोस्ट की मांग पूरी हो सकेगी। उन्होंने टोंक रोड स्थित शोध संस्थान परिसर में दिखाया कि सतह पर केंचुआ उत्पादन की तकनीक गड्ढे में केंचुआ उत्पादन से किस तरह बेहतर है। इस तकनीक के माध्यम से शहर की कचरा प्रबंधन संबंधी समस्या से भी छुटकारा पाया जा सकता है।

इसके संबंध में फाउण्डेशन ने प्रशासन को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। फाउण्डेशन के परियोजना निदेशक ने कहा कि उनके द्वारा हासिल उपलब्धि को गिनीज बुक में दर्ज कराने के प्रयास किए जा रहे हैं। साथ ही पेटेण्ट की प्रक्रिया भी शीघ्र शुरू कर दी जाएगी। फाउण्डेशन के प्रबंध निदेशक राजेन्द्र शर्मा ने बताया कि वर्मी कम्पोस्ट खाद से रबी फसल को दिए जाने वाले पानी की बचत की जा सकती है।

जयपुर, 2 जनवरी 2001

छोटे से जीव की बदौलत फिरेंगे गौशालाओं के दिन

[कार्यालय संवाददाता]

जयपुर, 1 जनवरी। एक छोटे से जीव की बदौलत गायों और गौशालाओं के दिन अब फिरने वाले हैं। जयपुर स्थित एक गैर-सरकारी संगठन ने केंचुए की सहायता से एक ऐसा तंत्र विकसित किया है, जिससे बिना दूध देने वाली गाय से भी प्रतिदिन सात रुपए तक कमाए जा सकते हैं। राज्य सरकार ने यह कार्यक्रम स्वीकार कर इसे मूर्त रूप देने की तैयारी भी शुरू कर दी है।

इस कार्यक्रम के तहत दूध नहीं देने वाली गायें के गोबर से वर्मीकपोस्ट बनाए जाने की योजना है। वर्मीकपोस्ट के उपयोग से बिना रासायनिक उर्वरक काम में लिए अनाजों, दालों और तिलहनों का उत्पादन पच्चीस प्रतिशत जबकि सब्जियों और फलों का उत्पादन तीन सौ फीसदी तक बढ़ाया जा सकता है। इस वजह से केंचुए से तैयार खाद [वर्मीकपोस्ट] की मांग में जबर्दस्त बढ़ोतरी हुई है। शीघ्र ही लागू किए जाने वाले इस प्रोजेक्ट के तहत राज्य की छोटी-मोटी 200-250 गौशालाओं से निकलने वाले गोबर से वर्मीकपोस्ट तैयार करा उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाएगा। इस कार्य के लिए राहत सचिव रामलुभाया के निर्देश पर 22 जिलों के जिला कलेक्टरों के प्रतिनिधियों ने जयपुर स्थित वर्मीकपोस्ट के प्रोजेक्ट का मुआयना कर उसे अपने यहां शुरू करने पर काम प्रारम्भ कर दिया।

दरअसल केंचुआ गोबर को भोज्य सामग्री के रूप में उपयोग करता है। जिसके बदले में वह म्यूकसयुक्त नाइट्रोजन से भरपुर विष्ठा का त्याग करता है। इसी को 'वर्मीकपोस्ट' कहा जाता है। वर्मीकपोस्ट का उपयोग करने पर मृदा की जीवनशक्ति कई गुणा बढ़ जाती है, जिससे वहां पैदा की जाने वाली फसलों को महंगे रासायनिक उर्वरक की जरूरत नहीं पड़ती। बिना रासायनिक खाद और कीटनाशकों के तैयार होने वाले कृषि उत्पादों को 'ऑर्गैनिक फूड' के नाम से जाना जाता है, जो साधारण कृषि उत्पादों से 30 से 50 फीसदी महंगा होता है।

जैम स्टोन पार्क, दुर्गापुरा स्थित एम.आर. मोरारका जी.डी.सी. रूरल रिसर्च फाउंडेशन के परियोजना निदेशक मुकेश गुप्ता ने बताया कि उन्होंने वर्ष 1995 में सिर्फ 10 केंचुओं से काम शुरू किया। जो अब बढ़कर लाखों टन हो गए हैं। इसके अलावा उनके यहां प्रतिवर्ष 25 हजार मैट्रिक टन वर्मीकपोस्ट तैयार की जा रही है। साथ ही प्रतिमाह 500 किलो केंचुओं का उत्पादन हो रहा है, वह अलग। उन्होंने बताया कि वर्मीकपोस्ट को प्रति किलो एक रुपए तीस पैसे के हिसाब से बेचा जा रहा है। उन्होंने बताया कि केंचुओं से खाद बनाने की इस परियोजना के बारे में राज्य सरकार से बातचीत हो चुकी है जिससे राज्य की सभी गौशालाओं में शीघ्र ही वर्मीकपोस्ट का उत्पादन शुरू हो सकेगा। गौशालाओं के आत्मनिर्भर होने से सड़कों पर घूमने वाली आवारा गायों की समस्या पर भी काबू पाया जा सकेगा। गुप्ता ने जानकारी दी कि उनके संगठन ने गौशालाओं में उत्पादित होने वाली वर्मीकपोस्ट की खपत नहीं होने की स्थिति में इसे एक रुपए किलो के हिसाब से खरीदे जाने का भी अनुबन्ध किया है। उन्होंने जानकारी दी कि संस्थान ने नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर मार्केटिंग समेत करीब 25-30 अन्य स्थानों पर भी वर्मीकपोस्ट के व्यापारिक उत्पादन के लिए संयंत्र स्थापित किए हैं, जो सफलतापूर्वक चल रहे हैं। इसके अलावा शहरों में ठोस कचरे के निपटने के लिए भी केंचुए के उपयोग की सम्भावनाएं तलाशी जा रही है।

राहत सचिव रामलुभाया ने भी उम्मीद जाहिर की कि वर्मीकपोस्ट के उपयोग से राज्य की गौशालाओं को आत्मनिर्भर बना उनकी स्थिति सुधारी जा सकेगी। उन्होंने कहा कि वर्मीकपोस्ट को बनाने के लिए दिन में दो-तीन बार गोबर पर पानी का छिड़काव करना होता है। इसलिए पहले उन जिलों की गौशालाओं में काम शुरू किया जाएगा, जहां पानी की कमी नहीं है।

शब्दावली

शब्द		अर्थ
एनारोबिक डाइजेशन	–	वायु की अनुपस्थिति में सड़ने की प्रक्रिया
ऐसिनिया फटिडा	–	एक प्रकार के केचुए
एच.डी.पी.ई.	–	पॉलीथीन की एक किस्म
एग्रीकल्चर	–	कृषि विज्ञान
एग्रोफोरेस्ट्री	–	कृषि वानिकी
एनैसिक	–	जमीन के नीचे लम्बी सुरंग बनाकर रहने वाले केचुए
एफ.वाई.एम.	–	गोबर एवं खेत के कचरे की खाद
बेडिंग	–	जमीन पर कचरा बिछाकर वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन हेतु अर्द्धगोलाकार आकृति गोबर का ढेर लगाना
बेक्टीरिया	–	जीवाणु
बायोमास	–	जैविक अपशिष्ट पदार्थ
ब्रिकेटिंग	–	कचरे से ईंधन के लिये ईंटें बनाना
बी.एच.सी.	–	एक प्रकार का कीटनाशक
ब्रांड नेम	–	किसी वस्तु को बेचने के लिए दिया गया नाम
कोकून	–	केंचुए के अण्डे
सेल्युलोज	–	एक प्रकार का जैविक पदार्थ
कम्पोस्ट	–	फसलों/पशुओं से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ के सड़ने के पश्चात् प्राप्त पदार्थ
कम्पनी	–	संस्था
कम्पोस्टिंग	–	फसलों/पशुओं से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थों को सड़ाने की विधि
कम्पोस्ट पिट	–	कम्पोस्ट खाद बनाने का खड्डा
कार्बनिक	–	जैविक

डम्पिंग ग्राउण्ड	–	शहंरी कचरा डालने के लिये खराब पड़ी भूमी
डी.डी.टी.	–	एक प्रकार का कीटनाशक
ड्रम	–	ढ़ोल
डीकम्पोजिशन	–	कार्बनिक पदार्थों को इनके मूल तत्वों में विभक्त करने की विधि
इंटेंसिव क्रॉपिंग	–	लगातार एक के बाद एक फसल लेना
एन्डोजैइक	–	जमीन के नीचे मिट्टी में रहने वाले केचुए
इकोसिस्टम	–	पशुओं, वनस्पतियों एवं उनके चारों ओर उपस्थित वातावरण के मध्य अन्तःक्रियाओं का तंत्र
ईपीजैइक	–	जमीन के ऊपर रहने वाले केचुए
फर्टिलाईजर	–	रसायनिक उर्वरक
फास्ट फूड	–	तुरन्त तैयार मिलने वाला खाना
फर्मन्टेशन	–	सड़ने की प्रक्रिया के दौरान का उफान
ग्रेडिंग	–	वर्गीकरण
जेनेटिकल	–	आनुवांशिक
ह्यूमस	–	जैविक अपशिष्टों के सड़ने के पश्चात् प्राप्त पदार्थ जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराता है।
हैक्टर	–	10000 वर्गमीटर का क्षेत्र
इनपुट	–	फसलोत्पादन के उपयोग में लिये जाने वाले आदान
आईफोम	–	ओर्गेनिक फार्मिंग की अन्तरराष्ट्रीय संस्था
आई.एस.ओ. 9002	–	एक प्रमाणीकरण करने वाली संस्था
म्युकस	–	केंचुए के शरीर से निकला हुआ चिपचिपा पदार्थ
माइक्रो ड्रिली	–	छोटे केचुए
माइक्रो ओर्गेनिज्म	–	खुली आखों से दिखाई नहीं देने वाले सुक्ष्मजीव

माइक्रो न्यूट्रीयेन्ट	–	पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिये सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक पोषक तत्व
मार्केटिंग	–	विपणन
मैट्रिक टन	–	1000 किलो ग्राम
मेगा ड्रिली	–	बड़े केंचुए
मल्च	–	जमीन से पानी की क्षति को रोकने के लिए बिछाया गया पौधों का अवशेष
नेडेप	–	खाद बनाने की एक विधि
नियाम	–	राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, भारत सरकार
नाइट्रेट	–	नाईट्रोजन का एक यौगिक जिसे पौधे ग्रहण करते हैं।
ओर्गेनिक फार्मिंग	–	रसायन विहीन खेती
ओर्गेनिक फूड	–	जैविक कृषि द्वारा उत्पादित पदार्थ
ओर्गेनिक मैटर	–	जीवों से प्राप्त पदार्थ
ओर्गेनिक कम्पोस्ट	–	जैविक खाद
पेस्टिसाइड	–	कीटनाशक
पिट	–	खड्डा
पेलेटाइजेशन	–	बीज के ऊपर परत लगाने की क्रिया
पी.एच.	–	किसी पदार्थ की अम्लीयता व क्षारीयता मापने का मापक
पेथोजन	–	हानिकारक सुक्ष्म जीवाणु
क्वालिटी	–	गुणवत्ता
रिसर्च	–	अनुसंधान
रिप्रोडक्शन	–	प्रजनन क्रिया
रेडिमेड	–	बना बनाया
सेनीटाईजर	–	कचरे का शीघ्र उपचार एवं सडांध कम करने वाला पदार्थ

सिस्टम	–	कार्य प्रणाली
सब्सिडी	–	सरकार द्वारा विक्रय मुल्य पर दी जाने वाली छूट/अनुदान
सीवेज	–	शहरों से निकलने वाला गन्दे नाले का पानी
सरफेस बेड	–	वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिये अर्द्धगोलाकार आकृति में जमीन की सतह पर बनाई गई लम्बी ढ़ेरी
बायोगैस स्लरी	–	गोबर खाद बनने के बाद शेष बचा घोल
शेड	–	छाया
ट्रायल्स	–	फसलों के प्रदर्शन
यूनिसेफ	–	संयुक्त राष्ट्र संघ की एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था
युनिट	–	इकाई
वैरायटी	–	किस्म
वर्मीकल्चर	–	केंचुओं का संवर्धन
वर्मीकास्ट	–	केचुए का मल
वर्मीकम्पोस्ट	–	केंचुओं द्वारा जैविक पदार्थ को खाकर उत्पन्न की गई जैविक खाद
वर्मीकम्पोस्टिंग	–	केंचुओं द्वारा खाद बनाने की प्रक्रिया
विटामिन	–	एक प्रकार के आवश्यक पोषक पदार्थ

अनुक्रमणिका

प्राकृतिक संसाधन	—	2
विज्ञान कांग्रेस	—	3
खाद्यान्नों का उत्पादन एवं मांग	—	4
आधुनिक खेती	—	5
सिंचित खेती में बदलाव	—	5
कृषि लागत, लाभ एवं अनुमानित सब्सिडी	—	6
भारत में प्रमुख जिन्सों की उत्पादन लागत में बढ़ोतरी	—	7
कृषि जिन्सों का समर्थन मूल्य	—	8
कृषि प्रदर्शनों की सारांश रिपोर्ट	—	9
रसायनिक खादों का उपयोग	—	10
गुजरात में रसायनिक खाद के उपयोग का विश्लेषण	—	11
भोजन पदार्थों की क्वालिटी के बारे में किसानों की राय	—	16 से 17
ओर्गेनिक फार्मिंग के बारे में उपभोक्ताओं की राय	—	18 से 19
गेहूं की खेती के प्रदर्शन के परिणाम	—	21
कम्पोस्टिंग	—	26 से 28
कम्पोस्टिंग की विधियां	—	29 से 34
वर्मीकल्चर	—	38 से 40
केचुए	—	41 से 43
ऐसिनिया फटिडा	—	44 से 46
वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन विधि	—	47 से 50
सरफैस बेड विधि	—	51 से 52
ठोस कचरा प्रबंध	—	57
उच्चतम न्यायालय के दिशा निर्देश	—	59 से 60
जयपुर शहर के ठोस कचरे का वर्गीकरण	—	61 से 62

ओर्गेनिक मैटिरियल — 63 से 66
देश में कृषि अवशेषों की उपलब्धता — 64
कृषि अवशेषों में पोषक तत्व — 66
वर्मीकल्चर के लिए ओर्गेनिक मैटिरियल प्रबंध — 67 से 69
विभिन्न खादों/खाद बनाने वाले पदार्थों में पोषक तत्व — 70 से 71
वर्मीकम्पोस्ट का वाणिज्यिक उत्पादन — 75 से 100
वर्मीकम्पोस्ट की क्वालिटी — 102 से 103
वर्मीकम्पोस्ट के भौतिक गुण — 103
फसलों द्वारा पोषक तत्वों का ह्रास — 105
वर्मीकम्पोस्ट के रसायनिक गुण — 107
वर्मीकम्पोस्ट के जैविक गुण — 108 से 113
मृदा में सूक्ष्म जीव — 114
सूक्ष्म जीवों के कार्य — 114 से 115
वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग — 119 से 121
बारानी खेती में वर्मीकम्पोस्ट — 122 से 125
सिंचित खेती में वर्मीकम्पोस्ट — 126 से 128
बागवानी में वर्मीकम्पोस्ट — 129 से 131
बगीचों—वृक्षारोपण में वर्मीकम्पोस्ट — 134 से 135
रसायनिक खादों से वर्मीकम्पोस्ट की तुलना — 138 से 141
सूखा निवारण में वर्मीकम्पोस्ट — 145 से 148
शहरी ठोस कचरा प्रबंध — 150 से 155
ओर्गेनिक फार्मिंग में वर्मीकम्पोस्ट — 157 से 158
वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन से स्वरोजगार — 161 से 170
वर्मीम्पोस्ट, गौशालाओं के लिए वरदान — 172 से 175
मीडिया और वर्मीकम्पोस्ट —

सन्दर्भ सूची

1. राधा डी काले (1998) *अर्थवर्न–सीन्ड्रेला ऑफ ओर्गेनिक फार्मिंग* प्रिज्म बुक प्रा.ली. बैंगलोर

2. डी.के. अरोड़ा एवं पी.सी. त्रिवेदी (2000), *बायोटेक्नोलोजी एण्ड प्लान्ट पेथोलोजी–करेन्ट ट्रेन्डस्*, प्रिन्टवेल पब्लीसर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर

3. उद्यान निदेशालय (1996), *राजस्थान में उद्यानिकी फसलें* पंत कृषि भवन, जयपुर

4. बी.एस. हन्सरा, जी. पेरूमल एवं के. चन्द्रकन्दन (2001), *मोर्डनाईजिंग इन्डीयन एग्रीकल्चर इन २१st सेन्चुरी* कोन्सेप्ट पब्लीसिंग क., नई दिल्ली

5. ए.के. दहामा (2001), *ओर्गेनिक फार्मिंग–फॉर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर* एग्रोबायोस (इन्डिया), जोधपुर

6. एस.एस. पुरोहित (2000–2001), *माइक्रोबायोलोजी–फन्डामेन्टलस एण्ड एपलीकेशन्स* एग्रोबायोस (इन्डिया), जोधपुर

7. एस.वी. चौहान एवं एस.एन. चर्तुवेदी (2001), *बोटेनिकल एसेज,* प्रिन्टवेल पब्लीशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर

8. द हिन्दू, *सर्वे ऑफ इन्डियन एग्रीकल्चर–२०००*, पेज 179–180

9. *50 इयर्स ऑफ एग्रीकल्चर डवलपमेन्ट इन राजस्थान* कृषि निदेशालय, जयपुर

10. *एग्रीकल्चर मार्केटिंग २०००*, भारतीय कृषि विपणन संस्थान, जयपुर

11. पी.के. थामपन, *ओर्गेनिक एग्रीकल्चर* पीके ट्री क्रोप्स डवलपमेन्ट फाउण्डेशन, केरल

12. एस.पी. पालानियामन एवं के अन्नादुरई, *ओर्गेनिक फार्मिंग–थ्योरी एण्ड प्रेक्टीस* साईन्टिफिक पब्लीशर्स, जोधपुर

13. *बायोडायनामिक्स खेती* उ.प्र. कृषि विविधीकरण परियोजना, लखनऊ

14. एम. घोष, जी.एल. चट्टोपाध्याय, के. बराल एवं पी.एम. मुन्शी, *पोसीबिलीटीज ऑफ यूजिंग वर्मीकम्पोस्ट इन एग्रीकल्चर फॉर रीकोन्साईलींग ससटेनेबिलीटी विथ प्रोडक्टीविटी*, इन्सटीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, विश्व भारती, शान्ति निकेतन, प. बंगाल

15. वी.एस. मेहरोत्रा, *वर्मीकल्चर मेन्युअल (1997)*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

16. अस्पी फाउण्डेशन, *जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम* रामकृष्ण मिशन आश्रम, रांची

17. वर्मीकम्पोस्ट, विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विभाग, राजस्थान सरकार, उदयपुर

18. *अर्थवर्म रिसोर्सेज ऑफ इन्डिया एण्ड देयर युटिलाईजेशन इन वर्मीकल्चर* जूलोजीकल सर्वे ऑफ इन्डिया, सोलन

19. जे.एम. जुलका (1993), *डिस्ट्रीब्यूशन पेटर्न इन इन्डियन अर्थवर्म* जूलोजीकल सर्वे ऑफ इन्डिया, सोलन

20. ए.सी. गोड़, *ए मेन्युअल ऑफ रूरल कम्पोस्टिंग* एफ.ए.ओ. ऑफ युनाईटेड नेशन्स

21. *दी कम्पोस्ट रिसोर्सेज* www.oldgrowth.org

22. *वर्मीकल्चर टेक्नोलोजी फोर स्माल फार्मरस्* www.new-agri.co.uk

लेखक परिचय

श्री मुकेश गुप्ता ने उच्च शिक्षा एवं व्यवसायिक जगत में मिली अपार सफलताओं के बावजूद ग्रामीण एवं कृषि विकास के क्षेत्र में अपना भविष्य बनाने की जो अनूठी पहल की है, उससे इस क्षेत्र में नई सोच एवं कार्यक्रमों का नया सिलसिला प्रारम्भ हुआ है। श्री मुकेश गुप्ता, एम. आर. मोरारका जीडीसी रूरल रिसर्च फाउण्डेशन की वर्ष 1993 में स्थापना से लेकर आज तक परियोजना निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। किसान एवं गांव के स्तर पर कार्य करने का अनुभव एवं मेक्रो स्तर पर होने वाले परिवर्तनों की समझ ने लेखक को खेती में लागत कम करने की दिशा में कार्य करने के लिये प्रेरित किया। मुकेश गुप्ता द्वारा वर्मीकल्चर के क्षेत्र में की गई खोज ने मोरारका फाउण्डेशन को भारत में वर्मीकम्पोस्ट का सबसे बड़ा उत्पादक बना दिया है।

ए बी डी पब्लिशर्स
बी–46, नटराज नगर, इमली वाला फाटक,
जयपुर–302015 (राज.)
फोन : 594705, फैक्स : 0141–597527
ए बी डी